अतीत और परंपरा

अष्टम श्रेणी

पश्चिमबंग मध्य शिक्षा पर्षद

संस्करण

प्रथम संस्करण : जनवरी, 2014

द्वितीय संस्करण : दिसम्बर, 2014

पुस्तक–अधिकार

पश्चिमबंग मध्य शिक्षा पर्षद

प्रकाशक

प्राध्यापिका नवनीता चटर्जी
सचिव, पश्चिमबंग मध्य शिक्षा पर्षद
77/2 पार्क स्ट्रीट, कोलकाता – 700016

मुद्रक

वेस्ट बेंगल टेक्सबुक कारपोरेशन लिमिटेड
(पश्चिमबंग सरकार का उपक्रम)
कोलकाता – 700056

भारतीय संविधान

प्रस्तावना

हम, भारत के लोग, भारत के एक संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न धर्मनिरपेक्ष समाजवादी लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को न्याय— सामाजिक, आर्थिक और —राजनीतिक, स्वतंत्रता, विचार की अभिव्यक्ति की विश्वास, की धर्म एवं पूजा की समानता– प्रतिष्ठा एवं अवसर की समता प्राप्त करने के लिए तथा उन सब में, भ्रातृत्व– जिसमें व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित रहे का वर्धन करने के लिए इस संविधान सभा में आज 26 नवम्बर 1949 को इसके द्वारा इस संविधान को स्वीकार करते है, कानून का रूप देते हैं और अपने–आप को इस संविधान को अर्पण करते है।

THE CONSTITUTION OF INDIA

PREAMBLE

WE, THE PEOPLE OF INDIA, having solemnly resolved to constitute India into a SOVEREIGN SOCIALIST SECULAR DEMOCRATIC REPUBLIC and to secure to all its citizens : JUSTICE, social, economic and political; LIBERTY of thought, expression, belief, faith and worship; EQUALITY of status and of opportunity and to promote among them all – FRATERNITY assuring the dignity of the individual and the unity and integrity of the Nation; IN OUR CONSTITUENT ASSEMBLY this twenty-sixth day of November 1949, do HEREBY ADOPT, ENACT AND GIVE TO OURSELVES THIS CONSTITUTION.

भूमिका

'परिवेश एवं इतिहास' के अन्तर्गत अष्टम श्रेणी की पाठ्य-पुस्तक 'अतीत और परंपरा' प्रकाशित हुई। इतिहास विषय के विद्यार्थियों की जिज्ञासा बढ़ाने के लिए 'अतीत और परंपरा' पुस्तक में धीरे-धीरे अतीत विषयक विभिन्न विचारों को प्रस्तुत किया गया है। राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा 2005 एवं शिक्षा अधिकार कानून 2009 इन दोनों को ध्यान में रखकर अनोखी परिकल्पना की गई है। वर्ष 2011 में पश्चिम बंगाल सरकार के नेतृत्व में गठित एक 'विशेषज्ञ समिति' को विद्यालय स्तर पाठ्यक्रम का पाठ्यसूची एवं पाठ्यपुस्तकों की समीक्षा एवं पुनर्विवेचन का दायित्व दिया गया। उनके अथक प्रयत्न एवं श्रम से पाठ्यक्रम, पाठ्यसूची के अनुसार 'अतीत और परंपरा' पुस्तक को तैयार करना सम्भव हो सका है।

इस पुस्तक में विभिन्न प्रमाणों के अनुरूप चित्र एवं मानचित्र प्रत्येक अध्याय में दिया गया है। इस माध्यम से विद्यार्थी अतीत और परंपरा के सम्बंध में स्पष्ट विचारधारा बनाने में सक्षम हो सकेंगे। दूसरी तरफ पूरी पुस्तक में आकर्षणीय पद्धति से विभिन्न सारणियों का प्रयोग किया गया है। आशा करता हूँ कि नवीन पाठ्य-पुस्तक विद्यार्थियों को समृद्ध करेगा।

विभिन्न शिक्षाविद, शिक्षक-शिक्षिका, विषय विशेषज्ञ एवं अलंकरण के लिए प्रसिद्ध कलाकार-जिनके निरंतर श्रम एवं अथक प्रयास से इस महत्त्वपूर्ण पुस्तक को तैयार करना सम्भव हो सका। उन सभी को मेरा आंतरिक धन्यवाद एवं कृतज्ञता।

पश्चिम बंगाल सरकार प्राथमिक एवं उच्च माध्यमिक स्तर पर समस्त विषयों की पुस्तक छापकर छात्र-छात्राओं को नि:शुल्क वितरण करती है। इस योजना के कार्यान्वयन में पश्चिम बंगाल सरकार का शिक्षा विभाग, पश्चिमबंग शिक्षा अधिकार एवं पश्चिमबंग सर्वशिक्षा मिशन ने विभिन्न प्रकार से सहायता की है। इनकी भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता है।

'अतीत और परंपरा' पुस्तक की उत्कृष्टता के लिए सबके विचार एवं परामर्श का आह्वान करते है।

कल्याणमय गांगुली
प्रशासक
पश्चिमबंग मध्य शिक्षा पर्षद

जुलाई, 2014
77/2 पार्क स्ट्रीट
कोलकाता - 7000 56

प्राक्कथन

पश्चिम बंगाल की माननीया मुख्यमंत्री सुश्री ममता बंदोपाध्याय ने 2011 में विद्यालय की शिक्षा के लिए एक 'विशेषज्ञ समिति' का गठन किया। इस विशेषज्ञ समिति को यह दायित्व दिया गया कि विद्यालय स्तर के समस्त पाठ्यक्रम, पाठ्यसूची एवं पाठ्य-पुस्तक की पुनः आलोचना पुनर्विवेचना एवं पुनर्विन्यास प्रक्रिया को संचालित करे। उस समिति की सिफारिश के अनुसार नवीन पाठ्यक्रम, पाठ्यसूची एवं पाठ्य-पुस्तक तैयार किया गया है। इस पूरी प्रक्रिया में राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा 2005, शिक्षा अधिकार नियम 2009 (RTE Act, 2009) इन दोनों को ध्यान में रखा गया है। इसके साथ ही समग्र परिकल्पना में रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शिक्षा दर्शन की रूपरेखा को आधार के रूप में ग्रहण किया है।

उच्च माध्यमिक स्तर की इतिहास पुस्तक का नाम 'अतीत और परंपरा' है। नवीन पाठ्यक्रम के अनुसार इस पुस्तक में परिवेश और इतिहास को शामिल किया गया है। अष्टम श्रेणी में भारत के आधुनिक समय के इतिहास से विद्यार्थी परिचित होंगे। इस पुस्तक में आख्यानमूलक विवरण के माध्यम से विशेष घटनाओं को विद्यार्थियों के सामने प्रस्तुत किया गया है। एक तरफ यह ध्यान दिया गया है कि तथ्यों के अतिरिक्त भरमार विद्यार्थी को बोझिल न करें तो दूसरी तरफ अत्यधिक सरल करने के प्रयास में इतिहास की आवश्यक चीजे उनके सामने अस्पष्ट न रह जाए। उस विशेष स्थान और समय में समाज, राजनीति, धर्म, संस्कृति, जीवन-यापन का ढंग मूर्त्त रूप से उनके सामने स्पष्ट हो जाये। इतिहास की मूल धारणा के निर्माण में इस पाठ्य-पुस्तक पर विशेष ध्यान दिया गया है। प्रासंगिक विषय-घटना की पुनः आलोचना के माध्यम से विद्यार्थी इतिहास पर जीवंत एवं अर्थपरक ढंग से विचार करना सीखेंगे ? कुछ प्रमाणित चित्रों एवं मानचित्रों का इसीलिए इस पुस्तक में समावेश किया गया है। प्रत्येक अध्याय के अंत में प्रश्नावली दिया गया है। जैसे :- सोचकर देखो, ढूढ़कर देखो। इसके माध्यम से अपने तथा अपने-अपने अनुभव के आधार पर विद्यार्थी इतिहास पर अनेक तरह के विचार प्रस्तुत कर सकेंगे। पुस्तक के अंत में 'सीखने की पद्धति' के जरिए कक्षा-कक्ष में पुस्तक के प्रयोग से सम्बंधित कुछ मूल्यांकन प्रस्ताव दिए गये है। निपुर्ण चित्रकार ने विभिन्न रंग-रेखाओं से पुस्तक को आकर्षणीय बनाया है। उनके प्रति भी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। आशा करते है कि नवीन दृष्टियों से निर्मित यह पाठ्य-पुस्तक इतिहास जानने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएंगी।

चयनित शिक्षाविद, शिक्षक-शिक्षिका एवं विषय-विशेषज्ञों ने अल्प समय में इस पुस्तक को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। पश्चिम बंगाल के माध्यमिक शिक्षा-व्यवस्था के विद्वत लोगों ने पश्चिमबंग मध्य शिक्षा पर्षद के पाठ्य-पुस्तक का अनुमोदन कर हमें कृतज्ञ किया है। समय-समय पर पश्चिमबंग मध्य शिक्षा पर्षद, पश्चिम बंगाल सरकार का शिक्षा विभाग, पश्चिम बंगाल सर्वशिक्षा मिशन एवं पश्चिम बंगाल शिक्षा अधिकार ने जो सहायता प्रदान किया है, उन्हें भी धन्यवाद देना चाहूँगा।

पश्चिम बंगाल के माननीय शिक्षा मंत्री डॉ. पार्थ चटर्जी ने आवश्यक विचार एवं परामर्श देकर हमें कृतज्ञ किया है। उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करते है।

पुस्तक की उत्कृष्टता के लिए शिक्षा अनुरागी लोगों के विचार-परामर्श हम सादर ग्रहण करेंगे।

अभीक मजूमदार
चेयरमैन
विशेषज्ञ समिति
विद्यालय शिक्षा विभाग,
पश्चिम बंगाल सरकार

जुलाई, 2014
निवेदिता भवन, पंचम तल्ला
विधाननगर, कोलकाता - 7000 91

विशेषज्ञ समिति द्वारा संचालित पाठ्य-पुस्तक प्रणयन पर्षद

सदस्य

प्राध्यापक अभीक मजूमदार (चेयरमैन, विशेषज्ञ समिति)

प्राध्यापक रथीन्द्रनाथ दे (सदस्य सचिव, विशेषज्ञ समिति)

परिकल्पना, तत्वावधान तथा संपादन

शिरीन मासूद (प्राध्यापिका, इतिहास विभाग, कलकत्ता विश्वविद्यालय)

पांडुलिपि निर्माण एवं परिकल्पना, तत्वावधान तथा संपादन-सहायता

अनिर्वान मण्डल	प्रबाल बागची
कौशिक साहा	सत्य सौरभ जाना
गौतम विश्वास	महीदूर रहमान
प्रदीप कुमार बसाक	सुगत मित्र

पुस्तक-सज्जा

आवरण एवं अलंकरण : देवब्रत घोष

मानचित्र निर्माण : हीराब्रत घोष

मुद्रण सहायता : अनुपम दत्त, धीमान बसु और विप्लव मण्डल

विशेष सहायता

तिस्ता दास पूर्व रेलवे प्रशासन देवाशीष राय

****

विषय सूची

विषय		पृष्ठ
1.	इतिहास परिचय	1
2.	प्रादेशिक शक्तियों का उत्थान	13
3.	औपनिवेशिक सत्ता की प्रतिष्ठा	35
4.	औपनिवेशिक अर्थनीति का स्वरूप	53
5.	औपनिवेशिक शासन का प्रभाव: सहयोग और विद्रोह	77
6.	राष्ट्रीयतावाद का प्रारंभिक विकास	97
7.	भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का आदर्श और परिवर्तन	115
8.	साम्प्रदायिकता से देशविभाजन तक	135
9.	भारतीय संविधान — गणतंत्र की रूपरेखा और नागरिकों के अधिकार	147
●	भारतीय इतिहास — कालक्रम की सूची	160
●	शिक्षण परामर्श	162

1 इतिहास–परिचय

आजकल प्राय: ही सुना जाता है आज का युग विज्ञान का युग है अर्थात् हमारे दैनिक जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विज्ञान की जरूरत पड़ती है। यहाँ तक कि बातचीत, बोलचाल में भी विज्ञान की झलक पाते हैं। प्रश्न उठता है विज्ञान के इस युग में आज विद्यालयों में इतिहास पढ़ाने की अवश्यकता है! क्या ? प्राय: सबके मन में यह प्रश्न उठता है। सच ही तो है! इतिहास पढ़ने से क्या लाभ होता है, इसे समझना मुश्किल है। पुराने समय में कब, किसने क्या किया उसका वर्णन, ब्यौरा मात्र। फिर ये सब घटनाएँ बहुत पहले घट चुकी थी। अत: उनका परिणाम भी जाना हुआ है। इन्हें लेकर कितने विवाद खड़े हो चुके हैं। कई प्रकार के मत हैं। यदि घटनायें और उनके परिणाम निश्चित हैं तब तर्क क्यों ? जरा विश्लेषण करके देखा जायें।

इतिहास में केवल राजा–सम्राट–युद्ध राजनीति की कथा पढ़ते–पढ़ते तुम सब ऊब जाते होगे। परन्तु केवल तुम ही नहीं ऊब जाते रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी ऊब जाते थें। देखें रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इतिहास के बारे में क्या कहा है ?

रवीन्द्रनाथ की दृष्टि में — भारतवर्ष का इतिहास

''भारतवर्ष का जो इतिहास हम पढ़ते हैं और रटकर परीक्षा देते हैं — वह भारत के अंधकारमय समय का एक दु:स्वप्न प्रतीत होता है। कहाँ से कौन आये, लड़ाईयाँ शुरू हो गयीं, बाप बेटे, भाई–भाई के बीच सिंहासन के लिए छीना झपटी होने लगी। एक दल के पतन के साथ ही एक दूसरा दल उठ खड़ा हुआ। पठान, मुगल, पुर्तगाली, फ्रांसीसी सबने मिलकर इस स्वप्न को और भी जटिल बना दिया।

..... भारतवासी कहाँ है ? ये सारा इतिहास इस विषय में मौन है, चुप है। मानो भारतवासी नहीं केवल लड़ाई–झगड़ा, खूना–खूनी, दंगा–फसाद करने वाले ही हैं।

..... इसी कारण विदेशियों के इतिहास में युद्धों के अंधड़–तूफान की कथा ही केवल पाते हैं अपने देश का अतीत हम नहीं जान पातें।

.....

वे देश भाग्यवान हैं, जिन्होंने अपने देश के इतिहास को पढ़ने का सौभाग्य पाया है। ऐसा ही इतिहास पढ़कर बच्चे बाल्यकाल में ही अपने देश से पूर्ण परिचित हो जाते हैं। किन्तु हमारे इतिहास ने हमारे देश की वास्तविक पहचान को ही ढ़क दिया है। महमूद के आक्रमण से लेकर लॉर्ड कर्जन तक के साम्राज्य विस्तार काल का जो कुछ इतिहास है, वह भारत के लिए एक विचित्र कुहेलिका है। ये तथ्य को जानने में हमारी कोई सहायता नहीं करते बल्कि हमारी दृष्टि के सामने एक पर्दा डालते हैं। ऐसा इतिहास हमारी आँखों में ऐसा कृत्रिम आलोक फैलाता है जिससे हम अपने स्वदेश का उज्ज्वल पक्ष भी अन्धकारमय पाते हैं।

सब देशों का इतिहास एक समान हीं होगा — इन कुसंस्कारों को बदलने की जरूरत है।

गंगा नदी से एसप्लानेड तट का दृश्य। यह चित्र (1826 ई०) में जेम्स बेयली क्रेजार द्वारा बनाया गया है।

फारुखशियर की स्वर्ण मुद्रा

रवीन्द्रनाथ के कथन को ठीक से पढ़ने पर ज्ञात होता है कि रवीन्द्रनाथ इतिहास के विरोधी नहीं थे वरन् उन्होंने इतिहास की विषयवस्तु को लेकर प्रश्न उठाया है। इन सब प्रश्नों में सबसे बड़ा एवं प्रमुख प्रश्न यह है कि भारत का इतिहास कौन लिखेगा? विदेशी इतिहासकार? या भारतीयों को स्वयं ही अपना इतिहास लिखना होगा?
रवीन्द्रनाथ से भी कुछ वर्ष पूर्व यह प्रश्न उठाया था बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय ने। उनका कथन था बंगालियों का इतिहास चाहिए। अर्थात् बंगाली जाति का इतिहास बंगालियों को जानना होगा। अपनी परंपरा से कट कर कोई बच नहीं सकता। किन्तु क्यों नहीं बच सकता? इतिहास ज्ञान के लिए इतनी चिन्ता क्यों?
आज जो कुछ घट रहा है, जो दिखाई पड़ रहा है, आज अर्थात् वर्तमान इसी इतिहास से आया है। अर्थात् हमारा वर्तमान कैसा होगा? इसका निर्धारण अतीत में ही हो जाता है हमारे अतीत से। आपको वह भेड़िया और बकरी के बच्चे की कहानी याद है? बच्चा पानी पीने गया था। भेड़िये ने उसे पकड़ लिया। बकरी का बच्चा जितना ही अपना कसूर जानने की कोशिश करता भेड़िया उसे उसके पूर्वजों के अपराधों को गिना डालता। भेड़िये ने तय कर लिया था बकरी के बच्चे को अपने पूर्वजों के अपराधों की की भरपायी करनी ही होगी। अर्थात् बकरी के बच्चे के प्रति भेड़िया का वर्तमान आचरण— इसका तर्क इतिहास में छिपा है।

हैदर अली की स्वर्ण मुद्रा

अब भेड़िये की जगह रखें भारत में व्यापार करने आए नील साहब को और बकरी के बच्चे के स्थान पर नील की खेती करने वाले गरीब किसान को। प्राय: सब समय ही किसान नील साहब का ऋणी रहता। यह उधार खाता वंशगत चलता रहता। परिणाम स्वरूप पीढ़ी दर पीढ़ी किसान को भी नीलखेती करने को मजबूर होना पड़ता। हमें अपने पूर्वजों के कर्मों का फल भोगना ही पड़ता है। जब पूर्वजों के कर्मों का फल भोगना पड़ेगा तो अपने पूर्वजों के कर्मों को भी भली-भाँति जानना होगा। इसी कारण इतिहास पढ़ना जरूरी है।
और एक बात हो सकती है। मान लो भेड़िया एक तर्कवादी या युक्तिवादी है। अत: बकरी का बच्चा यदि उसके इतिहास का विश्लेषण करके यह सिद्ध कर दे कि भेड़िये की युक्ति ठीक नहीं है तो शायद भेड़िया उसे छोड़ भी देता। अर्थात् इतिहास का विश्लेषण करके दोष का परिहार किया जा सकता है। अपने अधिकारों की प्रतिष्ठा की जा सकती है। इसका मतलब यह कि इतिहास से युक्ति लेकर जिस प्रकार बकरी के बच्चे पर अत्याचार किया जा सकता है वैसे ही बकरी का बच्चा भी इतिहास के द्वारा ही अपने को निर्दोष प्रमाणित कर सकता है कि वह उन पूर्वजों का वंशधर नहीं है। भेड़ियों ने समझने में गलती की है।

सहादत खान की स्वर्ण मुद्रा

और फिर से एकबार भेड़िये के स्थान पर ब्रिटिश साम्राज्यवादी शासक को बैठाए और बकरी के बच्चे की जगह भारतीयों को ब्रिटिश शासकों ने भारत को उपनिवेश में परिणत करने की युक्ति दी, 'भारतवासी असभ्य है। उनके देश में शिक्षा का अभाव है, विज्ञान का अभाव है आदि आदि। और ब्रिटिश तो सभ्य है इसी कारण प्रत्येक सभ्य ब्रिटिश का कर्त्तव्य है असभ्य भारतवासी को सभ्य बनाना। इसी कारण भारत में ब्रिटिश शासन कायम करना जरूरी है। इन्हीं युक्तियों के आधार पर भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना हुई।

परन्तु भारतीयों ने उनकी इन युक्तियों को नहीं माना। उन्होंने उलट कर उत्तर दिया, किसने कहा हम असभ्य है? फिर क्रम से सम्राट अशोक से सम्राट अकबर की चर्चा हुई। आर्यभट्ट से चैतन्यदेव की चर्चा हुई। परिणामस्वरूप प्रमाणित किया गया कि भारत में भी 'सभ्यता' थी। वह सभ्यता ब्रिटिश सभ्यता से किसी भी क्षेत्र में कोई कम न थी। अत: भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को फैलाने की कोई जरूरत नहीं है।

कम्पनी द्वारा जारी की गई स्वर्ण मुद्रा

ध्यान दे भारतीयों ने पलट कर जवाब दिया तो उसका आधार भी इतिहास ही था। ब्रिटिश ने साम्राज्य की स्थापना इतिहास के आधार पर ही की थी। अत: उनको पलटकर जवाब भी इतिहास द्वारा ही दिया जाना चाहिए।

अर्थात् इतिहास केवल राजा महाराजाओं का नाम, साल, तारीख, युद्ध का वर्णन नहीं है। इतिहास सम्मिश्रण है तर्क, युक्ति के मेल का। इतिहास को साक्ष्य बनाकर अपने पक्ष -विपक्ष को युक्तिसम्मत किया जा सकता है, इसीलिए इतिहास का ज्ञान अति आवश्यक है। तो अब समझ में आया कि विद्यालयों में इतिहास का पठन-पाठन क्यों किया जाता है?

सम्राट शाह आलम द्वितीय का नाम खुदाई किया हुआ स्वर्णमुद्रा

अब आए दूसरे प्रश्न पर — घटना और परिणाम मालूम होते हुए भी इतिहास में इतना तर्क-वितर्क क्यों? फिर से रवीन्द्रनाथ का लेख पढ़ा जाए। अपने लेख में उन्होंने स्पष्ट लिखा है, सब देशों का इतिहास एक जैसा नहीं होता। इसीलिए वे भारत का इतिहास खोजने में असफल हुए। इसका कारण है भारत का इतिहास और इंलैण्ड का इतिहास एकदम अलग है। अर्थात् दूसरा जरूरी प्रश्न हुआ इतिहास लेखक कौन है या खोजने वाला कौन है?

फिर से बंकिमचन्द्र की ओर चलें। बंगाल के इतिहास की जरूरत है कह कर ही वे चुप नहीं रहे। साथ ही उन्होंने लिखा है विदेशियों द्वारा लिखा बंगालियों का इतिहास त्रुटियों से भरपूर है। इसी कारण बंगाल का इतिहास बंगाल इतिहासवेत्ता को ही लिखना होगा। वह कौन है? बंकिम के अनुसार 'हम', 'तुम' जो लिख सकेंगे उन सबसे यह बोध होता है कि एक घटना को लेकर तर्क-वितर्क क्यों होता है? किसी घटना को देखने की दृष्टि बदलते ही घटना का परिणाम भी बदल जाता है। इससे घटना को लेकर नाना मत तैयार हो जाते हैं। एक ही चित्र को अलग-अलग कोणों से देखकर अलग-अलग वर्णन किया जा सकता है। असल में चित्र तो एक ही होता है किन्तु उसी को भिन्न-भिन्न कोणों से देखते हैं और एक ही चित्र का अलग-अलग वर्णन कर डालते हैं। उस एक छवि में छिपे रहते हैं अन्य छवियों के उपादान। ठीक इसी प्रकार मूल घटना और उसका परिणाम एक ही होता है फिर भी यह घटना क्यों घटी, उसका परिणाम क्या हुआ? यह अलग- अलग दृष्टियों से देखने पर तर्क का विषय हो जाता है।

सम्राट शाह आलम द्वितीय का नाम खुदाई किया हुआ स्वर्णमुद्रा। बंगाल प्रेसिडेंसी से प्रचलित

अच्छा, पहले दो प्रश्नों के उत्तर मिल गये। सिर्फ और एक बात ही बचीं है। बंकिम जी ने कहा, मैं, तुम सब मिलकर अपना इतिहास रचेंगे, सुनने में बहुत ही अच्छा लगता है परंतु जिस समाज का एक बड़ा अंश निरक्षर है, वह अपना इतिहास किस प्रकार लिखेगा? तो क्या सबकी ओर से मैं अकेला ही इतिहास की रचना करुँगा? ऐसी परिस्थिति में सबकी ओर से मुझे ही इतिहास लिखना पड़ेगा। ऐसा होने

आधुनिक युग में इतिहास लेखन के क्षेत्र में मुद्राओं का महत्त्वपूर्ण स्थान है।

पर मैं वही लिखूँगा जैसा मैंने अनुभव किया अर्थात् मेरी दृष्टि से लिखा गया इतिहास ही 'हमारा इतिहास' कहलाएगा यही कारण है कि भारत का इतिहास कुछ शिक्षित मनुष्यों की दृष्टि से ही लिखित इतिहास है। इसी कारण इस इतिहास में सिद्धू-कानू के अतिरिक्त अन्य संथाल विद्रोह में भाग लेने वाले किसी अन्य विद्रोहियों के नामों का उल्लेख नहीं मिलता। महात्मा गाँधी के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चलने वाले स्वाधीनता संग्राम के सेनानियों के नाम नहीं मिलते। केवल कहा जाता है हजारों मनुष्यों ने, हजारों संथालों ने विद्रोह में भाग लिया। अर्थात् उन मनुष्यों को नाम से नहीं केवल संख्या से जाना जाता है। ऐसा क्यों होता है? इसका कारण यह है कि जिन्होंने संथाल विद्रोह का इतिहास लिखा था उनकी दृष्टि में केवल सिद्धू-कानू का नाम ही काफी था। महात्मा गाँधी या सुभाष चन्द्र बोस ही जरूरी हैं। उनकी कहानी जान लेने से ही इतिहास पूर्ण हो जाता है। बाकी जो हैं वे केवल हजार-हजार मनुष्य हैं। उनके नाम अलग से देने की जरूरत ही नहीं है। है क्या?

अपना इतिहास स्वयं लिखने से समस्या का समाधान हो जाता है, ऐसा नहीं है। अवश्य ही जो जैसा लिखते हैं वे जैसा, जिस भाव से किसी घटना को देखते और समझते हैं, उसी प्रकार इतिहास लिखते हैं। व्यक्ति बदल जाने से ही, चुँकि दृष्टिभंगिमा और मन भी बदल जाते हैं, इसी कारण एक ही घटना और उसके परिणाम को लेकर तर्क-वितर्क चलता है। इस मतभेद के कारण ही इतिहास पढ़ने का आनन्द ही कुछ और है। ऐसा न होने पर इतिहास केवल घटनाओं और उसके परिणामों का ब्यौरा मात्र बन कर रह जाता। ऐसा नहीं है इसलिए इतिहास आकर्षणीय है। इतिहास को लेकर तनातनी भी इसी कारण है। मेरी या हमारी युक्ति ही उचित है इसे प्रमाणित करने के लिए इतिहास की रस्साकशी की लड़ाई चलती हीं रहती है।

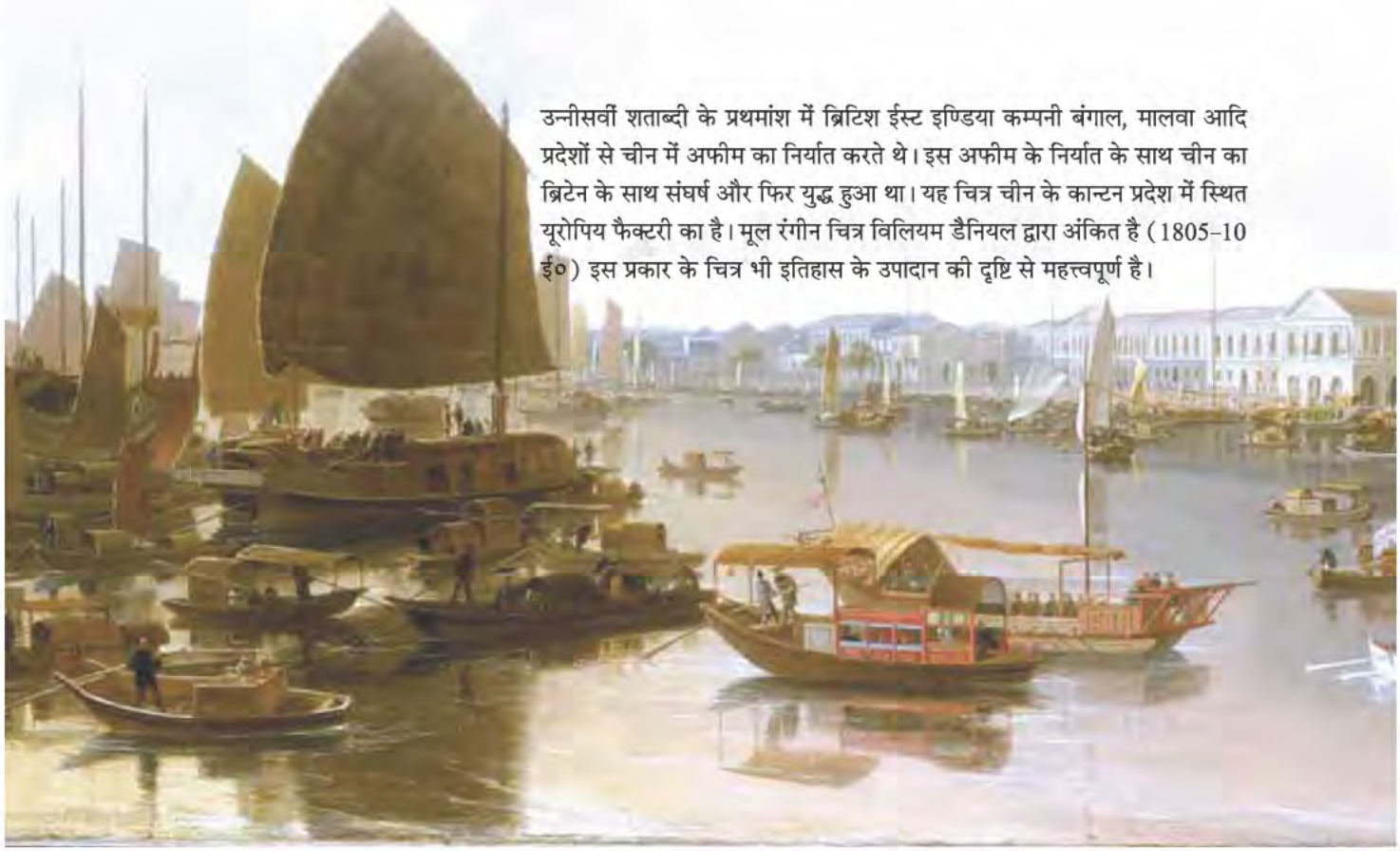

उन्नीसवीं शताब्दी के प्रथमांश में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी बंगाल, मालवा आदि प्रदेशों से चीन में अफीम का निर्यात करते थे। इस अफीम के निर्यात के साथ चीन का ब्रिटेन के साथ संघर्ष और फिर युद्ध हुआ था। यह चित्र चीन के कान्टन प्रदेश में स्थित यूरोपिय फैक्टरी का है। मूल रंगीन चित्र विलियम डैनियल द्वारा अंकित है (1805-10 ई०) इस प्रकार के चित्र भी इतिहास के उपादान की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है।

भारत के इतिहास में युग-विभाजन की समस्या

यह पुस्तक जो तुम लोगों के हाथ में है, इसे देख कई लोग बोलेंगे यह आधुनिक भारत का इतिहास है। ऐसा क्यों ? क्योंकि इसमें प्लासी के युद्ध से लेकर भारत की स्वाधीनता प्राप्ति की कथा है। भारत में ब्रिटिश शासन शुरू और शेष होने की कथा है। ये सब विषय ही आधुनिक भारत का इतिहास है, इसके पहले था मध्य युग का इतिहास, और इसके भी पहले था प्राचीन युग। इस प्रकार भारत के इतिहास के तीन युग मिलते हैं— प्राचीन, मध्य और आधुनिक।

आधुनिक शब्द आया है 'अधुना' से। इसका अर्थ हुआ वर्तमान काल, सामयिक या नूतन। इस तरह सामयिक या वर्तमान काल में घटी घटना को आधुनिक काल की घटना कहते हैं। इस दृष्टि से देखने पर कलिंग युद्ध 2014 ई० से बहुत पहले घटित हुआ था। उसके बहुत बाद पानीपत का प्रथम युद्ध हुआ था उसके भी बहुत बाद प्लासी का युद्ध हुआ। अत: समय के हिसाब से प्लासी का युद्ध, अन्य युद्धों की अपेक्षा बाद में घटा। इसी से — उसे जरा सा आधुनिक कह सकते हैं। 1957 ई० से समय जितना आगे बढ़ता है उतना ही भारत का इतिहास आधुनिक हो उठता है।

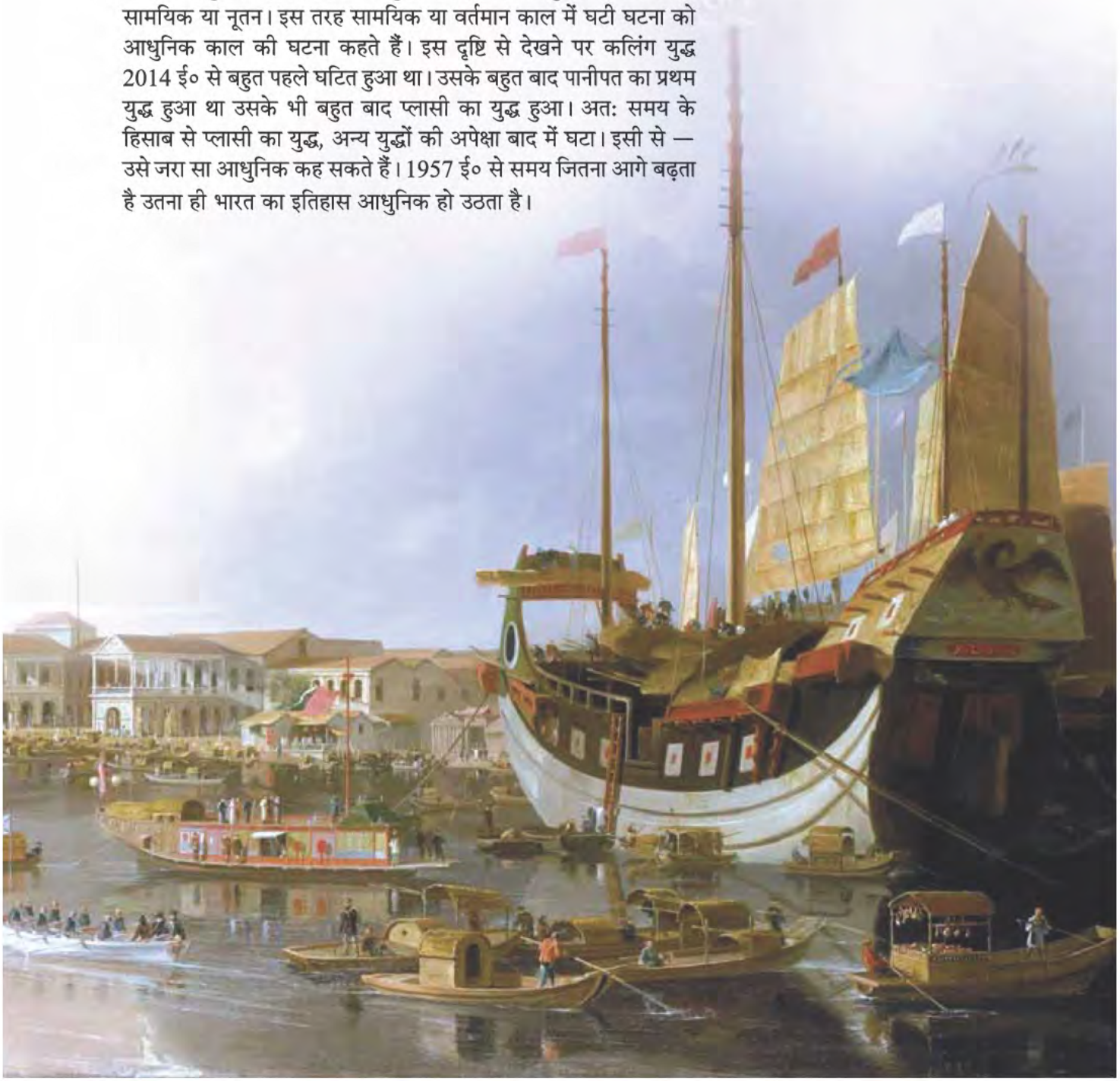

ये प्राचीन, मध्य और आधुनिक — इतिहास के विभाजन कब से शुरू हुए? 1808 ई० में 'मृत्युंजय विद्यालंकार' ने 'राजाबली' नाम की इतिहास की एक पुस्तक लिखी थी। भारत का इतिहास लिखते समय 'मृत्युंजय' ने इतिहास को महाभारत में राजा युधिष्ठिर के समय से शुरू किया और इसका अन्त किया कलियुग के राजाबली तक आकर। आज कोई भी इतिहास लेखक 'कलिंग युग का इतिहास' शब्द का व्यवहार नहीं करता। किन्तु उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में 'मृत्युंजय विद्यालंकार' ने किया था। इस पुस्तक में घटने वाली प्रत्येक घटना अद्भुत थी। राजा की कहानी बताने के लिए ही 'राजाबली' लिखी गई। इसमें राजा के कार्यों का संचालन करने वाली कोई अदृश्य शक्ति थी। राजा केवल उसके कार्यों का फल भोगता था।

आज इतिहास की लिखी पुस्तकों में इस प्रकार की कहानियाँ नहीं लिखी जाती। आज प्रत्येक घटना को राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक तुला पर तौल कर प्रस्तुत किया जाता है। तब यह 'राजाबली' — इतिहास लेखन की पंरपरा किस प्रकार बदली?

1817 ई० में जेम्स मिल ने *History of British India* नामक भारत का इतिहास लिखा। पुस्तक का मूल उद्देश्य भारत के अतीत की जानकारियों को एक जगह एकत्रित करना, जिससे उसे पढ़ कर प्रशासन से संबद्ध विदेशी भारतवर्ष के विषय में साधारण परिचय पा सकें क्योंकि जिस देश और देश के वासियों पर शासन करेंगे उस देश के इतिहास को भी जानना होगा। वही भेड़िये और बकरी के बच्चे की कहानी हुई।

अपनी इस पुस्तक में 'मिल' ने भारत के इतिहास को तीन भागों में बाँटा— हिन्दू युग, मुस्लिम युग और ब्रिटिश युग। आरंभ के दो कालों का नामकरण शासक के धर्म के अनुसार किया गया है, किन्तु अंतिम नाम शासक की जाति पर आधारित है। इसी कारण उसे ईसाई युग न कह कर ब्रिटिश युग कहा गया। अर्थात् ब्रिटिश सभ्यता धर्म से नहीं जाति से ही जानी जाए। आधुनिक बनने के लिए धर्म के बदले जाति को प्रमुखता दी जाती है। साथ ही 'मिल' ने लिखा कि मुस्लिम युग भारत के इतिहास का अन्धकारमय युग है, साथ ही हिन्दू युग के लिये भी श्रद्धा नहीं दिखाई देती है।

'मिल' के द्वारा लिखित इतिहास से दो विषय बनते हैं। पहला, भारत के इतिहास का युग-विभाजन हुआ शासकों के धर्म परिचय से और मिल ने यह धारणा बना ली कि प्राचीन भारत के सब शासक ही हिन्दू थे। इसी कारण जैन धर्मावलम्बी 'चन्द्रगुप्त मौर्य' और बौद्ध धर्मावलम्बी 'बिन्दुसार' को भी हिन्दू युग में सम्मिलित कर लिया गया। इसी प्रकार मध्ययुग के सभी शासकों को मिल ने मुसलमान धर्म के साथ जोड़ दिया। फलस्वरूप अकबर जैसी उदारवादी शासक की पहचान भी धर्म के घेरे में बंध गई। द्वितीय महत्त्वपूर्ण बात यह है कि मिल ने भारत के सम्पूर्ण इतिहास को तीन भागों में विभक्त किया — हिन्दू, मुस्लिम और ब्रिटिश। कलान्तर में ये तीन विभाजन ही प्राचीन मध्य और आधुनिक कहलायें।

इतिहास परिचय

कई वर्षों तक भारत के इतिहास का ढाँचा यही रहा। इसी कारण प्लासी के युद्ध से लेकर गाँधी जी के अंहिसा आन्दोलन को एक ही खाने — आधुनिक में डाल दिया गया।

परन्तु अब इतिहास को इस प्रकार प्राचीन, मध्ययुग और आधुनिक दृष्टि से देखना समस्या बन गया है। रवीन्द्रनाथ के कथन को फिर से एक बार देखा जाए। सब देश के इतिहास एक जैसे ही होंगे यह कोई जरूरी नहीं। औरंगजेब की मृत्यु सन् 1707 ई० में हुई। इनके समय को साधारणत: भारत के मध्य युग के इतिहास में रखा जाता है। किन्तु मात्र अर्द्धशतक के उपरांत ही सन् 1757 ई० में प्लासी का युद्ध हुआ। प्लासी के युद्ध को रखा गया भारत इतिहास के आधुनिक काल में। जबकि बंगाल के नवाबी शासन के अदब-कायदों को मगुल प्रशासन से लिया गया था। ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी ने भी अपने शुरूआती शासन प्रबंधों में उन्हीं युक्तियों को अपनाया जिसे मुगल प्रशासन ने बनाया था। तब औरंगजेब को मध्ययुग और सिराजुद्दौला, लॉर्ड क्लाईव को आधुनिक युग में डालने की युक्ति क्या है?

एक और कोण से इस विषय पर दृष्टिपात करें। जब सुलतान इल्तूतमिस मर गये। तब दिल्ली का शासन रजिया को अपनी बेटी को सौंप गये। कालान्तर में रजिया सुलतान की गद्दी पर बैठी। दूसरी ओर 18वीं सदी या उसके बाद भी, ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के गर्वनर जनरल या अन्य प्रशासनिक नेता के पद पर किसी नारी का नाम नहीं मिलता। अब नारी के शासन क्षमता की दृष्टि से कौन आधुनिक है। और कौन आधुनिक नहीं है? क्योंकि उसका जन्म पहले हुआ इस कारण ही सुलतान रजिया को मध्ययुग में रहना होगा?

संवादपत्र : आधुनिक समय के इतिहास लिखने के अन्यतम प्रधान उपादान हैं

जापान में आजाद हिन्द फौज के सम्मान में जारी किया गया टिकट। आधुनिक युग में इतिहास लेखन के क्षेत्र में पुराने डाक टिकटों का बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान है।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि भारतीय इतिहास को प्राचीन, मध्य, आधुनिक जैसे खण्डों में बाँटकर समझने का प्रयास करते हैं। यह एक तरह से अति-सरलीकरण हैं। 'युग' एक विस्तृत समय का सूचक है। प्रत्येक युग के मनुष्यों और उनके जीवन-यापन की अपनी विशिष्टताएँ होती है। प्रत्येक युग की सभ्यता का अपना वैशिष्ट्य होता है। ये विशेषताएँ रातों- रात नहीं बदलतीं। इसलिए युग परिवर्तन के बीच समय की कोई लकीर नहीं खीचीं जा सकती।

अन्य एक महत्त्वपूर्ण विषय है, वर्तमान से इतिहास की दूरी। वर्तमान और इतिहास के बीच की दूरी पर ही कोई तर्क-विवाद निर्भर करता हैं जैसे मान लो, राजा अशोक पर कलिंग युद्ध का क्या प्रभाव पड़ा? इस विषय पर तर्क-विवाद होने पर भी, यह विषय हमारे वर्तमान अर्थात् आज के हमारे जीवन को प्रभावित नहीं करता। इसलिए इस विषय को लेकर इतिहास में तर्क-विवाद हो सकते हैं, किन्तु आज के युग की प्रासांगिकता के अनुसार यह विषय महत्त्वपूर्ण नहीं हैं।

पानीपत के युद्ध के बारे में भी बहुत कुछ ऐसा ही कहा जा सकता है। किन्तु क्या 1947 ई० के भारत विभाजन के बारे में भी ऐसा कहा जा सकता है? यह विषय सीधे हमारे वर्तमान जीवन से संबंधित है, इसलिए प्रासांगिक है। यह विभाजन कई व्यक्तियों के जीवन में न जाने कितने परिवर्तनों का कारण बना। अत: विभाजन का प्रश्न हमारे वर्तमान से संबंधित है इसलिए विभाजन से संबंधित कई प्रश्नों पर नाना तर्क-विवाद इतिहासकारों के बीच होते रहें हैं। ऐसे विषय पर कई तरह के मत हैं। इतिहासकार को व्यक्तिगत लाभ-हानि से ऊपर उठकर निर्लिप्तभाव लिखना होगा। ऐसे विषय में व्यक्तिगत विचार और भावनाओं को इतिहास से दूर रखना, एक कठिन प्रयास है। इतिहास का समय जितना दूर होगा, यह कठिन प्रयास उतना कम होता जाएगा।

भारत के आधुनिक काल के इतिहास की सामग्री

आधुनिक इतिहास लेखन के लिए कई तरह की सामग्री है। वर्तमान से आधुनिक इतिहास का समय अधिक निकट होने के कारण अभी के इतिहास की सामग्री उपलब्ध है। चार-पाँच सौ साल पहले के कागजपत्र, पुस्तकें, चित्र नष्ट नहीं हुए हैं। इसके सिवाय सारी सामग्री को वैज्ञानिक प्रणाली से सुरक्षित रखने के उपाय भी किये गये हैं। पूरे विश्व के आधुनिक समय के इतिहास लेखन की सामग्री पर्याप्त अनोखी है भारतीय इतिहास इसका अपवाद नहीं है। प्रशासनिक कागजपत्र, पुस्तकें, डायरी, चिट्ठियों से शुरू करके जमीन विक्रय की दलील या रोजाना बाजार का दर — सब ही इतिहास की सामग्री है। इसके अतिरिक्त चित्र, मानचित्र, पोस्टर, विज्ञापन, संवादपत्र — कितने प्रकार की सामग्री का उपयोग इतिहास लेखन में किया जाता है।

इन विभिन्न सामग्रियों को विभिन्न तरीकों से काम में लाया जाता हैं। जैसे किसी की आत्मकथा से उसके समय के इतिहास की सामग्री पाते हैं। किन्तु हम सीधे उस

आत्मजीवनी का व्यवहार नहीं कर सकते क्योंकि आत्मजीवनी के लेखक ने अपनी विचारधारा और दृष्टिकोण से ही सारी व्याख्या की है। इतिहास वेत्ता यदि उस व्याख्या को जस का तस अपना ले तो सारा वक्तव्य इकतरफा, एक समान हो जायेगा। जैसे 'विलियम वेडारबर्न' ने अपने लेख 'एलेन अक्टोवियान ह्यूम' की जीवनी में भारत में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना का श्रेय ह्यूम को ही दिया है। बाद में गवेषणा से पता चला कि ह्यूम को जितनी प्रमुखता दी गयी है वे उसके हकदार नहीं हैं। इतिहास वेत्ता यदि केवल वेडारबर्न की बात ही मान लेते — तो नूतन विश्लेषण नहीं मिल पाता। अर्थात् सारी सामग्री को जाँचना-परखना होगा तब प्रयोग में लाना होगा।

भारतीय इतिहास के आधुनिक काल के विषय में जानने का अन्यतम साधन है फोटोग्राफ; अर्थात् कैमरा से खींचे गए चित्र। इस प्रकार के चित्रों के संग्रह से सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक इतिहास के नाना पक्षों की जानकारी मिलती है। किन्तु फोटोग्राफ भी संपूर्णत: निर्भर योग्य नहीं है। जिस प्रकार जीवनी एवं आत्मकथा में लेखक की दृष्टि प्रमुख होती है उसी प्रकार फोटो खींचने वाले की दृष्टि की प्रमुखता होती है। फलस्वरूप एक ही विषय पर दो व्यक्तियों द्वारा खींचे गये फोटो के दो अर्थ हो सकते हैं।

नीचे का चित्र 1938 ई० में हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन के समय का है। चित्र में गाँधी और सुभाष हँस कर बातें कर रहे हैं। जबकि इस समय इन दोनों के बीच कई विषयों को लेकर मतभेद थे। यहाँ तक कि इसके बाद के वर्ष में सुभाष ने सभापति पद त्याग दिया था। इस चित्र से इन दोनों के बीच के संघर्ष का बोध नहीं होता। फलस्वरूप फोटो के पीछे का इतिहास न मालूम होने पर फोटो से सर्वदा ठीक मनोभाव नहीं दिखते।

प्रशासनिक कागज पत्रों में भी दृष्टिकोण का यह भेद स्पष्ट दिखलायी पड़ता है। जैसे, ब्रिटिश शासकों की नजर में भारत के किसान एवं उपजातियों का विद्रोह 'हंगामा' या (उत्पात) था। उनके द्वारा लिखी गयी प्रशासनिक रिपोर्ट में भी इसे हंगामा या उत्पात लिखा गया है। इस आन्दोलन को उपनिवेशवाद के विरोधी आन्दोलन के रूप में देखने पर इसका दूसरा रूप दिखलायी पड़ेगा। तब तीतूमीर, बिरसा मुंडा, सिद्धू-कानू किसी भी दृष्टि से हंगामावादी नहीं स्वाधीनता संग्रामी सिद्ध होंगे।

इससे यह स्पष्ट होता है कि इतिहास को देखना, विश्लेषण करना पूर्णत: इतिहासकार की दृष्टि और बोध पर निर्भर करता है। उस दृष्टि और बोध के पीछे कई प्रकार के कारण होते हैं। इन सबके बीच साम्राज्य का स्वार्थ उपनिवेश विस्तार का आग्रह या राष्ट्रीयतावाद का आदर्श रह सकता है। अब जरा समझा जाए कि साम्राज्यवाद उपनिवेशवाद किसे कहते हैं?

साम्राज्यवाद एक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में एक शक्तिशाली देश अथवा राष्ट्र अपने से कमजोर राष्ट्र को अपने अधीन कर अपनी सत्ता कायम करता है। अपने अधीन देश की सम्पदा, जन-गण पर प्रभुत्व कायम कर वह शक्तिशाली देश अपनी इच्छानुसार उसे चलाता है। अत: शक्तिशाली जब अपने अधीन किसी दुर्बल का इतिहास

नीचे अंकित चित्र मुम्बई के एक ब्राह्मण परिवार का है। चित्र में पुरूष और स्त्रियों की पोशाक, खड़े होने की और बैठने की भंगिमा, चित्र में उनके मनोभाव, सामाजिक, सांस्कृतिक स्थिति आदि समझ में आते हैं।

अतः सामाजिक-सांस्कृतिक पक्ष के अध्ययन की दृष्टि से इस फोटो का महत्व है।

खोजता है तब 'जेम्स मिल' के समान स्थिति होती है। दुर्बल देश का इतिहास उन्हें हीन बतलाने की दृष्टि से रचा जाता है। कहा जाता है कि दुर्बल देश केवल दुर्बल ही नहीं असभ्य भी हैं। इसी से उनका इतिहास नहीं है क्योंकि इतिहास केवल सभ्य जाति का होता है। इसी कारण इतिहासविहीन असभ्य जाति को सभ्य बनाने के लिये उन्हें सभ्य साम्राज्य के तले रखना उचित है।

साम्राज्यवाद के साथ उपनिवेशवाद का संबंध स्पष्ट है। मान लीजिए— भारत की अर्थनीति कभी ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के स्वार्थानुसार चलती थी। इंग्लैण्ड में नील की खपत के अनुसार भारत में नील की खेती की जाती थी। इससे बंगाल की पटसन, धान आदि खेती मार खाती थी जिससे बंगाल में अकाल का प्रकोप बढ़ता चला गया। एक क्षेत्र की जनता और सम्पदा को दूसरे क्षेत्र के स्वार्थ के लिये प्रयोग में लाना ही उपनिवेशवाद का मूल तथ्य है। उपनिवेश होने के कारण भारत में कृषि/खेती का उत्पादन ब्रिटेन के स्वार्थानुसार होता था।

भारत के शिक्षित व्यक्तियों ने धीरे-धीरे साम्राज्यवादी विचारधारा का विरोध करना शुरू किया। अंग्रेजी शिक्षा, सरकारी नौकरी पाने के बावजूद शिक्षित समाज अपने अधिकारों के प्रति सचेत हो अपने अधिकारों की मांग करने लगा। इस चर्चा से इतिहास भी अछूता न रहा। 'मिल' की साम्राज्यवादी युक्ति को ही ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के विरूद्ध में व्यवहार करना आरंभ हुआ। प्राचीन भारत का इतिहास और मध्ययुग का इतिहास खोचा गया। इतिहास है, सिर्फ उसे नाना उपादानों से सामने लाने की जरूरत है। 'बंकिमचन्द्र' ने जो कहा था कि— हम, तुम सब इतिहास लिखेंगे, वह कार्य शुरू हो गया।

देश के मनुष्यों ने देश का इतिहास लिखा तब विश्लेषण के नये आयाम सामने आए। साम्राज्यवादी स्वार्थों के विपरीत, देश के उत्थान की चिन्ता ने इतिहास में अपनी जगह बनानी शुरू हुई। ब्रिटिश इतिहासवेत्ता ने सिराजुद्दौला पर दोषारोपण किया कि उन्होंने निरीह कर्मचारियों की हत्या की थी। भारतीय इतिहासकारों ने खोजकर यह सिद्ध कर दिया कि ब्रिटिश सरकार का अभियोग मिथ्या है। इतिहास में साम्राज्यवाद के विरूद्ध देशीय तथा राष्ट्रीयतावादी विश्लेषण का प्रवेश हुआ।

गाँधी को लेकर इस प्रकार के चित्र उत्तर भारत में कभी बहुत छापे जाते थे। चित्र में गाँधी को भारतमाता और हिन्दू धर्म के रक्षक के रूप में दिखलाया गया है। राष्ट्रीयतावादी आन्दोलन के धार्मिक प्रतीक के रूप में इस प्रकार के चित्र का महत्त्व है।

आगामी एक वर्ष के इतिहास के तथ्य, तत्त्व, अवधारणा के साथ-साथ इस द्वन्द्व की झलक इस पुस्तक में कई जगह दिखलाई पड़ेगी। साथ ही प्राय: 250 वर्षों में भारत के समाज, राजनीति, संस्कृति और मनुष्य के जीवनयापन में आये बदलावों का भी वृत्तान्त मिलेगा। हम देख पायेंगे कि अब इतिहास हम से दूर नहीं है। वह हमारे वर्तमान के साथ है, हमें स्पर्श कर रहा है। परिवार के वरिष्ठ सदस्य अपने को उस इतिहास में खोज पायेंगे। उनके अनुभवों से ही हमारा वर्त्तमान परिचालित होगा।

इसके बाद भी प्रश्न रह जाता है इतिहास क्यों पढ़ें? पुरातन दिनों की घटनाओं का जानकर क्या करें? एक कहानी सुनो। एक दिन रेलवे स्टेशन पर दो यात्री मिले। रेल के आने में देरी होने के कारण दोनों ने बातचीत शुरू की। बातचीत से उन्हें मालूम पड़ा वे दोनों एक ही परिवार के सदस्य है। उनके बीच पारिवारिक सम्बन्ध है। कई वर्ष पहले दोनों परिवार अलग हो गये थे। अत: दोनों परिवारों के बीच कोई सम्पर्क न रहा था। इससे दोनों एक-दूसरे को पहचान न पाये। अब इस कहानी को यथार्य की भूमि पर देखें तो? स्वाधीन राष्ट्र भारतवर्ष के पड़ोसी राज्यों में दो राष्ट्र भारत के अत्यन्त निकट आत्मीय थे। लम्बे समय तक वे पास-पास थे। फिर एक समय आया जब वे अलग हो गये। समय बीतने के साथ-साथ आत्मीयता के बंधन भी टूट गये। आज वे एक दूसरे को आत्मीय के रूप में पहचान भी नहीं पाते। अपनों से दूर खोये हुए आत्मीय स्वजनों को नये सिरे से पहचानने के लिए इतिहास पढ़ना होगा। आत्मीयता खोकर अलगाव कैसे आ गया यह समझने के लिये इतिहास पढ़ना होगा।

नीचे का चित्र देश के विभाजन की यंत्रणा और शरण की तलाश में कातर मनुष्यों का है। चित्र में स्त्री-पुरूष की आँखों से ही उनका उद्वेग, आशंका दिखलायी पड़ रही है।

2 प्रादेशिक शक्तियों का उत्थान

ऊपर के बाएँ चित्र में मुगल सम्राट औरंगजेब बैठे हुए हैं। दाहिनी ओर लॉर्ड कर्नावालिस की एक मूर्ति है। औरंगजेब और लॉर्ड कर्नावालिस के चित्रों में कोई अन्तर दिखायी पड़ रहा है क्या? कर्नावालिस खड़े हैं, उन्होंने रोमन पोशाक पहनी है। कर्नावालिस की मूर्ति बनाते समय उन्हें रोमन पोशाक पहनाने की बात ही क्यों सोची गयी? सोचो— एक सूत्र देते हैं— रोमन साम्राज्य और ब्रिटिश साम्राज्य।

1707 ई० में मुगल सम्राट औरंगजेब की मृत्यु हुई। 1757 ई० में प्लासी युद्ध के माध्यम से भारतीय उपमहादेश में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी का उत्थान हुआ। इन दोनों घटनाओं के बीच व्यवधान मात्र 50 वर्ष का है। सम्राट औरंगजेब की मृत्यु के बाद मुगल शक्ति का बहुत शीघ्र पतन होने लगा। फलस्वरूप मुगल साम्राज्य का ध्वंस हो गया। मुगल राजाओं की अयोग्यता, उनकी अकुशल शासन व्यवस्था को ही अनेकों ने इस पतन का कारण माना है। एक साम्राज्य तथा उसकी शासन व्यवस्था किसी एक व्यक्ति पर निर्भर नहीं करती। तब मुगल साम्राज्य की अवनति या पतन के कारणों की व्याख्या किस प्रकार की जा सकती है?

सम्राट जहाँगीर और शाहजहाँ के समय से ही मुगल शासन में छोटी-बड़ी समस्या दिखलायी पड़ने लगी थी। सम्राट औरंगजेब के शासन के अन्तिम समय में साम्राज्य की यह कमजोरियां, समस्यायें स्पष्ट रूप से दिखायी पड़ रही थी। औरंगजेब के उत्तराधिकारी उन समस्याओं का निदान नहीं कर पाये थे। उनकी दुर्बलताओं के कारण उन समस्याओं ने और भी विकराल रूप धारण कर लिया था।

मुगलों की सामरिक-व्यवस्था उन दुर्बलताओं में से एक थी। मुगल शासकों ने 18 वीं सदी में सामरिक-सुधार नहीं किया था। अत: आन्तरिक विद्रोह हो या बाहरी — मुगल सेना उसका सामना करने में असमर्थ थी। शिवाजी और मराठों के आक्रमण ने

मुगल शासन को झकझोर डाला था। दूसरी ओर नादिरशाह के नेतृत्व में पारसी आक्रमणों (1738-39 ई०) तथा अहमद शाह अब्दाली के नेतृत्व में अफगानों के आक्रमण (1756-57) ने दिल्ली को ध्वस्त कर डाला था।

साथ ही साथ जागीरदारी तथा मनसबदारी व्यवस्था के संकट ने मुगल शासन की आधारशिला तोड़ डाली थी। विशेषकर भूमि-कर के क्षेत्र में अत्यन्त गड़बड़-झाला दिखाई पड़ रहा था। राजकोष खाली हो चुके थे। फलस्वरूप अर्थनीति पर भी इसका प्रभाव पड़ रहा था। जागीर पाने के इच्छुक अभिजात वर्ग के दरबारियों के बीच द्वन्द्व दिखलायी पड़ रहा था। दुर्बल सम्राट एक-एक अभिजात पक्ष को अपनी तरफ लाने की कोशिश में थे। सब मिलाकर अभिजात वर्ग तथा सम्राट सुदृढ़ शासन व्यवस्था की अपेक्षा व्यक्तिगत लाभ-हानि के लिये अधिक सचेष्ट थे।

साम्राज्य के आय-व्यय के गड़बड़ी-झाले ने कृषि व्यवस्था पर अपना प्रभाव डाला था। उस दबाव के कारण कृषक वर्ग ने विद्रोह कर दिया था। इन सब कारणों से मुगल शासक कमजोर पड़ गये थें। उनकी कमजोरी का लाभ उठा प्रादेशिक शक्तियां एक-एक कर सर उठाने लगी थीं। तथापि इन शक्तियों ने सीधे-सीधे मुगल शासन को नकारा भी न था। मौखिक रूप से मुगल शासक की वैधता को प्रादेशिक शक्तियां मान कर चलती थी। अपने शासन की मान्यता पाने के लिये प्रादेशिक शासक मुगल सम्राट का अनुमोदन चाहते थे। यहाँ तक कई प्रदेशों ने अपनी शासन व्यवस्था मुगल ढाँचे के अनुसार ही तैयार की थी। वास्तव में अठारहवीं शताब्दी में प्रादेशिक शक्तियों का उत्थान एक प्रकार से राजनैतिक परिवर्तन की साक्षी थी। राजनैतिक क्षमता का विकेन्द्रीकरण हो चुका था। इसी कारण मुगल शासन व्यवस्था के दुर्बल होने पर भी मुगल राष्ट्र का ढाँचा टूटकर बिखर नहीं गया था। अपितु प्रादेशिक शक्तियों के बल पर वह टिका हुआ था।

प्रादेशिक शक्तियां कई प्रकार की थी। उनमें से कई की स्थापना विभिन्न राज्य में कार्यरत प्रादेशिक प्रशासकों ने की थी। साथ ही साथ कुछ ऐसे राज्य भी स्वतन्त्र हो गये थे, जो थे तो मुगलों के अधीन पर अपने राज्य में उनका अपना शासन चलता था। प्रादेशिक शक्तियों में तीन शक्तियां मुख्य थीं। वे थी— बंगाल, हैदराबाद और अयोध्या। इन तीनों प्रदेशों के प्रधान तीन मुगल शासक थे। उन्होंने कभी भी खुल कर मुगलों का या केन्द्रीय शासन का विरोध नहीं किया जबकि अपने प्रदेशों में उनकी पूर्ण प्रशासनिक क्षमता थी।

बंगाल

सम्राट औरंगजेब ने मुर्शिदकूली खान को बंगाल में ठीक से राजस्व वसूलने के लिये दीवान बनाकर भेजा था। सम्राट बहादुरशाह के शासन काल में भी वे (मुर्शिदकूली खान) इस पद पर थे। सम्राट फारुखशियर ने मुर्शिदकूली को दीवान पद पर पक्का

कर दिया था। 1717 ई० में मुर्शिदकूली को बंगाल के नाजिम पद पर नियुक्त किया। इसके फलस्वरूप दीवान और नाजिम दो दायित्वों के कारण सूबा बंगाल में मुर्शिदकूली की क्षमता बहुत बढ़ गयी। प्रादेशिक शक्ति के रूप में मुर्शिदकूली के शासन के समय बंगाल की काफी उन्नति हुई।

कुछ बातें

औरंगजेब का पत्र मुर्शिदकूली खान को

सम्राट औरंगजेब ने अपने मुंशी इनायतउल्ला से चिट्ठी लिखवाकर बंगाल के दीवान मुर्शिदकूली को भेजी थी। उस चिट्ठी से बंगाल के दीवान के प्रति सम्राट के मनोभावों का पता चलता है। मूल चिट्ठी फारसी में लिखी हुई है। उस चिट्ठी में लिखा था :

"बादशाह की आज्ञानुसार लिखा जा रहा है कि — अब बिहार प्रदेश के दीवान का पद भी आपको सौंपा जाता है अत: आप स्वयं उड़ीसा जाए यह उचित नहीं है। वहाँ एक प्रतिनिधि (नायब) नियुक्त कर जहाँगीर नगर लौट आयें कारण युवराज (आजिम उश शान) कुमार (फरुखशियर) को ढाका में रखकर स्वयं पटना चले गये है। आप अत्यन्त व्यस्त हैं कई स्थानों को आपको देखना है अत: जहाँ से आप सब जगह शासन कर सकें ऐसे केन्द्र स्थल पर रहना आपके लिये उचित होगा। बादशाह हुकुम दे रहे हैं — उड़ीसा एक पृथ्क प्रदेश (सूब) एक कोने में स्थित है। हमेशा ही यहाँ अलग शासनकर्ता आया है और आपके कार्यस्थल (बंगाल) के साथ इसका किसी प्रकार भी संबंध न था। इस प्रदेश की अवस्था (दशा) लिखकर बताइएँ" जहाँगीर नगर को ढाका कहा गया है और एक चिट्ठी में लिखा गया —

"इससे पहले बादशाह के हुकुम से इस मंत्रीवर को लिखा गया था कि प्राय: नब्बे लाख रुपयों का सरकारी खजाना जो बंगदेश और उड़ीसा से संग्रह किया गया और जिसका परिमाण आपने बादशाह को लिखकर बतलाया था, उसके साथ ही अन्यान्य और भी धन जो संग्रहित होगा, जितना शीघ्र हो सके यहाँ भेज दें। यदि आपने पूर्वप्रेरित आज्ञानुसार पूर्वोक्त धन सदर की ओर रवाना कर दिया तो ठीक है, नहीं तो इस पत्र को पाते ही सब धन तथा और दूसरा जितना अदा किया हुआ है, वह सब शीघ्रतातिशीघ्र हुजूर की सेवा में (भेज) दें। समझिये इस क्षेत्र में विलम्ब, अवैध है क्योंकि इस विषय में बादशाह ने जोरदार छानवीन की है। निश्चय ही इस आज्ञा को कार्य के रूप में परिणत करेंगे।"

इस चिट्ठी से एक बात स्पष्ट होती है कि औरंगजेब के अन्तिम समय में राज-खजाने में धन का अभाव तथा बंगाल सूबा से भेजे गये धन का बहुत महत्त्व है। एक अन्य चिट्ठी में मुर्शिदकूली को लिखा गया—

आप राजकीय राजस्व संग्रह के लिये-परिश्रम करते है एवं प्रार्थना करते हैं कि बादशाह अपने हाथों से लिख कई छत्र सहित एक फर्मान आपके नाम प्रेषित करें, उससे बादशाह अवगत हुए। सम्राट अनुग्रहपूर्वक आपको एक उज्ज्वल सम्मान सूचक परिच्छद एवं अपने हस्ताक्षर से आभूषित फर्मान प्रदान करते है।

निश्चय ही इन सब अनुग्रहों के लिये धन्यवाद प्रकाश करने, राजस्व संग्रह और हूजूर की सेवा के लिये अत्यन्त कठोर परिश्रम करेंगे। ..... अत्यन्त शीघ्र ही जरुरी फर्मान आपके पास पहुँच जायेगा।

[उपयुक्त चिट्ठियों को मूल फारसी से बंग्ला में अनुवाद किया यदुनाथ सरकार ने। उनके 'मुर्शीदकूली खान के अभ्युदय' प्रबन्ध से उदधृत किया गया (मूल वर्तनी अपरिवर्तित)।]

मुर्शिदकूली के शासन काल में बंगाल में एक शक्तिशाली जमींदार श्रेणी का उदय हुआ। वे नाजिम को नियमित राजस्व देकर अपने अंचल में पूर्ण क्षमता का भोग करते। मुर्शिदकूली के शासनकाल में बंगाल की राजनैतिक परिस्थिति व्यापार के लिये अनुकूल थी। समुद्र मार्ग द्वारा कई तरह के पदार्थों, द्रव्यों का निर्यात भी बंगाल से होता था। हिन्दु, मुसलमान एवं आर्मेनियान व्यवसायी इस व्यवसाय में प्रमुख थे। हिन्दु उद्योगपति भूमिचाँद और आर्मेनियान वणिक खोजा वाजिद इन सबमें अन्यतम थे। इन सब धनी उद्योगपति और महाजन के हाथों में आर्थिक क्षमता के साथ-साथ राजनैतिक क्षमता भी है। शासक भी इनकी सहायता पर निर्भर करते थे। इसी प्रसंग में मुर्शिदाबाद के विख्यात मूलधन व्याज पर देने वाले 'जगत् सेठ' का नाम प्रसिद्ध है। बंगाल के सूबा और कोशागार, टकसाल पर 'जगत् सेठ' का नियन्त्रण परोक्ष रूप से था।

कुछ बातें

जगत् सेठ

मुर्शिदाबाद की राजनीति और अर्थनीति पर वणिकों का बहुत अधिक प्रभाव था। इस वणिक राजाओं में मुख्य थे ऊमिचाँद, खोदा वाजिद और जगत् सेठ। मुर्शिदाबाद में सिराज विरोधी क्रियाकलाप में जगत् सेठ की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। 1652 ई० सन में हिरापद शाह राजस्थान से पटना चले गये। उनके बड़े बेटे मानिकचंद ने ढाका में महाजनी का कारोबार शुरु किया। मुर्शिदकूली खान के साथ मानिकचन्द के अच्छे सम्बन्ध थे। इसी कारण मानिकचंद ने ढाका छोड़कर मुर्शिदबाद में व्यवसाय संभाला। मानिकचंद के बाद उनके भाँजे फत्तेचंद ने व्यवसाय सम्भाला। फत्तेचंद को मुगल सम्राट से जगत् सेठ की उपाधि मिली। यह उपाधि वंश दर वंश चलती रही। अर्थात् जगत् सेठ किसी एक व्यक्ति का नाम नहीं, एक वणिक परिवार को दी गयी उपाधि है।

अपने से मुद्रा निर्माण, महाजनी व्यवसाय आदि के कारण जगत् सेठ के पास विपुल आर्थिक क्षमता थी। एक प्रकार की बैंक व्यवस्था का निर्माण किया था जगत् सेठ ने। तात्पर्य यह कि बंगाल की अर्थनीति पर जगत् सेठ का पर्याप्त नियन्त्रण था। साथ ही मुर्शिदाबाद के नवाबों पर भी उनका अच्छा खासा प्रभाव था। इसी कारण ईस्ट इण्डिया कम्पनी सिराज विरोधी अभियान में जगत् सेठ को भी शामिल करना चाहती थी। मीरजाफर जगत् सेठ के मनपसन्द व्यक्ति थे। ब्रिटिश कम्पनी ने मीरजाफर को ही नवाब निर्वाचित किया।

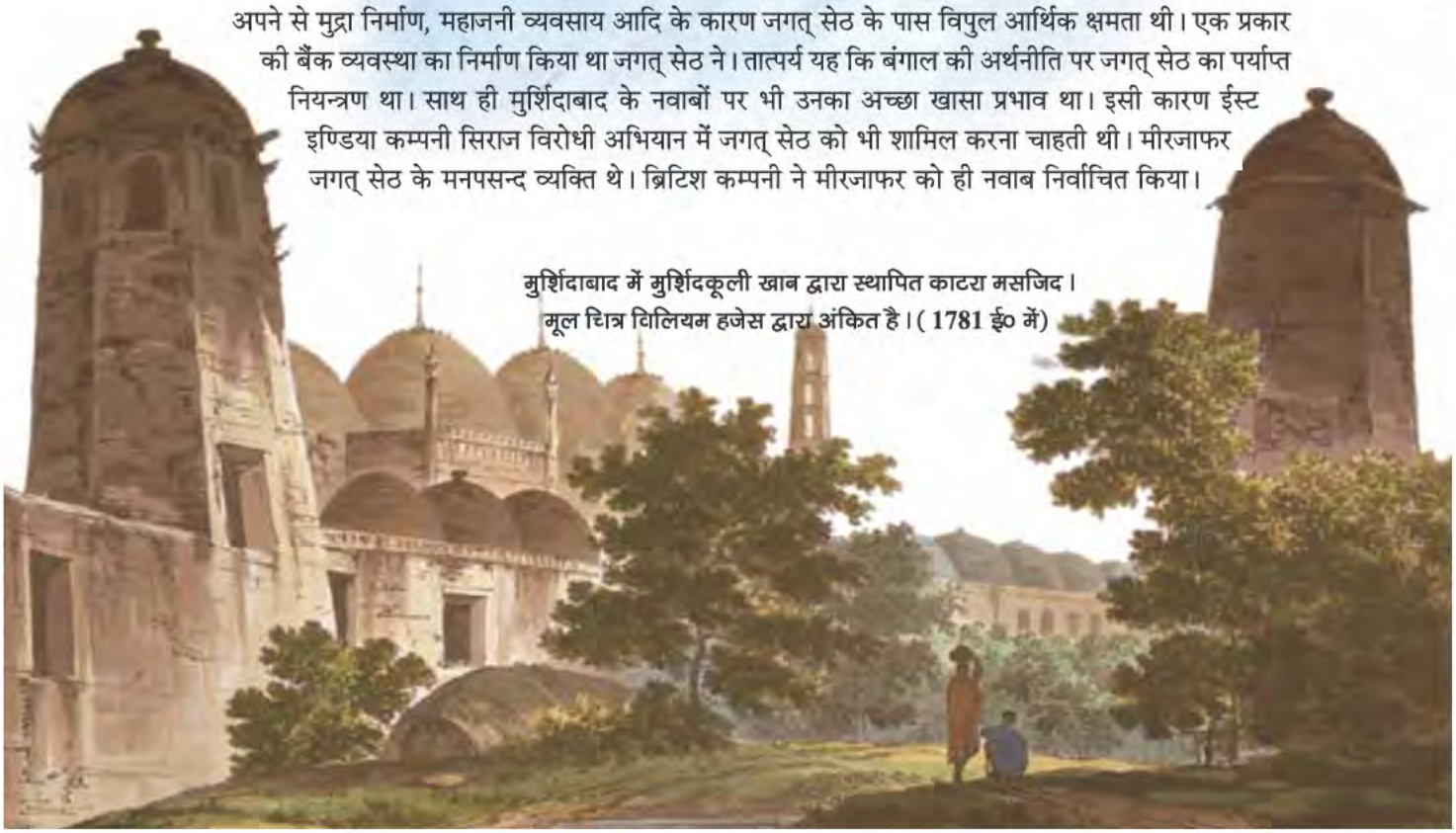

मुर्शिदाबाद में मुर्शिदकूली खान द्वारा स्थापित काटरा मसजिद। मूल चित्र विलियम हजेस द्वारा अंकित है। (1781 ई० में)

1727 ई० में जब मुर्शिदकूली की मृत्यु हुई, तब मुगलों के संग उनके संपर्क बहुत अच्छे थे। मुर्शिदकूली के उत्तराधिकारियों में क्षमता (उत्तराधिकार) को लेकर संघर्ष हुआ। उस समय जगत् सेठ और कई क्षमतावान जमींदारों ने सेनापति अलवर्दी खान को बंगाल सूबा का शासन प्रदान किया।

वास्तव में अलवर्दी खान के शासनकाल में ही बंगाल मुगलों के हाथों से निकल चुका था। शासन सम्बन्धित कोई भी समाचार या खबर दिल्ली में मुगल सम्राट तक नहीं पहुँचायी जाती थी। इसके सिवाय नियमित राजस्व भेजने की व्यवस्था भी बन्द हो गयी थी। यद्यपि रीतिसिद्ध भाव से मुगल सत्ता को स्वीकार करने के बावजूद बंगाल, बिहार, उड़ीसा में अलवर्दी खान द्वारा निर्मित स्व-शासित शासन चलाया जाता था। 1756 ई० में अलवर्दी खान की मृत्यु हुई। उनके पौत्र सिराजुद्दौला नवाब पद पर आसीन हुए। लेकिन जल्द ही दरबार के विभिन्न दल और ब्रिटिश कम्पनी के साथ सिराज का संघर्ष हुआ। इसके परिणाम स्वरूप बंगाल की शासन व्यवस्था पर कम्पनी का आधिपत्य हुआ।

कुछ बातें

बंगाल में वर्गी का धावा

बच्चा सोया, पड़ोस शान्त हुआ, वर्गी आया देश में — यह बाल-गीत सब जानते ही हैं। बंगाल में मराठा या वर्गी का धावा या आक्रमण अलवर्दी के समय की महत्त्वपूर्ण घटना है। 1742 से 1751 ई० के बीच मराठों ने बंगाल और उड़ीसा के विभिन्न स्थलों पर लूटपाट और आक्रमण किये थे। उस आक्रमण की स्मृति में कई बाल-गीत और कहावतें 'वर्गीहाना' नाम से प्रसिद्ध हुए थे। वर्गीधावे के भुक्तभोगी बंगाली कवि 'गंगाराम' ने वर्गी के अत्याचारों का विवरण दिया है — *"जैई मात्र पुनरपि भास्कर आर्ये / तब सरदारों ने सबसे पुकार के कहा / स्त्री पुरुष आदि जिसें भी देखोगे / तलवार खोल सबको काटना / इतने वचन यदि बोले सरदार / चारों ओर लूटे, काटे, बोले मार मार।"*

बंगाल के विभिन्न अंचलों में वर्गीयों ने लूटपाट से तबाही फैलाई। 1751 ई० में बंगाल के नवाब और मराठों के बीच सन्धि हुई। संधि में एक शर्त रखी गयी उड़ीसा के जलेश्वर के समीप सुवर्णरेखा नदी होगी बंगाल की सीमा। भविष्य में मराठे इस सीमा को पार न करेंगे। मराठों के आक्रमण से बंगाल के पश्चिम प्रान्त से असंख्य लोग पूर्वी-बंगाल, उत्तर बंगाल तथा कलकत्ता चले गये थे। कलकत्ता में कईयों को ब्रिटिश का आश्रय मिला। नवाब के विकल्प रूप में ब्रिटिश कम्पनी उनकी 'रक्षक' बन बैठी थी। वर्गी आक्रमण को रोकने के लिये कलकता में खाई खोदी गयी थी। उसे मराठा खाई कहा जाता था। कलकत्ता की ब्रिटिश कोठी के पत्र में इसका वर्णन मिलता है।

"कलकत्ता के काश्मिबाजार और पटना में हमारा (ब्रिटिश) कारोबार कुछ दिनों तक बन्द हो गया। ..... कलकत्ता में एक सौ बकसिया सेना नियुक्त की गयी और स्थानीय साहब लोगों को लेकर एक 'मिलिशिया' का गठन किया गया। कलकत्ता के बनियों ने प्रस्ताव रखा कि अपने घर-द्वार की रक्षा के लिये वे कलकत्ता के चारों ओर एक खाई अपने खर्च पर खुदवायेंगे। हमारी कौंसिल ने इस प्रस्ताव को मंजूरी दी। चार प्रमुख व्यक्तियों को जामिन रख, तीन महीने में लौटाने की शर्त पर 25,000 रुपये उधार दियें। तीसरी जनवरी 1944 के मध्य यह खाल, फोर्ट के दरवाजे से लेकर ह्रद (सॉल्टलेक) तक जाने के बड़े रास्ते को घेर कर पूर्ण हुई। अब गोविन्दपुर में कम्पनी की सीमा तक ले जाने का काम शुरु हुआ है।"

(गंगाराम द्वारा लिखी महाराष्ट्र-पुराण से अंश और ब्रिटिश कोठी की चिट्ठी से उदधृत अंश यदुनाथ सरकार के 'वर्गीयों का हंगामा' प्रबन्ध से लिया गया है। ब्रिटिश कोठी की चिट्ठी में जिस फोर्ट की चर्चा आयी है, अब जहाँ जनरल पोस्ट ऑफिस है।)

मीर कमान ऊद्दीन खान सिद्दिकी चिन कुलिच खान निजाम ऊल मूलक

हैदराबाद

मुगल दरबार का एक शक्तिशाली कुलीन था 'मीर कमान उद्दीन सिद्दिकि'। सम्राट औरंगजेब ने उसे 'चिन कुलिच खान' की उपाधि दी थी। बाद में उन्होंने फारुखशियर से निजाम उल मूलक और सम्राट मुहम्मद शाह से 'आसफ झा' की उपाधि पायी थी। 1724 ई० में उन्होंने हैदराबाद राज्य की स्थापना की।

मुगल प्रादेशिक शासक मुबारिज खान हैदराबाद में प्राय: स्वाधीन शासक के समान थे। 1723 ई० में आसफ झा ने मुबारिज खान को हटा दिया और इसके बाद वाले वर्ष स्वयं दक्षिणोत्तर सूबेदार होकर हैदराबाद में अपना आधिपत्य स्थापित किया। क्रम से स्थायी भाव से हैदराबाद में रहकर प्रशासन करने लगे निजाम। 1740 से ही निजाम के शासन में स्वाधीन हैदराबाद राज्य प्रकाश में आया।

मुगलों के कर्तृत्व को हैदराबाद ने अस्वीकीर नहीं किया। हैदराबाद में मुगल सम्राट के नाम की मुद्रा ही चलती थी। यहाँ तक कि सम्राट के नाम पर खुतवा का पाठ भी होता था। फिर भी वास्तव में प्रशासन के सब प्रमुख कार्य निजाम अपने अनुसार से ही चलाते थे। मुगल सम्राट तक कोई खबर समाचार पहुँचाता ही नहीं था।

हैदराबादी प्रशासन यद्यपि मुगल ढाँचे पर चल रहा था पर अन्दर व्यवस्था में काफी परिवर्तन किये गये थे। जैसे जागीर अब वंशगत हो गयी थी। प्रशासन में कई नये लोग आ गये थे। वस्तुत: हैदराबाद में प्रशासन का विकेन्द्रीकरण हुआ था।

सफदर जंग

अयोध्या

1722 ई० में सआदत खान के नेतृत्व में अयोध्या एक स्वशासित प्रादेशिक शक्ति के रूप में उभरा। मुगल शासक के प्रतिनिधि के हिसाब से सआदत खान का दायित्व था अयोध्या के अधीन राजा और दल के नेताओं के विद्रोहों का मुकाबला करना। बहुत जल्द विद्रोहों को दबाने के कारण मुगल सम्राट मोहम्मद सआदत खान को बुरहान-उल-मूलक उपाधि प्रदान की। मुगल सम्राट के द्वारा अपने जमाई (दामाद) सफदर जंग को सआदत खान ने अयोध्या का प्रशासक नियुक्त करवाया। साथ ही उन्होंने अयोध्या का दीवानी दफ्तर को दिल्ली के नियन्त्रण से हटा लिया। अयोध्या के राजस्व की कोई भी खबर दिल्ली कोशागार को भेजी नहीं जाती थी।

सआदत खान ने जागीरदारी व्यवस्था ने प्रादेशिक अनभिजात लोगों को भी अन्तर्भुक्त किया। अयोध्या का वाणिज्य-व्यवसाय बहुत ही उन्नत था। अयोध्या में सआदत खान के समर्थकों का एक नया दल बना। उसमें भारतीय मुसलमान, अफगान और हिन्दुओं की संख्या अधिक थी। सआदत खान ने मुगल दरबार से अयोध्या का पूरा सम्पर्क खत्म नहीं किया था। 1740 ई० में सआदत खान की मृत्यु हुई। तब तक अयोध्या में प्राय: स्वाधीन राजनीतिक व्यवस्था शुरु हो चुकी थी। रीति अनुसार सब कुछ में मुगल साम्राज्य के कर्तृत्व को स्वीकार किया जाता था। 1758 ई० में सफदर

जंग की मृत्यु के बाद उनका पुत्र सिराजुद्दौला अयोध्या का नया शासक बना। 1764 ई० में बक्सर के युद्ध प्राय: एक वर्ष पहले तक सिराजुद्दौला का अयोध्या पर एकछत्र राज्य था।

बंगाल के नवाब और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सम्पर्क का विवर्तन

मुर्शिदकूली खान के समय बंगाल में विभिन्न यूरोपीय वणिक और वाणिज्य कम्पनियाँ व्यवसाय करती थीं। उनमें ब्रिटिश, उलन्दाज, फरासी ये तीन कम्पानियाँ अत्यधिक शक्तिशाली थीं। इन तीनों में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी का उद्योग सबसे अधिक था। नवाब होने के नाते मुर्शिदकूली खान विदेशी व्यापारियों का खुल कर विरोध नहीं करते थे। परंतु अपने अधिकार और कर्त्तृत्वपन पर किसी विदेशी कम्पनी पर आघात न हो— इस विषय पर सदा सचेत रहते थे। वास्तव में मुर्शिदकूली खान और ब्रिटिश कम्पनी का सम्पर्क प्रभावित हुआ, फारुखशियर के फरमान के कारण।

कुछ बातें

फारुखशियर के फरमान

1717 ई० में दिल्ली के मुगल सम्राट ने एक आदेश या फरमान जारी किया था। उस फरमान के अनुसार ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी को बंगाल द्वारा कई विशेष वाणिज्यिक अधिकार प्रदान किये गये थे। जैसे कि ब्रिटिश कम्पनी मात्र तीन हजार रुपयों के विनिमय में व्यापार कर पायेगी, उसके लिये कम्पनी को कोई शुल्क भी न देना होगा। ब्रिटिश कम्पनी कलकत्ता के आस-पास 38 गाँवों की जमीन्दारी खरीद सकेगी। कम्पनी के चीजों के चोरी होने पर नवाब चोर को दण्ड देंगे एवं कम्पनी की क्षतिपूर्ति करेंगे। कम्पनी के जहाज पर अनुमति पत्र रहने पर वह जहाज बेरोक-टोक व्यापार कर पायेगा। इसके सिवाय बंगाल के नवाब का मुर्शिदाबाद टकसाल का उपयोग भी कम्पनी अपनी आवश्यकतानुसार कर पायेगी।

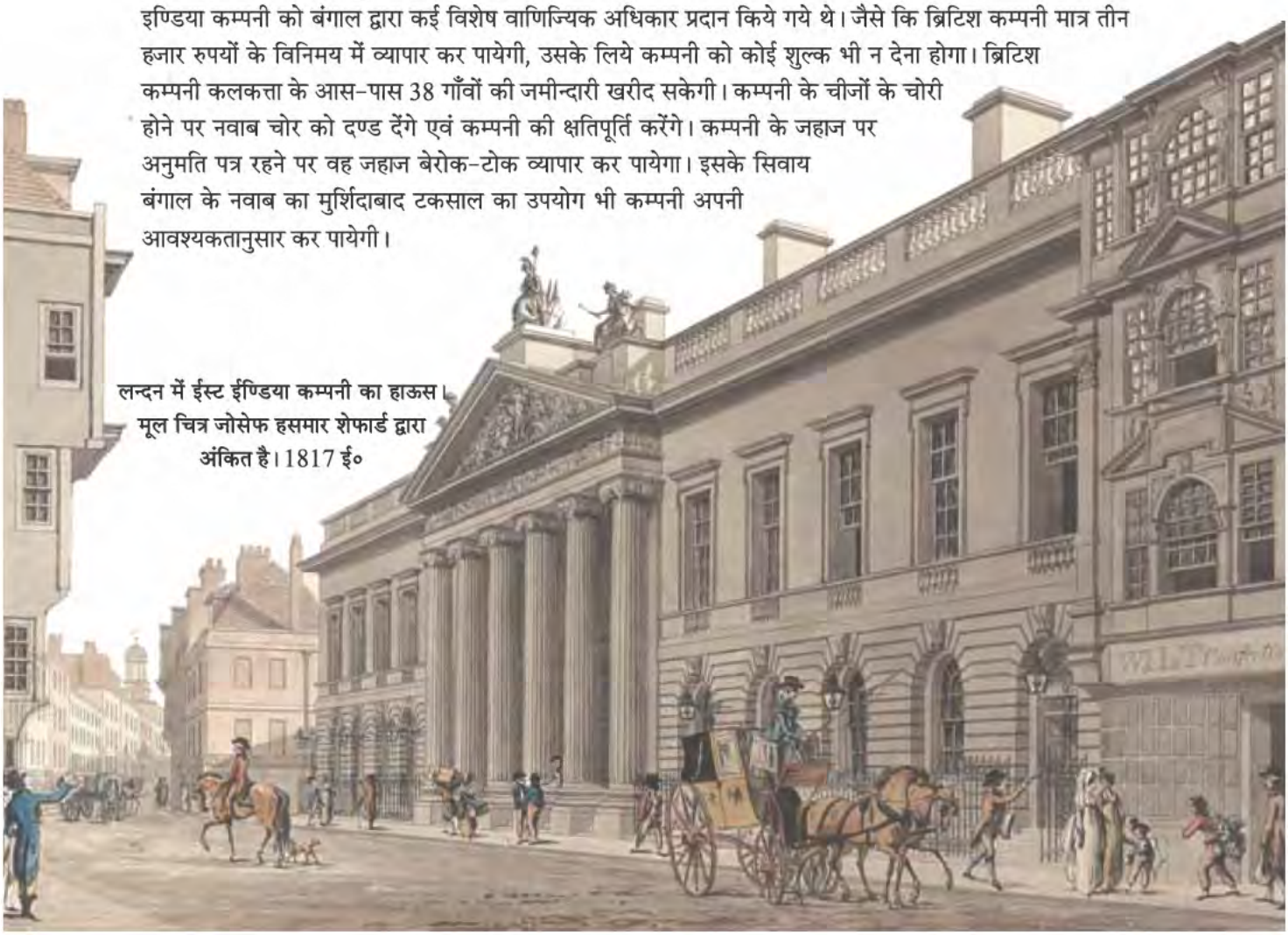

लन्दन में ईस्ट ईण्डिया कम्पनी का हाऊस। मूल चित्र जोसेफ हसमार शेफार्ड द्वारा अंकित है। 1817 ई०

मुगल सम्राट
फारुखशियार

फारुखशियर के फरमान ने ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी को बंगाल में व्यापार करने के लिये अबाध पथ खोल दिया। आसन्न भविष्य में इस फरमान ने ब्रिटिश कम्पनी की राजनैतिक एवं आर्थिक नीतियों को तय करने की भूमिका निभायी थी।

बंगाल सूबा पर स्वाधीन भाव से शासन करने के बावजूद मुर्शिदकूली खान मुगलों के अधीन थे। इसी कारण कम्पनी को फारुखशियर द्वारा दिये गये फरमान को रद्द करने का अधिकार उनके पास न था। किन्तु इस फरमान के फलस्वरूप ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी के बढ़ते हुए वाणिज्यिक सुविधाओं से वे खुश नहीं थे। अत: प्रारंभ से ही उन्होंने कम्पनी के अधिकारों को सीमित करने की चेष्टा की थी। मुर्शिदकूली ने घोषणा की कि समुद्र-पथ से किए गये व्यापार पर शुल्क नहीं लगेगा। स्थल-पथ से देश के अन्दर किये जाने वाले व्यापार शुल्क-रहित नहीं होंगे। ब्रिटिशों द्वारा गाँव के क्रय से भी मुर्शिदकूली की अस्वीकृति थी। इसके साथ ही मुर्शिदाबाद के टकसाल का उपयोग करने की सुविधा भी उन्होंने कम्पनी को नहीं दी।

फार्रुखशियर के फरमान के अनुसार केवल ब्रिटिश कम्पनी को शुल्क की रियायत थी। परंतु कम्पनी के वणिक अपने व्यक्तिगत व्यापार में भी शुल्क नहीं देकर नवाब से धोखा करने लगे। इसी बिन्दु पर मुर्शिदकूली के संबंध कम्पनी से बिगड़ गये। इसके सिवाय नवाब के कर्मचारी भी जब तब ब्रिटिश व्यापारियों से रूपये ऐंठते थे। पैसे न देने पर वे ब्रिटिश व्यापारियों पर अत्याचार भी करते थे। एक ऐसी ही घटना के कारण नवाब के कर्मचारी और ब्रिटिश व्यापारियों के बीच तनातनी हो गयी। अन्त में जगत् सेठ के हस्तक्षेप से यह झगड़ा मिटा। बंगाल के नवाब और कम्पनी के बीच विरोध का सूत्रपात वहीं से हुया।

बंगाल का नवाब
अलिवर्दी खान

मुर्शिदकूली के समान ही अलवर्दी खान ने भी बंगाल में यूरोपीय व्यापारियों के वाणिज्य के प्रति सकारात्मक रूख दिखलाया था। उन्हें लग रहा था इससे बंगाल की अर्थनीति समृद्ध होगी। परन्तु विदेशी व्यापारियों और कम्पनियों को किसी भी हालत में राजनैतिक, सामरिक क्षमता को बढ़ने नहीं दिया जायेगा। अलवर्दी इस बात का ख्याल रखते थे। जिससे ये विदेशी केवल व्यापार तक ही सीमित रहें। नवाब की सार्वभौम क्षमता के विरोधी के रूप में विदेशी व्यापारियों का उत्थान न हो सके, इसके प्रति अलवर्दी सर्वदा सजग रहते। साथ ही बंगाल की अर्थनीति की समृद्धि के वाहको पर कोई अत्याचार न हो पाये इसका ख्याल भी वे रखते थे। वस्तुत: बंगाल से विदेशियों को हटा देने की चिन्ता अलवर्दी खान को न थी।

विदेशी व्यापारियों के व्यापार के प्रति उत्साह दिखलाते हुए भी वणिक कम्पनी जिससे अपने आपस में लड़े झगड़े न इस पर अलवर्दी की कड़ी नज़र थी। इसी कारण बंगाल में फ्रांसीसी और ब्रिटिश कम्पनी के बीच संघर्ष नहीं हुआ। इन

दोनों कम्पनियों को ही दुर्ग तैयार करने की अनुमति नहीं दी थी अलवर्दी ने। उनका तर्क था— व्यापारी वर्ग को दुर्ग का क्या प्रयोजन ? इसके अतिरिक्त उनकी निरापदता की नवाब स्वयं ही देखभाल करते थे।

1744 ई० में मराठा आक्रमण के समय अलवर्दी खान ने ब्रिटिश कम्पनी से तीस लाख रूपयों की मांग की थी। कम्पनी ने उतना धन देने से मना कर दिया। इसी से नवाब और ब्रिटिश कम्पनी के बीच सम्बन्ध खराब होने लगे थे, बाद में 1748 ई० में ब्रिटिश कम्पनी ने आर्मेनियन जहाज को अटका रखा था जिससे अलवर्दी और कम्पनी के बीच मनमुटाव बढ़ा। अन्त में ब्रिटिश व्यापारियों पर कड़ा रूख लिया जायेगा, इस चेतावनी से आर्मेनियन व्यापारियों का जहाज छुड़ाया था अलवर्दी ने।

स्वयं करें

32 पृष्ठ पर अंकित मानचित्र के जैसा एक मानचित्र बनाओं। उसमें 18 वीं सदी के प्रारंभ की प्रादेशिक शक्तियों को चिन्हित करो।

सिराजुद्दौला व ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी का सम्पर्क :पलासी का युद्ध

अलवर्दी के उत्तराधिकारी के रूप में सिराजुद्दौला के नवाब बनने पर कईयों को असन्तोष था। सिराज के अपने आत्मीयों के साथ-साथ उनके सेनापति मीरजाफर भी सिराज के विरूद्ध थे। साथ ही साथ ईस्ट इण्डिया कम्पनी के साथ प्रारंभ से ही सिराज के सम्बन्ध अच्छे न थे। नवाब बनने के कुछ दिन बाद ही एक के बाद एक घटनाओं को केन्द्र में रखकर उनका ब्रिटिश कम्पनी से विरोध हुआ।

कुछ बातें

सिराज के ब्रिटिश विरोधी मनोभाव का कारण : ख्वाजा वाजिद को लिखा पत्र

1 जून 1756 ई० को सिराज ने मुर्शिदाबाद से अर्मेनीय व्यापारी खोजा वाजिद को एक चिट्ठी लिखी थी। उस चिट्ठी में उन्होंने ब्रिटिश के साथ अपने नकारात्मक मनोभाव के कारणों को स्पष्ट किया था। पत्र में लिखा था :

अंग्रजों को भगाऊँगा। अपने राज्य से अंग्रेजो को भगाने के तीन युक्तियुक्त उद्देश्य हैं — पहला कारण यह वे सुदृढ़ दुर्ग का निर्माण करते रहे है; चौड़ी खाई खोद रहे है— ये कार्य बादशाही साम्राज्य के चिर प्रचलित कानूनी विधानों के विपरीत हैं।

द्वितीय कारण — कम्पनी बिना कर शुल्क दिये व्यापार करने के लिये 'दस्तक' नामक जिस परवाने को पा रहे है, उसका वे गलत फायदा उठा रहे है। 'दस्तक' के लिए अनाधिकारी ब्रिटिश भी उसका लाभ उठा रहे हैं, जिससे बादशाही शुल्क को नुकसान हो रहा है।

तृतीय कारण — बादशाही कर्मचारी वृंद, जो ब्रिटिशों की मदद करते, उनके लिए वे अपने अधिकारों का प्रयोग कर न्याय व्यवस्था में बाधा देते। सिराज ने इस चिट्ठी में आगे लिखा—

'इन सब कारणों से इन्हें भगाना आवश्यक है फिर भी यदि ये लोग अपने सब अन्याय आचरण को दूर करना स्वीकार करें एवं नवाब जाफर खाँ (मुर्शिदकूली खान) के समय अन्यान्य व्यापारी जिस प्रकार व्यापार करते थे, उन नियमों को मान कर चलें तो क्षमा करूँगा, देश में रहने भी दूँगा। नहीं तो शीघ्र ही इन्हें भगा दूँगा।

बंगाल का नवाब सिराजुद्दौला

सिराज की चिट्ठी से उद्धृत अंश 'अक्षय कुमार मैडोय' के ग्रन्थ 'कलकत्ता अवरोध' अंश से लिया गया है।

अन्त में नवाब की सेना ने कलकत्ता के कासिम बाजार में स्थित अंग्रेजों की कोठी पर आक्रमण किया। 20 जून 1756 ई० को नवाब की सेना ने ब्रिटिश को हटा कलकत्ता पर अधिकार कर लिया। राजर ड्रेक और उसके सहयोगी कलकत्ता के दक्षिण में स्थित फलता भाग गये। कलकत्ता पर अधिकार कर उसका नाम रखा अलीनगर। कम्पनी के कर्ता हालवेल ने प्रचार किया कि कलकत्ता पर अधिकार करके उन्होंने 146 ब्रिटिश नर-नारियों को एक छोटे कमरे में बन्दी बना रखा था। जिससे अनेक बन्दी मर गये। इस घटना को 'अन्धकूप हत्या' कहा गया। यद्यपि ऐसी घटना घटी थी कि नहीं इस पर मतभेद है। इतिहासवेत्ता अक्षय कुमार ने अन्धकूप घटना को अतिरंजना कह कर प्रकाशित किया था।

कुछ बातें

अन्धकूप हत्या

"दारुण यंत्रना से पीड़ित हो इतने स्वजातियों की अन्धकूप हत्या पर भी अंग्रेजों के कागजातों में कहीं भी 'अन्धकूप हत्या' का नामोल्लेख नहीं है। ऐसा क्यों?

रण से पलायन कर जो अंग्रेज पलता के बन्दरगाह में बैठकर, दिन पर दिन जो गुप्त मन्त्रणा कर रहे थे, उनकी विवरण पुस्तकों के किसी भी स्थान पर अन्धकूप हत्या का उल्लेख क्यों नहीं है? ..... मद्रास के अंग्रेज शासक के अनुरोध पर दक्षिण के निजाम और आरकट के नवाब बहादुर ने सिराजुदौला को जो पत्र लिखा था उसमें कहीं थी 'अन्धकूप हत्या' का उल्लेख नहीं है। क्लाईव एवं वाटसन का बंगदेश में आगमन हुआ। प्लासी युद्ध के कुछ दिनों पहले उन्होंने सिराजुद्दौला को जो तीखे शब्दों में पत्र लिखे थे उनमें भी कहीं अन्धकूप हत्या का उल्लेख नहीं है। सिराजुद्दौला के साथ अलीनगर की सन्धि भी अन्धकूप हत्या का कहीं भी उल्लेख नहीं है।

.....

अन्धकूप हत्या की कहानी का प्रचार कब किसके द्वारा जनसमाज में प्रचारित किया गया, यह रहस्य है। हालवेल साहव उसके प्रथम प्रचारक थे।

.....

हालवेल ने जिस कारागार का वर्णन किया वह 18 फीट लम्बा और 18 फीट चौड़ा है। इतने छोटे कमरे में 186 लोगों को बन्दी रखा जा सकता है? इसपर कम लोगों ने विवेचना की है। एक मनुष्य के लिए 6 फीट लम्बा और 2 फीट चौड़ा स्थान आवश्यक होता है। इस प्रकार के संकीर्ण कक्ष में 81 मनुष्य से अधिक लोग अट ही नहीं सकते। अथच उस कोठी में 146 नरनारी किस प्रकार रह सकेंगे? छोटे से कमरे के कोटर में 146 नर-नारी को बन्द करना कलंक का विषय है। यह कलंक क्या केवल अतिरंजना है या काल्पनिक कलंक है? क्या ज्ञानगर्वित ब्रिटिश जाति ने इसको जरा भी देखा नहीं, सोचा नहीं? वे अश्रुपूरित नयनों से हालवेल की कल्पित कहानी को शिरोधार्य कर आज भी न जाने कितनी त्राहि-त्राहि मचाते है।

हालवेल मनुमेण्ट मूल रंगीन चित्र जेम्स बेलि फ्रेडार द्वारा आँका गया (1826 ई०)

अक्षय कुमार मैत्रेय के 'अन्धकूप हत्या रहस्य-निर्णय' प्रबन्ध से उद्धृत अंश लिया गया है।

यद्यपि कलकत्ता पर सिराज का अधिकार अधिक दिनों तक नहीं रहा। शीघ्र ही राबर्ट क्लाइव के नेतृत्व में एक सेनावाहिनी ने 1757 ई० में फरवरी के महीने में कलकत्ता पर पुन: अधिकार कर लिया। फलस्वरूप सिराज को अंग्रेजो के साथ सन्धि करने के लिए बाध्य होना पड़ा। अलीनगर की सन्धि के कारण ब्रिटिश कम्पनी को अपने वाणिज्यिक अधिकार वापिस मिले। नवाब ने ब्रिटिश कम्पनी को क्षतिपूर्ति दी। इसके सिवा ब्रिटिश कम्पनी ने कलकत्ता में अपना दुर्ग बनाना शुरु किया। यहाँ तक कि अपने सिक्के ढालने की अनुमति भी उन्हें मिली वास्तव में अलीनगर की सन्धि नवाब के पक्ष में असम्मानजनक और अंग्रेजों के लिए लाभदायक थी। क्रमश: ब्रिटिश कम्पनी का सिराज विरोधी रुख सामने आ रहा था।

1757 ई० के आरंभ में सिराजुद्दौला के साथ विभिन्न पक्षों को लेकर विवाद स्पष्ट हो रहे थे। 23 जून 1757 ई० में को प्लासी के युद्ध में अंग्रेजों की वाहिनी ने नवाब की वाहिनी को हटा दिया था। मीरजाफर ने उस युद्ध में मूलत: निष्क्रिय भूमिका निभायी थी।

कुछ बातें

नवाब मीर जाफर और प्लासी का लूटपाट

प्लासी के युद्ध के पश्चात् लार्ड क्लाइव ने मीर जाफर को नवाब बनाया। इस पद के विनिमय में मीरजाफर के साथ अंग्रेजों ने कई शर्ते रखी। उन शर्तों के अनुसार बंगाल में कम्पनी का व्यापार अबाध गति से चला। कम्पनी को अपनी मुद्रा ढालने का अधिकार भी मिला। 24 परगना जिले की जमींदारी और वहाँ से प्राप्त राजस्व से कम्पनी के सामाजिक खर्च मिटाने का अधिकार भी उन्हें मिला। मुर्शिदाबाद के दरबार में एक ब्रिटिश प्रतिनिधि नियुक्त किए गए। कलकत्ता के ऊपर नबाब के सारे अधिकार खारिज हो गए।

वस्तुत: नबाब मिरजाफर की सहायता करने के विनिमय में ब्रिटिश कम्पनी ने अबाध सम्पति हस्तगत कर ली। प्लासी के युद्ध के बाद सिराज के कलकत्ता आक्रमण पर अब तक एक करोड़ 11 लाख रूपये क्षतिपूर्ति के रूप में कम्पनी ने लिए उसके ऊपर क्लाईव-सहित कम्पनी के उच्च पदाधिकारियों ने व्यक्तिगत रूप से पर्याप्त धन कमाया था। सब मिलाकर ब्रिटिश कम्पनी ने प्राय: 3 करोड़ रूपये मीरजाफर से लिए थे। कम्पनी की तरफ से इस अर्थ को आत्मसात् को 'प्लासी की लूट' कहा गया। इस लूट के कारण नवाब का खजाना खाली हो गया।

प्लासी युद्ध के बाद मीरजाफर और क्लाईव का आमना-सामना। मूल रंगीन चित्र फ्रांसिस हेयान द्वारा अंकित।

1760 ई० सन् की शुरूआत में रॉबट क्लाईव इंग्लैड वापस लौट गए उस समय ब्रिटिश कम्पनी के अनेक उच्च पदस्थ व्यक्ति मीरजाफर को नवाबी पद से हटाने के लिए सक्रिय हो गए थे। कम्पनी के आर्थिक मांगों को मीरजाफर पूरा नहीं कर पा रहे थे। फलस्वरुप 1760 ई० में अक्टूबर के महीने में मीरजाफर को हटाकर उसके दामाद मीर कासिम को नवाब बनाया गया।

मीरकासिम और ईस्ट इंडिया कम्पनी का संपर्क : बक्सर का युद्ध

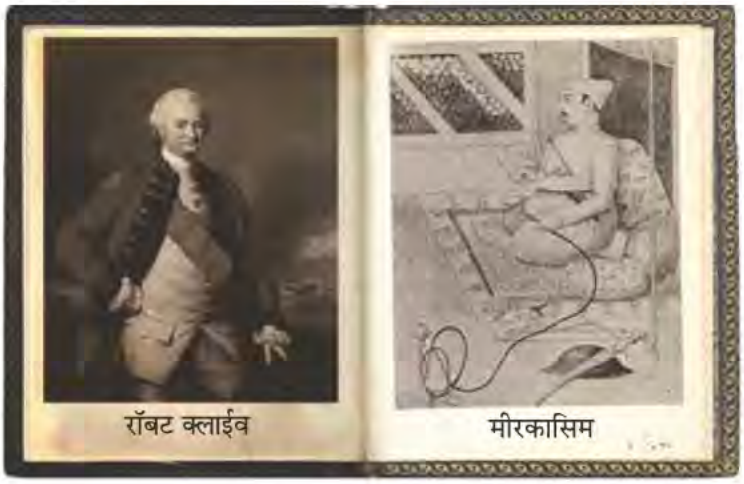

रॉबट क्लाईव

मीरकासिम

मीर कासिम के नवाब पद के विनिमय में ईस्ट इंडिया कम्पनी को प्राय: 29 लाख की संपदा दी गई थी। इसके सिवाय बर्द्धवान, मेदिनीपुर और चट्टग्राम की जमींदारी के अधिकार भी उन्हें दिए गए थे। फलस्वरूप कम्पनी ने मीर कासिम को पूर्णता: अपने वश में कर लिया था। लेकिन उनकी यह धारणा गलत निकली। मीर कासिम ने मुर्शिदाबाद के बदले मुंगेर को बंगाल की राजधानी बनाया। साथ ही नवाब की पुरानी सेना को हटा कर नई सेना का गठन किया था। यहाँ तक कि उन्होंने जगत् सेठ से भी दूरी बनाए रखी थी। प्रारंभ में मीर कासिम के इन कार्यों को महत्त्व नहीं दिया गया। कालांतर में ब्रिटिश कम्पनी के कर्मचारियों के व्यक्तिगत प्रयास से मीर कासिम और कम्पनी में विवाद शुरू हुआ।

कम्पनी के व्यापारियों के कानून विरोधी व्यापार के कारण बंगाल में आर्थिक समस्या उठ खड़ी हुई थी। कम्पनी को शुल्क न देने से राजकीय-कोष खाली पड़ गया था। दूसरी ओर देशी व्यापारी शुल्क देने को बाध्य होकर असम प्रतियोगिता में फंस गये थे। इसके सिवाय दूसरे व्यापारी, व्यापारी-वर्ग भी कम्पनी की क्षमता की दुरूपयोग की शिकायत नवाब से कर रहे थे। अन्त में नवाब ने देशी व्यापारियों पर से भी शुल्क उठा दिया। इससे देशी व्यापारी प्रतियोगिता से तो बच गए, लेकिन कोश अर्थसंकट के मुख में आ पड़ा था।

कुछ बातें

बक्सर का युद्ध और दीवानी लाभ

1763 ई० सन् में मीर कासिम के साथ ब्रिटिश कम्पनी का खुलकर संघर्ष शुरू हुआ । कटवा, मुर्शिदाबाद, गिरिया, उदयनमाला एवं मुंगेर के युद्ध में मीर कासिम अंग्रेजों से पराजित हुए। अंतिम समय वह बंगाल छोड़कर अयोध्या भाग गया। कम्पनी ने मीरजाफर को फिर से नवाब बनाया। तब अयोध्या के शासक सुजा उद दौला तथा दिल्ली के मुगल सम्राट शाह आलम द्वितीय के साथ अंग्रेजों के विरूद्ध दल बनाया। 1768 ई० सन् अक्टूबर के महीने में इस गुट के साथ ब्रिटिश कम्पनी का युद्ध हुआ, उस युद्ध को बक्सर का युद्ध कहते हैं। कम्पनी ने युद्ध में विजयी पाई। मुगल सम्राट ने कम्पनी से क्षमा मांग ली। सुजा उद दौला और मीरकासिम भाग गए।

प्लासी के जय के माध्यम से ईस्ट इंडिया कम्पनी का राज्य विस्तार शुरू हुआ था। बक्सर के जीत से वह और भी सफल हुए। बंगाल के ऊपर कम्पनी का आर्थिक और राजनैतिक आधिपत्य सुनिश्चित हो गया। अयोध्या के शासक के पराजय के फलस्वरूप प्राय: पूरे उत्तर भारत में ब्रिटिश क्षमता का विस्तार हुआ। साथ ही दिल्ली के सम्राट को हराने के कारण मुगल सत्ता का भी पतन हुआ। अन्त में मुगल बादशाह शाह आलम को ब्रिटिश कम्पनी की बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी का अधिकार दे देना पड़ा।

रॉबट क्लाईव को दीवानी देते हुए सम्राट शाह आलम। यह चित्र बेंजमिन वेस्ट से लिया गया। (अनुमानिक 1818 ई०)

दीवानी अधिकार और द्वैत शासन

बक्सर के युद्ध की जीत का सबसे बड़ा लाभ कम्पनी को दीवानी लाभ का मिला था। 1755 ई० सन् के मध्य में लॉर्ड क्लाईव दुबारा भारत आए। तब तक मीरजाफर की मृत्यु के बाद उनके पुत्र निजम ऊद दौला नवाब की गद्दी पर बैठें थे।

क्लाईव अश्वय ही बक्सर की जीत का विस्तार करना चाहते थे। फलत: बंगाल से दिल्ली तक की शासन व्यवस्था में दखल देकर मुगल सम्राट के प्रति कम्पनी ने मौखिक अनुगता जतायी। इसी शाह आलम द्वितीय एवं सूजा उद दौला से समझौता करने को कम्पनी सक्रिय हुई। इस समझौते के तहत कम्पनी को 50 लाख रूपये देकर सूजा ऊद दौला अयोध्या का शासक बने। केवल कारा और इलाहाबाद क्षेत्र को अयोध्या की सीमा से अलग कर मुगल बादशाह शाह आलम को दिया गया। दिल्ली के अधिकार पाने के बदले शाह आलम ने एक फरमाना जारी किया।

उस फरमान के अनुसार बिहार और उड़ीसा की दीवानी के अधिकार कम्पनी को दे दिए। इसके बदले में कम्पनी ने शाह आलम को वार्षिक 26 लाख रुपये खर्च देना स्वीकार किया।

कुछ बातें

द्वैत शासन व्यवस्था

दीवानी अधिकार पाने के फलस्वरूप ईस्ट इंडिया कम्पनी का भारत की राजनीति और अर्थनीति में दखल बढ़ गया, क्षमता का विकास हुआ। मीर कासिम के साथ युद्ध में कम्पनी का अत्यधिक धन खर्च हुआ था। दीवानी मिलते ही उन रूपयों को वापस पाने का यत्न कम्पनी ने किया। इसके सिवाय सुवा बंगाल के राजस्व को पाने के अधिकार ने कम्पनी को और शक्तिशाली बना दिया था। कम्पनी को दीवानी हासिल होने से बंगाल में एक नया राजनैतिक शासन तंत्र कायम हुआ। वास्तव में बंगाल में दो शासक बने थे। एक और राजनैतिक एवं दीवानी का दायित्व था, बंगाल के हाथों और दूसरी ओर आर्थिक कर्त्तव्य एवं राजस्व वसूली का अधिकार ब्रिटिश शासक को था। कानून व्यवस्था का दायित्व नवाब नजम ऊद दौला पर था। फलस्वरूप नवाब के हाथों में आर्थिक क्षमताहीन राजनैतिक दायित्व था। ब्रिटिश कम्पनी को दायित्वहीन अर्थनैतिक क्षमता दिया गया। बंगाल की इस शासन व्यवस्था को द्वैत शासन व्यवस्था (Dual system of administration) कहा जाता है।

ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी एक विदेशी शक्ति थी। विदेशी व्यापारी कम्पनी के हाथों पहली बार दीवानी सौपीं गई। क्रमश: देखा गया कि व्यापार में लगने के लिए जो मूलधन ब्रिटेन से लेकर आयें थे, उसका परिमाण घटता जा रहा था। बंगाल के राजस्व से ही कम्पनी का व्यापार चलता रहा। वस्तुत: 1757 से 1758 के बीच बंगाल में ईस्ट इंडिया कम्पनी एक प्रमुख शक्ति बन गई । इसके फलस्वरूप भारतीय उपमहादेश में ब्रिटिश साम्राज्य-विस्तार की नींव तैयार हुई। 'व्यापारी के मानदंड' 'राजदंड' में बदल गया था।

कुछ बातें

छियत्तर का मन्वन्तर

1765 ई० से 1772 ई० तक बंगाल में द्वैत शासन चला। इस ब्रिटिश कम्पनियों का एक मात्र लक्ष्य था अधिक से अधिक राजस्व या कर वसूल करना। इस कारण 1770 ई० में बंगाल में भयानक अकाल पड़ा। बंग्ला के अनुसार वर्ष था 1776 बंगाब्द। इसी कारण इस अकाल को '76' का मन्वन्तर कहा जाता है।

अंग्रेज व्यापार के लालच में प्रजा को पद्दलित करने लगे— प्रजा के क्रन्दन को सुनने वाला कोई भी न था। जमींदार अपने मान को बनाये रखने तथा जमींदारी को बचाये रखने के लिए अंग्रेजों की जी हूजूरी करने लगे।

1768 ई० के प्रारंभ में कृषकों का दल आशा और उषा के साथ गीत गाते-गाते खेतों में हल चलाने निकल पड़े थे।, उनकी आशा उपयुक्त वर्षा के अभाव में, खेत की सिंचाई न होने के कारण निराशा में बदल गई। हेमन्त में उगने वाली धान की फसल नष्ट हो गई, चारों ओर आग का हाहाकार मच गया। एक वर्ष के बाद किसान हल लेकर खेत जोतने निकलें। आकाश की ओर देखने पर निराश हो उठे। 1779 ई० में फसल नहीं उगी जिसके फलस्वरूप अन्न का एक दाना भी नहीं हुआ।

जब काल की चिता हू हू कर जल रही थी ऐसे समय अंग्रेज सेना अन्न संग्रह के लिए निकल पड़ी। छल, बल और कौशल से वे यथासाध्य चावल धान एकत्र करने लगे एवं ऊपर से कर भी वसूलने लगे।

.....

... 1770 ई० के आरंभ होते ही चारों ओर काल की चिता हू हू कर जल उठी। अन्न अभाव के साथ महामारी ने मिलकर ग्राम नगर सबका सर्वनाश करना शुरू किया। देशभर में महा-मन्वन्तर जाग उठा। इन खेत के सौदागरों के सामने रातों-रात धनी होने का पथ खुल गया। अकाल दूर करने के उपाय तो दूर ये लोग अकाल को बनायें रखने में सचेष्ट लग गए।

.....

1770 ई० के ग्रीष्म काल में रातों रात लोग काल कलवित होने लगे। किसान अपने पशु गाय, भैंस बेचने लगे, कृषि के यंत्र बिकने लगे, यहाँ तक की धान बीज भी अकाल की भेंट चढ़ गया। अन्त में वे अपनी सन्तान, पुत्र एवं कन्या को बेचने लगे। बहुत जल्दी खरीदार की संख्या भी कम हो गई।

.....

1771 ई० के अगस्त महीने के विलायत के डायरेक्टरों ने लिख भेजा कि जिन्होंने मन्वन्तर को हटाने की जरा भी चेष्टा की है उन्हें असंख्य धन्यवाद। लेकिन जिन्होंने इस विपत्ति के समय भी परपीड़ा कर अर्थ उपार्जन किया, उनके प्रति असीम घृणा व्यक्त करते हैं।

.....

हेस्टिंग्स ने आकर जब अकाल की खोज— अनुसंधान किया, तब उन्होंने लिखा— इतने बड़े अकाल के समय भी 'कर-संग्रह' में जरा भी शिथिलता नहीं बरती गई। एक तृत्तीयांश कृषक मारे गये, किसान का काम बन्द सा हो गया लेकिन फिर भी अकाल क्षेत्र से पहले की तरह अक्षुण्ण प्रताप से राजस्व का संग्रह हुआ है। जिन कारणों से सर्वनाश हुआ है उनमें एक यह भी प्रमुख कारण कहा जा सकता है।

[उद्धृत अंश अक्षय कुमार मैत्रेय के 'मन्वन्तर' प्रबन्ध से लिया गया है।]

अकाल। मूल चित्र चित प्रसाद भट्टाचार्य द्वारा अंकित
1943 ई० के बंगाल के मन्वतंर के परिप्रेक्ष्य में

कम्पनी शासन का विस्तार : ब्रिटिश रेसिडेन्स व्यवस्था

स्वयं करों

32 पृष्ठ पर दिये गए मानचित्र जैसा एक मानचित्र बनाओं। उसमें अधीनतामूलक मित्रता की नीति एवं स्व-विस्तार की नीति के माध्यम से ब्रिटिश शासन के विस्तार को चिन्हित करो।

भारतीय उपमहादेश के अनेक स्थानों पर ब्रिटिश कम्पनी का परोक्ष शासन चलता था। अपने व्यापार की सुरक्षा के लिए विभिन्न राजदरबारों में उनके प्रतिनिधि रहते थे। ये प्रतिनिधि ही 'रेसिडेन्स' के नाम से जाने गये। ब्रिटिश रेसिडेन्स व्यवस्था एक नए प्रकार की व्यवस्था थी। इनके माध्यम से पूरे भारत में कम्पनी की पूर्ण क्षमता का विस्तार हुआ था। कम्पनी की नजर बचाकर स्वाधीन भाव से कार्य करने की क्षमता भारतीय राजाओं में प्राय: नहीं थी। उनके राज्य को प्रचालित स्थानीय ब्रिटिश रेसिडेन्स करते थे।

1764 ई० में बक्सर के युद्ध के बाद कम्पनी ने बंगाल, अयोध्या और हैदराबाद के राजदरबार में अपने प्रतिनिधि या रेसिडेन्स नियुक्त किए, लेकिन उस समय रेसिडेन्स अपने क्रिया-कलाप को संयमित रखते थे।

लॉर्ड कॉर्नवालिस के समय रेसिडेन्स संयमित न होकर आगे बढ़ने की नीति को लेकर चले थे। वेलेजली की अधीनतामूलक मित्रता की नीति ने इस क्षेत्र में गंभीर एवं प्रमुख भूमिका निभाई थी। कई बार रेसिडेन्स कम्पनी के इलाके को अपने अधीन करने के लिए उकसाते भी थे। लॉर्ड कॉर्नवालिस के भारत आने से कुछ समय के लिए रेसिडेन्सों की व्यवस्था थम सी गई। कॉर्नवालिस की मृत्यु के बाद कम्पनी ने फिर से इलाका दखल की नीति अपनाई।

लॉर्ड वेलेजलि

लॉर्ड डालहौसी

परोक्ष शासन के स्थान पर कम्पनी ने खुल कर इलाकों को अपने अधीन करना शुरू किया। लॉर्ड कॉर्नवालिस की स्वत्व विलोप नीति ने महत्त्वपूर्ण निभाई थी।

देशी राज्यों को हड़पने की नीति : अधीनतामूलक मित्रता और स्वत्व विलोप नीति

भारत में कम्पनी के राज्य विस्तार की प्रक्रिया में अधीनतामूलक मित्रता और स्वत्व विलोप नीति की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। विभिन्न प्रादेशिक शक्तियाँ कभी पराजित होकर

और कभी अपनी इच्छा से इन दो नीतियों का ग्रास बन गई थी। एक ओर हैदराबाद के निजाम ने स्वेच्छा से अधीनतामूलक मित्रता की नीति को मान लिया था। वहीं दूसरी ओर महीसुर (मैसूर) के शासक टीपू सुल्तान ने इस नीति का विरोध युद्ध से किया। इसके सिवाय मराठा, सिख, और कई राज्य भी विभिन्न प्रकार से इस नीति के ग्रास बनी थी।

18वीं सदी में भारतीय राज्य शक्तियाँ परस्पर लड़ा करती थी। प्रत्येक अपने राज्य का विस्तार और संपत्ति को बढ़ाना चाहते थे। अत: आपस में द्वन्द्व तो होना ही था। ये राजशक्तियाँ ब्रिटिश कम्पनी को एक नई राजनैतिक शक्ति के रूप में देखती थी। ब्रिटिश कम्पनी का विरोध एकजुट होकर करने के बदले अनेक राजाओं ने अंग्रेजों से हाथ मिलाया था। प्रादेशिक राजशक्तियों को आपस में लड़ाकर ब्रिटिश कम्पनी अपने राजनीतिक और व्यावसायिक स्वार्थ की पूर्त्ति कर रहे थे। राजनैतिक अंशाति कम्पनी के व्यापार की राह का रोड़ा बन चूंकि थी अत: राज्य के दलाली कर कम्पनी अपना स्वार्थ पूरा कर रही थी।

ब्रिटिश कम्पनी की सर्वग्रासी नीति का अन्यतम रूप था अधीनतामूलक मित्रता की नीति। इसी के माध्यम से लॉर्ड कॉर्नवालिस ने विभिन्न राज्यों के आन्तरिक विषयों पर कम्पनी के नियंत्रण को स्थापित किया। भारत की प्रादेशिक शक्तियों के विवाद और अंशान्ति को वेलेजलि ब्रिटिश शासन के हित में मानते थे। फिर सीधे-सीधे या युद्ध के माध्यम से देशी शक्तियों को अधीनतामूलक मित्रता नीति मानने को बाध्य करते थे।

18वीं सदी में हैदरअली और टीपू सुल्तान के नेतृत्त्व में महीसुर राज्य दक्षिण भारत की अन्यतम प्रधान शक्ति हो उठे थे। महीसुर में सेनावाहिनी यूरोपीय ढंग से गढ़ी गई थी। महीसुर के आंचलिक विस्तार और आर्थिक नीति के तहत अर्थ जमाने के लिए टीपू और हैदर के साथ कई राजाओं का संघर्ष हुआ था। इस द्वन्द्व में अंग्रेज अपनी टांग अड़ाने की चेष्टा करते थे। अत: अपने वाणिज्यिक लाभ के लिए ब्रिटिश ने राजनैतिक युद्ध किया।

1768 से 1799 ई० के बीच में महीसुर और कम्पनी के बीच युद्ध हुआ। उसे अंग्रेज - महीसुर युद्ध कहा जाता है। 1799 ई० में चतुर्थ अंग्रेज-महीसुर युद्ध के माध्यम से वेलेजलि ने महीसुर पर चढ़ाई की। राजधानी श्रीरंगपट्टनम की रक्षा करते हुए टीपू सुल्तान मारे गए। अधीनतामूलक मित्रता की नीति के कारण महीसुर के सारे राजनैतिक अधिकार छिन लिए गए। महीसुर के कई अंचलों पर कम्पनी का शासन स्थापित हो गया। कम्पनी की सेना महीसुर में नियुक्त की गई। हैदराबाद को महीसुर के कुछ अंश दे दिए गए।

कुछ बातें

अंग्रेज-फरासी द्वन्द्व

भारत में उपनिवेश का गठन और वाणिज्यक पर नियंत्रण को लेकर फरासी के साथ उनके स्वार्थ का संघर्ष प्राय: 20 वर्ष से चल रहा था। 1744 ई० से 1763 ई० के मध्य तक यह संघर्ष मूलत: दक्षिण भारत तक सीमित था। कर मन्डल घाटी और उसके पश्चिमी भूमि को यूरोपीय कर्नाटक के नाम से पुकारते थे। इस अंचल ही अंग्रेज - फरासी के द्वन्द्व का कारण बना हुआ था। भारत में फरासी (फ्रांसिसी) का मुख्य केन्द्र था चंदननगर और पांडिचेरी। इस समय फरासी गर्वनर जनरल डुप्ले स्थानीय राजा, नवाब और अंचल के प्रधानों की सेना वाहिनी का प्रयोग ईस्ट इंडिया कम्पनी के स्वार्थ के लिए करना चाह रहे थे। 1760 ई० वन्दी वास में (तृतीय कर्नाटक युद्ध) फ्रांसिसियों को बुरी तरह पराजित किए। इस पराजय के बाद ब्रिटिश शक्ति के मार्ग में और कोई यूरोपीय देश का रोड़ा न था।

जोसेफ डुप्ले

दक्षिणी में तब मराठाओं का राज्य था। पेशवा पद के लिए मराठों के बीच भी तनातनी थी। रघुनाथ राव पेशवा ने नारायण राव की हत्या कर दी। तब सब मराठा सरदार रघुनाथ राव के विरूद्ध एकजुट हो गए। रघुनाथ ने ब्रिटिश से सहायता की याचना की। मद्रास और बम्बई से ब्रिटिश सेना रघुनाथ राव की सहायता के लिए आयी। मराठाओं के साथ ब्रिटिशों का संघर्ष हुआ। यद्यपि 1782 ई० में सलबाईयेट समझौते के अनुसार कम्पनी का मराठों के साथ संबंध सुधरे तथा कम्पनी विरोधी शक्तियाँ टूट गई।

पेशवा पद के लिए मराठों का अन्त: संघर्ष चलता ही रहा। इसका लाभ उठाकर वेलेजलि ने मराठों पर चढ़ाई कर दी। 1802 ई० सन् में कम्पनी ने पेशवा द्वितीय बाजीराव से बेसिन की संधि के माध्यम से अधीनतामूलक मित्रता के समझौते पर दस्तखत करवा लिए। पेशवा दरबार में ब्रिटिश रेसिडेन्स नियुक्त किया गया। कम्पनी का समर्थन पाकर द्वितीय बाजीराव पेशवा अपना शासन चलाते रहे लेकिन दक्षिणोत्तर के विभिन्न स्थानों पर मराठों के साथ कम्पनी की लड़ाई चलती रही। अन्त में पेशवा द्वितीय बाजीराव ने मराठों के विभिन्न दलों को संगठित कर कम्पनी का सामना किया। यह तृतीय मराठा युद्ध 1817-19 ई० सन् में लड़ा गया और यंग मराठा युद्ध के नाम से जाना जाता है। इस युद्ध में मराठे पराजित हुए। कम्पनी ने पेशवा के सारे राज्य पर अधिकार कर लिया। फलस्वरूप पेशवा विलुप्त हो गया। विभिन्न मराठा शक्तियों ने अधीनतामूलक मित्रता नीति को स्वीकार कर लिया। दक्षिण भारत और दक्षिणात्य में ईस्ट इंडिया कम्पनी का पूर्णत: अधिकार हो गया।

उत्तर भारत में अयोध्या और पंजाब कम्पनी के आमने-सामने हुआ था। 1773 ई० सन् में अयोध्या कम्पनी का प्रतिनिधि नियुक्त किया गया था। इसके सिवाय कम्पनी की सेना स्थायी रूप से अयोध्या में नियुक्त की गई थी। साथ ही साथ अयोध्या के उत्तराधिकारी को लेकर विवाद में पड़ गया था। इन सबका अंग्रेजों ने पूरा लाभ उठाया। पूरी अयोध्या का शासन अपने हाथों में करके इसके विभिन्न अंचलों पर अधिकार कर लिया।

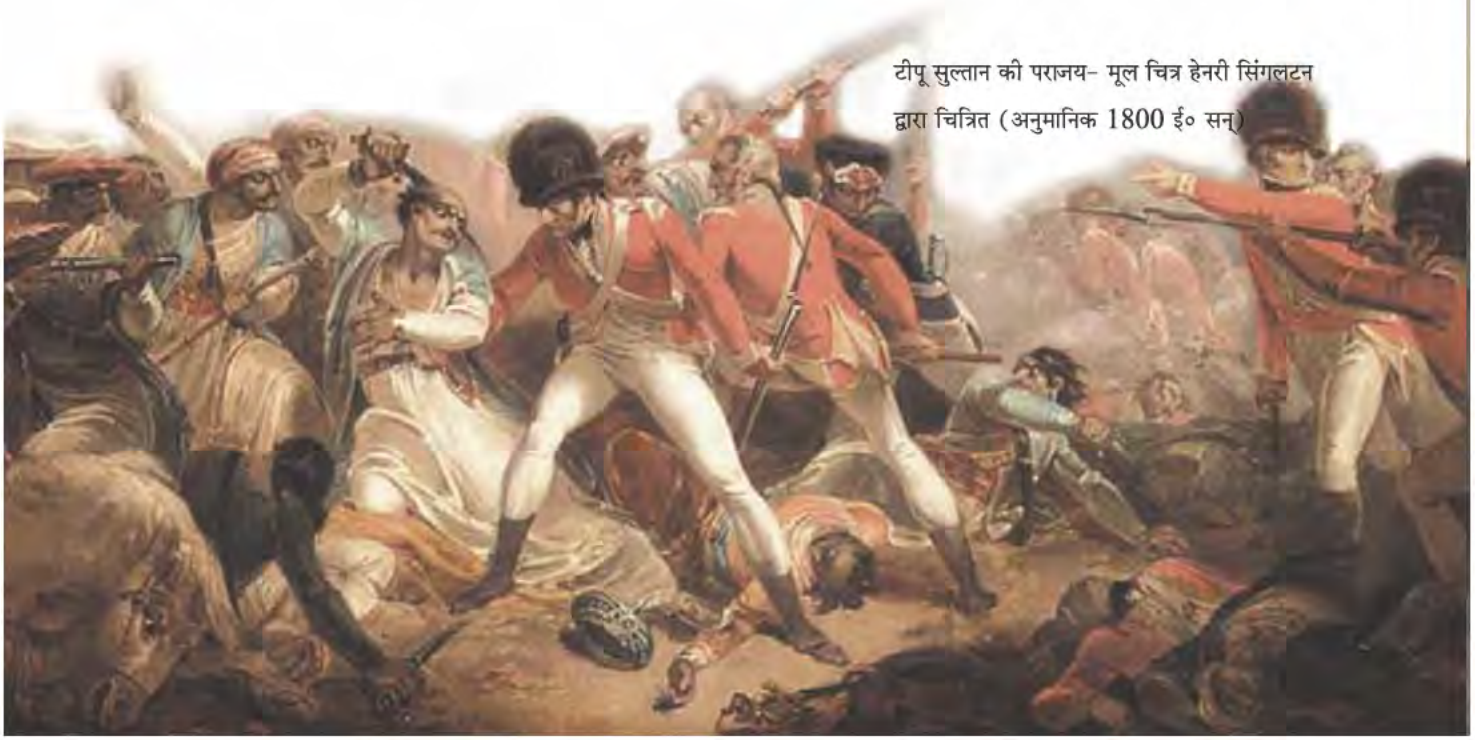

टीपू सुल्तान की पराजय- मूल चित्र हेनरी सिंगलटन द्वारा चित्रित (अनुमानिक 1800 ई० सन्)

उत्तर भारत में पंजाब में सिख शक्ति से कम्पनी को मुकाबला करना बाकी रह गया। सिखों में भी उत्तराधिकारी को लेकर झगड़े शुरू हो गये थे। राजनैतिक उथल-पुथल के कारण उत्तर भारत में व्यापार की क्षति हो रही थी। अशांत परिस्थिति को शांत करने की दुहाई देकर ब्रिटिश पंजाब में हस्तक्षेप करने लगे थे। 1845 ई० सन् में पहले यंग सिख युद्ध में सिखों की हार हुई। लाहौर की समझौते के अनुसार जलन्धर दोआब में ब्रिटिश शासन प्रतिष्ठित हुआ। सिख दरबार में सिख रेसिडेन्स नियुक्त किया गया।

स्वत्व विलोप नीति के प्रयोग के माध्यम से कम्पनी ने अपने अधिकार क्षमता को पूर्ण रूप से बढ़ा लिया था। इस नीति के प्रयोगकर्त्ता लॉर्ड डालहौसी के शासन काल में (1848-56 ई०) कम्पनी का सर्वग्रासी रूप प्रकट हुआ था। जिन भारतीय शासकों का कोई पुरूष अधिकारी नहीं होता था। उनका राज कम्पनी के अधिकार में चला जाता था। कम्पनी की सेना का खर्च पूरा करने के लिए कम्पनी ने हैदराबाद बेरार प्रदेश छीन लिया था। 1856 ई० में कुशासन का दोष लगाकर अयोध्या के बचे-खुचे अंशों को भी कम्पनी ने छीन लिया। द्वितीय यंग सिख युद्ध में पंजाब की हार से सारा पंजाब भी कम्पनी के अधिकार में चला गया। इस प्रकार 1857 ई० सन् के बीच लॉर्ड डालहौसी भारतीय उपमहादेश के 60 भागों से अधिक क्षेत्रों पर उनका राज्य स्थापित कर लिया था।

पेशवा के दरबार में ब्रिटिश रेसिडेन्स और मराठा नेतृत्त्व का समझौता (1790 ई० सन्) मूल चित्र थॉमस डेनियल द्वारा चित्रित।

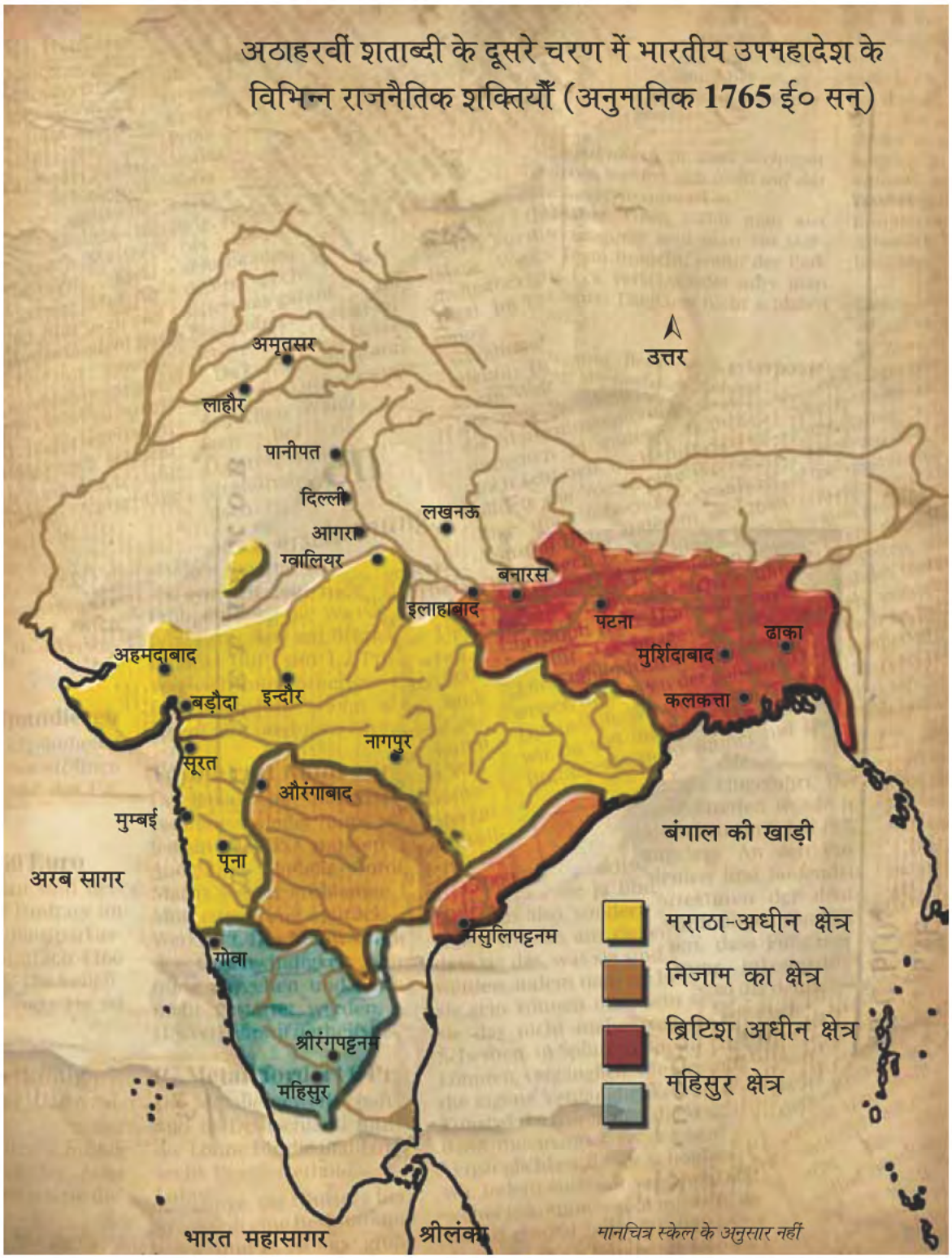
अठाहरवीं शताब्दी के दूसरे चरण में भारतीय उपमहादेश के विभिन्न राजनैतिक शक्तियाँ (अनुमानिक 1765 ई० सन्)
उत्तर
अमृतसर
लाहौर
पानीपत
दिल्ली
लखनऊ
आगरा
ग्वालियर
बनारस
इलाहाबाद
पटना
ढाका
मुर्शिदाबाद
अहमदाबाद
बड़ौदा
इन्दौर
कलकत्ता
नागपुर
सूरत
औरंगाबाद
मुम्बई
पूना
बंगाल की खाड़ी
अरब सागर
मसुलिपट्टनम
गोवा
श्रीरंगपट्टनम
महिसुर
मराठा-अधीन क्षेत्र
निजाम का क्षेत्र
ब्रिटिश अधीन क्षेत्र
महिसुर क्षेत्र
भारत महासागर
श्रीलंका
मानचित्र स्केल के अनुसार नहीं

सोचकर देखो
ढूंढकर देखो

1) 'क' स्तम्भ के साथ 'ख' स्तम्भ को मिलाकर लिखो।

क स्तम्भ	ख स्तम्भ
अयोध्या	प्रथम यंग - सिख युद्ध
1764 ई०	सआदत खान
स्वत्व विलोप नीति	बक्सर का युद्ध
लाहौर समझौता	महीसुर
टीपू सुल्तान	लॉर्ड डालहौसी

2) सटीक शब्दों का चुनाव कर के रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :

क) औरंगजेब के शासन काल में मुर्शिदकुली खान बंगाल के थे — (दीवान / फौजदार / नवाब)।

ख) अहमद शाह अब्दाली थे — (मराठा / अफगान / पारसिक)।

ग) अलीनगर की संधि हुई थी — (मीर जाफर और ब्रिटिश कम्पनी के बीच / सिराज और ब्रिटिश कम्पनी के बीच / मीर कासिम और ब्रिटिश कम्पनी के बीच)।

घ) ब्रिटिश कम्पनी को बंगाल, बिहार एवं उड़ीसा की दीवानी के अधिकार दिए थे — (सम्राट शाह आलम द्वितीय / सम्राट फार्रुखशियर / सम्राट औरंगजेब)।

ङ) अपनी इच्छा से अधीनतामूलक मित्रता मूलक नीति मान ली थी — (टीपू सुल्तान / सआदत खान / निजाम)।

3) अति संक्षेप में उत्तर लिखिए (30-40 शब्दों में) :

क) फर्रुखशियर के फरमान का क्या महत्त्व था?

ख) किसने, किस प्रकार और कब हैदराबाद में प्रादेशिक शासन की प्रतिष्ठा की थी?

ग) 'प्लासी का लूट' किसे कहते हैं?

घ) द्वैत शासन व्यवस्था से क्या समझते हो?

ङ) ब्रिटिश रेसिडेन्सों का क्या काम था?

4) अपनी भाषा में उत्तर लिखिए :

क) अठाहरवीं शताब्दी में भारत के प्रमुख प्रादेशिक शक्तियों के उत्थान के पीछे मुगल सम्राटों की व्यक्तिगत अयोग्यता ही क्या उत्तरदायी थी? तर्क पूर्ण उत्तर दीजिए।

ख) प्लासी और बक्सर के युद्ध में से भारत पर ब्रिटिश शक्ति की दृष्टि से कौन अधिक महत्त्वपूर्ण हैं? तर्क सहित उत्तर दीजिए।

ग) मीर कासिम के साथ ब्रिटिश कम्पनी के विरोध के क्षेत्र में व्यापारियों के व्यक्तिगत व्यवसाय की क्या भूमिका थी? बंगाल में द्वैत-शासन व्यवस्था का क्या प्रभाव पड़ा था?

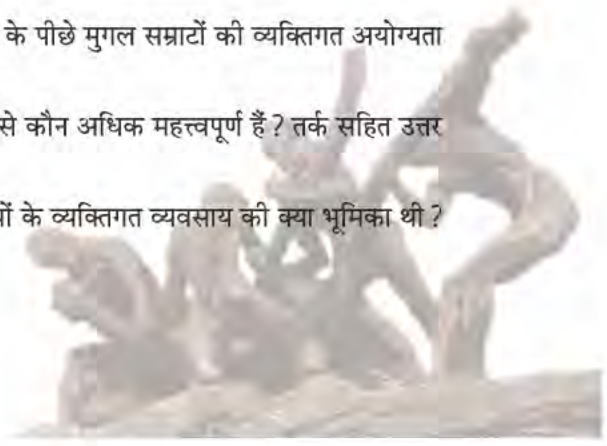

घ) भारत में कम्पनी के आधिपत्य विस्तार के क्षेत्र में अधीनतामूलक मित्रता के नीति से लेकर स्वत्व विलोप नीति के बदलाव की व्याख्या किस प्रकार करेंगे ?

ङ) मुर्शिदकुली खान और अलवर्दी खान के साथ बंगाल के मुगल बादशाहों के संबंधों पर प्रकाश डालिए।

5) सोचकर लिखो (अधिकत्तम 200 शब्दों में) :

क) मान लो तुम अलवर्दी खान के शासन काल में एक आम आदमी हो। तुम्हारे क्षेत्र में वर्गियों ने आक्रमण किया था। तुम अपने अनुभव अपने पड़ोसी से संवाद के रूप में बाँटो।

ख) मान लो तुम ब्रिटिश कम्पनी में एक सत्तात्मक व्यक्ति हो। 76 के मन्वन्तर (अकाल) के समय में तुम बंगाल में घुम रहे हो, तुम्हें किस प्रकार का बोध होगा ? मन्वन्तर के समय जन साधारण की सहायता के लिए तुम कम्पनी को क्या करने का परामर्श दोगे ?

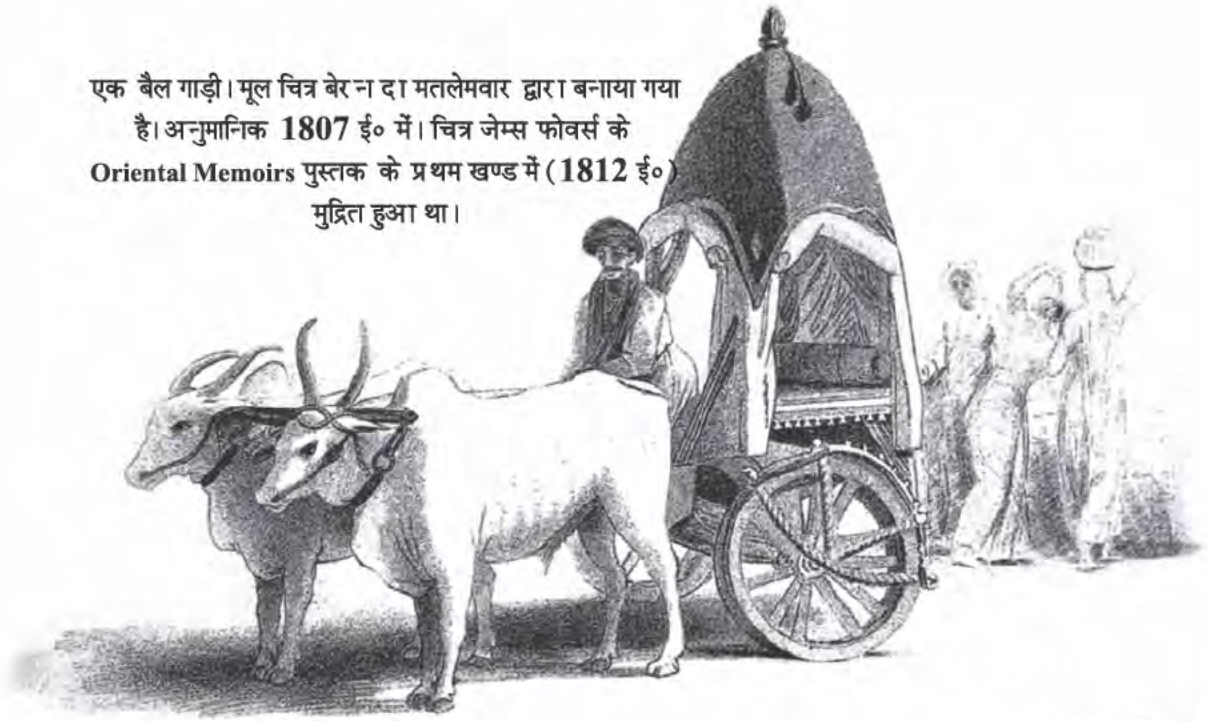

एक बैल गाड़ी। मूल चित्र बेरना दा मतलेमवार द्वारा बनाया गया है। अनुमानिक 1807 ई० में। चित्र जेम्स फोवर्स के Oriental Memoirs पुस्तक के प्रथम खण्ड में (1812 ई०) मुद्रित हुआ था।

3 औपनिवेशिक सत्ता की प्रतिष्ठा

ईस्ट इण्डिया कम्पनी एक व्यापारिक संस्था थी। वाणिज्य के लिये उन्होंने कुछ केन्द्र चुने थे। ये थे मद्रास, बम्बई और कलकत्ता। इन तीनों केन्द्र को आधार बनाकर ही ब्रिटिश प्रेसीडेन्सी की व्यवस्था तैयार की गयी थी। 1611 और 1612 ई० में मसुलिपटनम और सूरत को केन्द्रित कर ईस्ट इण्डिया कम्पनी अपने कार्य चलाती रही। इसके बाद 1639 ई० में मद्रास को एक और केन्द्र बनाया। मद्रासपटनम ग्राम में सेण्ट जार्ज दुर्ग भी बनाया ब्रिटिश कम्पनी ने। बाद में सेण्ट जार्ज और मद्रास को केन्द्र में रखकर ही सेण्ट जार्ज प्रेसीडेन्सी या मद्रास प्रेसीडेन्सी का निर्माण भी किया गया। मद्रास प्रेसीडेन्सी के अन्तर्गत दक्षिण भारत के कई अंचल आते थे। आज का तमिलनाडु, केरल एवं आन्ध्रप्रदेश काफी पास-पास हैं। कर्नाटक एवं दक्षिण उड़ीसा के कुछ अंचल भी मद्रास प्रेसीडेन्सी के अन्तर्गत पड़ते थे। इस प्रेसीडेन्सी के दो प्रशासनिक केन्द्र थे ग्रीष्मकाल में उटाकामुण्ड और शीतकाल में मद्रास।

बम्बई प्रेसीडेन्सी के गठन का केन्द्र था सूरत। धीरे-धीरे पश्चिम और मध्य भारत, अरब सागर के तटवर्ती अंचल मिलाकर बम्बई प्रेसीडेन्सी बनी। सिन्धु प्रदेश भी इस प्रेसीडेन्सी के अन्तर्गत था। पहले इस प्रेसीडेन्सी को पश्चिमी प्रेसीडेन्सी के नाम से जाना जाता था। धीरे-धीरे सूरत व्यापार की दृष्टि से प्रतीत होता गया और बम्बई उन्नत होता गया। इसी से 1687 ई० में बम्बई के इर्द-गिर्द ही ब्रिटिश कम्पनी के कार्य-कलाप का विस्तार होता गया।

कलकत्ता को केन्द्र में रखकर पूर्वी भारत में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपने कार्य-कलाप तेजी से बढ़ाये थे। अत: कलकत्ता उनका प्रमुख केन्द्र था। 1754 में जब कम्पनी की बंगाल, बिहार और उड़ीसा को दीवानी के अधिकार मिले तब से ही बंगाल कम्पनी का कार्य क्षेत्र बन गया था। 1772 में कम्पनी को दीवानी और निजामत (न्याय व्यवस्था) के अधिकार मिलने पर कम्पनी ने बंगाल प्रेसीडेन्सी बनायी। बंगाल अंचल के अन्तर्गत पंजाब उत्तर मध्य भारत के अंचल, गंगा और ब्रह्मपुत्र नदी के अंचल बंगाल प्रेसीडेन्सी में समाये हुए थे। कलकत्ता में उन्होंने फोर्ट विलियम भी बनाया था। इसी कारण कभी बंगाल प्रेसीडेन्सी को फोर्ट विलियम प्रेसीडेन्सी भी कहते थे।

गवर्नमेन्ट हाउस, कोलकाता। मूल चित्र जेम्स बेइली फ्रेजार द्वारा चित्रित अनुमानत: 1826 ई०।

इस प्रकार शुरू में इन तीन प्रेसीडेन्सी केन्द्रों से ही प्रशासनिक और वाणिज्यिक कार्य होते थे। शुरू में मद्रास, बम्बई कलकत्ता में तीन परिषद या council के माध्यम से चलती थी। इन तीनों council का लन्दन की परिचालक समूह से सीधा सम्पर्क था। govenes काउन्सिल सदस्यों में से ही किसी को सभापति चुना जाता था। पर बाद में ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने कम्पनी के कर्मचारी, कर्मकर्ता, अफसर सबको ब्रिटेन के रेगुलेटिंग एक्ट और 1773 में पिट प्रणीत भारत शासन कानून के अन्तर्गत भारत ग्रेट ब्रिटेन का उपनिवेश बन गया।

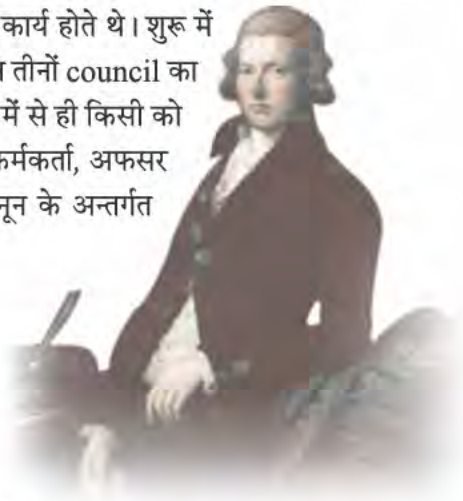

विलियम पिट

कुछ बातें

रेगुलेटिंग एक्ट और भारत शासन कानून

रेगुलेटिंग एक्ट के अनुसार मद्रास, बम्बई, बंगाल प्रेसीडेन्सी के स्वतन्त्र क्रिया-कलाप पर रोक-टोक लगाने के लिए गवर्नर जनरल का पद तैयार किया गया। बंगाल के गवर्नर को ही गवर्नर जनरल का पद संभालना होगा। उनके अधीन मद्रास, बम्बई के गवर्नर रहेंगे। गवर्नर जनरल का कार्यकाल होगा पाँच वर्ष। गवर्नर जनरल काउन्सिल की रचना चार लोगों को लेकर की जायेगी। इस कानून के कारण ब्रिटिश शासन के समय कलकत्ता भारत की राजधानी बन गया।

1784 ई० में ब्रिटेन के नये प्रधानमंत्री विलियम पिट नया कानून लेकर आये। इस कानून को विलियम पिट का भारत शासन कानून कहा जाता है। 1785 ई० की 1 जनवरी से यह कानून लागू हुआ। इसके फलस्वरूप कम्पनी के क्रिया-कलाप पर ब्रिटेन का नियंत्रण बढ़ गया।

पिट के कानून के अनुसार एक बोर्ड आफ कन्ट्रोल तैयार किया गया।। उस बोर्ड का कम्पनी के सामरिक असामरिक शासन राजस्व व्यवस्था के संचालन का दायित्व दिया गया था। इस कानून में स्पष्ट रूप से कहा गया, भारत में कम्पनी के सारे प्रशासनिक कर्त्ता गवर्नर जनरल का आदेश मानकर चलेंगे।

फोर्ट विलियम से कोलकाता दर्शन। मूल चित्र एस.डेविस द्वारा चित्रित किया गया। (1807 ई०)

ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने दीवानी तो पा ली थी परंतु शासन व्यवस्था मुगलों के अनुसार ही थी। कम्पनी के कई कर्मचारी इस प्रकार की शिकायतें करते हुए पाये जाते थे।

1772 ई० में बंगाल से द्वैत शासन व्यवस्था हटाकर सीधा कम्पनी का शासन लागू हो गया था। उस समय के गवर्नर जनरल लार्ड वारेन हेस्टिंग्स ने बंगाल की प्रशासनिक और न्याय व्यवस्था के संशोधन का काम शुरु किया। कम्पनी के शासन को एक स्थायी और निश्चित संगठित रूप हेस्टिंग्स के बाद कार्नवालिस के संशोधन की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी।

वारेन हेस्टिंग्स और लार्ड कार्नवालिस के संशोधन सुधार

वारेन हेस्टिंग्स के समय से ही देशी अभिजात्य के हाथों से न्याय व्यवस्था को अलग करने का प्रस्ताव दिया गया था। साथ ही साथ यूरोपियों की जाँच से ही उचित न्याय संभव है इस पर भी बहस चल रही थी। फलस्वरूप न्याय व्यवस्था ही ब्रिटिश को पूर्णरूप से प्रतिष्ठित करेगी। इस पर अमल शुरु हुआ।

1772 में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की ओर से नयी न्याय व्यवस्था के लिए प्रत्येक जिले में एक दीवानी और एक फौजदारी अदालत की स्थापना की गयी। पर नियम कानून में मुगलों का प्रभाव रह गया था। दीवानी अदालत में प्रधान विचारक यूरोपीय ही थे। साथ ही साथ देशी नियम-कानून की व्याख्या करते थे ब्राह्मण पण्डित और मुस्लिम मौलवी। फौजदारी अदालत में एक काजी और मुफ्ति रहते थे। उनकी देखभाल का पूरा दायित्व यूरोपियों के हाथों में ही था।

1772 से 1781 ई० के मध्य में दीवानी न्याय व्यवस्था में कई बदलाव लाये गये। इसके पीछे थे वारेन हेस्टिंग्स तथा सुप्रिम कोर्ट के न्यायधीश सर एलिजा इम्पे। न्याय व्यवस्था को पूरी यूरोपीयकरण किया गया। 1781 ई० में कहा गया न्यायपालिका के समस्त आदेश लिखित रूप में रखने होंगे। सब दीवानी अदालतों को एक ही नियम के अन्तर्गत लाने की चेष्टा की गयी थी।

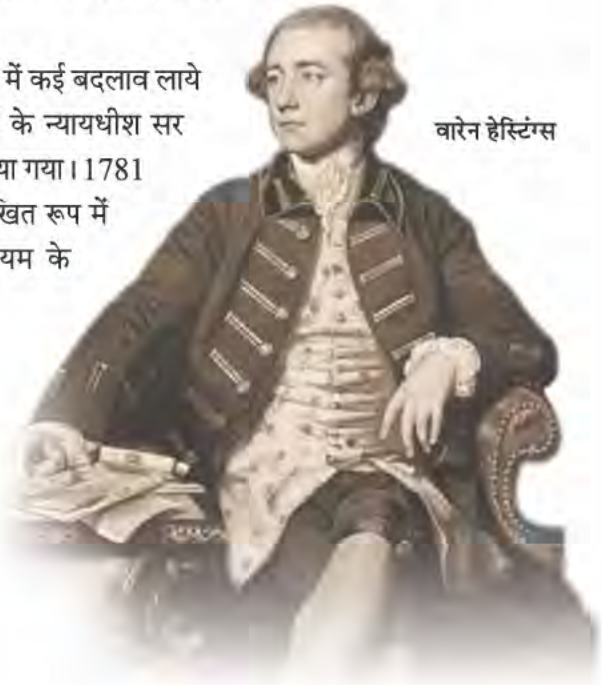

वारेन हेस्टिंग्स

एलिजा इम्पे सुप्रिम कोर्ट के प्रधान न्यायधीश

कुछ बातें
सुप्रिम कोर्ट

रेगुलेटिंग एक्ट 1773 ई० अनुसार 1774 ई० में कलकत्ता में एक एम्पिरियल कोर्ट बनाया गया। उसमें एक प्रधान न्यायधीश और तीन न्यायधीश नियुक्त किये गये। यह तय किया गया कि इसमें केवल भारत में रह रहे ब्रिटिश नागरिकों का ही न्याय होगा। क्रमश: कोर्ट के विभिन्न क्रिया-कलापों को लेकर ब्रिटिश कम्पनियों के साथ कोर्ट का विरोध शुरु हुआ।

कोर्ट प्राय:ही कम्पनी द्वारा तैयार की गयी अदालतों में हस्तक्षेप करता था। 1781 ई० में नियम बनाकर एम्पिरियल तथा सुप्रिम कोर्ट के अख्तियार और क्षमता को सीमाबद्ध कर दिया गया। कहा गया राजस्व अदायगी का कोई मुकदमा सुप्रिम में नहीं सुना जायेगा। गवर्नर और गवर्नर काउन्सिल के कार्यों में सुप्रिम कोर्ट हस्तक्षेप नहीं कर पायेगा।

1797 ई० में कलकत्ता में सुप्रिम कोर्ट में न्यायधीश की संख्या चार के बदले तीन की गयी। 1801 और 1823 ई० में मद्रास और बम्बई में एक-एक कर सुप्रिम कोर्ट की स्थापना की गयी। पूरे भारत में तीन सुप्रिम कोर्ट बनाये गये थे।

न्याय में समता बनाने के लिए जरूरी था प्रचलित कानून-नियम की अभिन्न व्याख्या। इसी उद्देश्य से वारेन हेस्टिंग्स ने 114 पण्डितों को हिन्दू कानून का सार संकलन तैयार करने को कहा। इस संकलन का अंग्रेजी में अनुवाद किया गया। इसके पश्चात् देशी नियम कानून की व्याख्या के लिए अंग्रेजी को भारतीय सहयोगियों पर निर्भर नहीं करना पड़ता था। मुस्लिम कानून का भी एक संकलन तैयार किया गया। इन सबके बीच से ही औपनिवेशिक न्याय व्यवस्था केन्द्रीभूत और श्रृखलाबद्ध हो उठी।

लार्ड कार्नवालिस

1793 ई० में लार्ड कार्नवालिस ने नियम-कानून को कोड या विधिवत किया। इसके फलस्वरूप दीवानी संबंधित न्याय और राजस्व न्याय व्यवस्था को अलग कर दिया गया। जिले से लेकर सदर तक की न्याय व्यवस्था को व्यवस्थित किया गया। निम्न अदालत के विरुद्ध उच्च अदालत में न्याय का आवेदन अधिकार मान लिया गया। सब अदालतों के ही मुख्य न्यायधीश यूरोपीय ही होगे। लार्ड कार्नवालिस की न्याय संशोधन ने औपनिवेशिक चौखटो से भारतीयों को पूरी तरह से अलग कर दिया था। मुगलों की न्याय व्यवस्था से ब्रिटिश न्याय व्यवस्था को भारतीय पूरी तरह समझ नहीं पाये थे। विचार व्यवस्था को संयत करने को जरिए वह औपनिवेशिक शासन का महत्त्वपूर्ण प्रधान स्तम्भ बन गया।

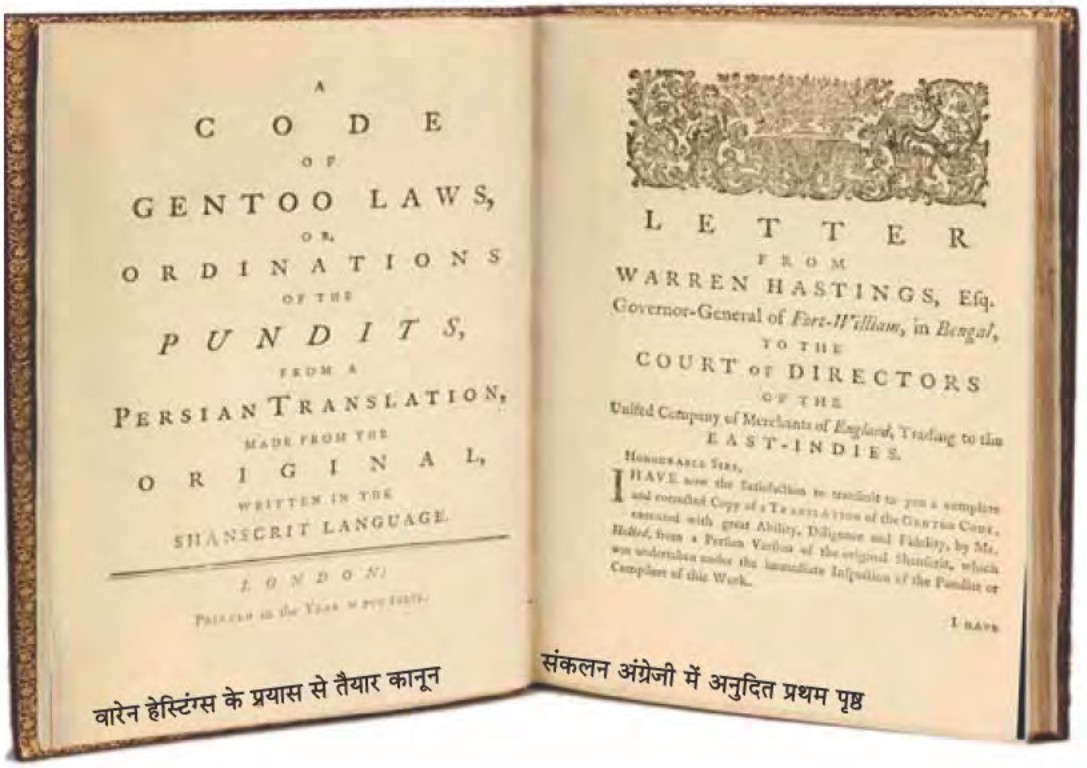

A
CODE
OF
GENTOO LAWS,
OR,
ORDINATIONS
OF THE
PUNDITS,
FROM A
PERSIAN TRANSLATION,
MADE FROM THE
ORIGINAL,
WRITTEN IN THE
SHANSCRIT LANGUAGE.

LONDON:

LETTER
FROM
WARREN HASTINGS, Esq.
Governor-General of *Fort-William*, in *Bengal*,
TO THE
COURT of DIRECTORS
OF THE
United Company of Merchants of *England*, Trading to the
EAST-INDIES.

वारेन हेस्टिंग्स के प्रयास से तैयार कानून

संकलन अंग्रेजी में अनुदित प्रथम पृष्ठ

लार्ड विलियम बेन्टिक

कुछ बातें

लार्ड विलियम बेण्टिक के सुधार

गवर्नर जनरल के रूप में विलियम बेन्टिक प्रशासनिक व्यय कम करना चाहते थे। साथ ही साथ उन्होंने भूमि-राजस्व निर्धारित को भी अत्यन्त महत्त्व दिया था। इलाहाबाद और वाराणसी अंचल में भूमि राजस्व बन्दोबस्त गठन के लिए उनके समय ही कदम उठाये गये थे। इन सबके लिए उन्होंने महलवारी बन्दोबस्त चालू किया था।

बेन्टिक के समय डिप्टी मैजिस्ट्रेट, डिप्टी कलक्टर आदि पदों पर पुनः भारतीयों की नियुक्तियाँ हुई। बेण्टिक के समय तैयार कानून में कहा गया, कम्पनी कर्मचारियों की नियुक्ति के लिए जाति धर्म एवं वर्ण के मानदण्ड नहीं केवल योग्यता पर विचार किया जायेगा। उच्च पद पर होने के बावजूद भारतीयों को कम वेतन दिया जाता था। उत्तर और मध्य भारत में सक्रिय ठग दस्युओं का दमन करने के लिए स्लिमैन के नेतृत्व में एक विशेष विभाग का गठन लार्ड बेण्टिक ने किया। स्लिमैन ने बहुत जल्दी ही दस्युओं का दमन कर लिया था।

चित्र

ठगों का एक दल। चित्र में दिखाया जा रहा है ठग किस प्रकार पथिकों का सर्वस्व लूटकर उनकी हत्या कर देते थे।

औपनिवेशिक सत्ता की प्रतिष्ठानों के विभिन्न प्रकरण

1784 ई० में पिट द्वारा प्रणीत ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कार्यों पर ब्रिटेन के पार्लामेन्ट का नियन्त्रण और भी मजबूत हो गया था। अत: भारत की सम्पत्ति का प्रयोग ब्रिटिश अपने स्वार्थ के लिए बेरोक टोक कर सकते थे। भारत पर ब्रिटिश शासन का जितना विस्तार होता गया वैसे ही खर्च भी बढ़ता गया। प्रशासन के लिए सम्पदा की जरूरत थी। जिसकी पूर्ति भारत से की जाती थी। 1813 ई० तक कम्पनी भारतीय शासकों के अनुसार शासन करते थे। धीरे-धीरे स्थिति बदलती गयी। 1813 शासन के लिए औपनिवेशिक शासन को फिर से सजाने की जरूरत आन पड़ी। न्याय व्यवस्था के साथ ही साथ पुलिस और सेना व्यवस्था का बदलाव से औपनिवेशिक शासन तंत्र वास्तविक रूप पा गयी थी ?

पुलिस व्यवस्था

मुगलों की पुलिस व्यवस्था में फौजदार, कोतवाल, चौकीदार को अधिक अधिकार थे। दीवानी पाकर कम्पनी ने यही व्यवस्था चालू रखी। 1770 में बंगाल के मन्वन्तर के फलस्वरूप सामाजिक 'कानून व्यवस्था' की अवनति हो रही थी। उस क्षेत्र में मुगलों की पुलिस व्यवस्था विशेष कार्यकारी नहीं थी। तभी पुलिस व्यवस्था को यूरोपीय व्यवस्था के अनुसार ढाला गया। 1781 ई० तक पुरानी फौजदारी व्यवस्था चलाने के बावजूद अन्त में फौजदार के बदले अंग्रेज मैजिस्ट्रेट बैठाये गये।

सन् 1793 ई० में लार्ड कार्नवालिस ने जिलों की देखभाल के लिए पुलिस कानून व्यवस्था चालू की थी। प्रत्येक थाना का दायित्व दरोगा को सौंपा गया। दरोगा के ऊपर रहते थे मैजिस्ट्रेट। स्थानीय अंचल के आम लोगों के लिए दरोगा ही कम्पनी शासन का शक्तिशाली क्षमतावान व्यक्ति का प्रतीक था।

बंगाल की प्रेसीडेन्सी पुलिस सेना। मूल चित्र इलासट्रेटेड लन्दन न्यूज द्वारा छपा (1864 ई०)।

स्थानीय जमीन्दार दरोगा से सांठ-गांठ करके चलते थे। आम लोगों को दरोगा और जमीन्दारों का अत्याचार सहन करना पड़ता था। 1812 ई० में दरोगा व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया। उसके बदले देखभाल का भार दिया गया कलेक्टर पर। अत: फिर राजस्व अदायगी और रक्षा का दायित्व एक लोग के हाथ में चला गया। राजस्व अदायगी और पुलिस के दमन अत्याचार का जोर चल पड़ा। इससे छुटकारा पाने का कोई उपाय सरकार ने नहीं किया।

ब्रिटिश कम्पनी का मूल लक्ष्य था पुलिस व्यवस्था के माध्यम से कानूनी शासन बनाये रखना। इसी कारण पुलिस व्यवस्था में बार-बार सुधार किया जाता रहा। 1843 ई० में सिन्धु प्रदेश में नये ढंग की पुलिस व्यवस्था का प्रयोग किया गया। फिर पुलिस कानून बनाया गया। पुलिस व्यवस्था फिर धीरे-धीरे ब्रिटिश सरकार का शक्ति प्रदर्शन के लिए महत्त्वपूर्ण हथियार था।

सेनावाहिनी

किसी प्रकार का झमेला होने पर पहले पुलिस उसका सामाधान करती थी। पर गंभीर स्थिति में सेना का उपयोग किया जाता था। इसी कारण जैसे-जैसे ब्रिटिशों का साम्राज्य बिस्तार हुआ वैसे-वैसे उनकी सेना भी बढ़ती चली गयी। शुरु से ही मुगलों की परंपरानुसार अंग्रेज अपनी सेना बनाते थे। उत्तर भारत के किसानों का दमन सेना से करवाया जाता था। सेना को आम आदमी से अलग करके रखा जाता था।

सेनावाहिनी में ही कम्पनी का सबसे अधिक खर्च होता था। कम्पनी के पक्ष में इलाकों पर अधिकार के साथ-साथ विभिन्न विद्रोहों का मुकाबला करना सेना का काम था।

चित्र- बंगाल प्रसीडेन्सी की सेना,
आनुमानिक **1864** में लिया गया चित्र।

प्रारंभ में सेना की भर्ती में जाति को लेकर ब्रिटिश ने विरोध नहीं किया था। इसी कारण उनकी सेना में ब्राह्मण, राजपूत, किसान सबको स्थान मिला था। इन्हें अनेक सुविधाएं दी जाती थी और मासिक भत्ता भी दिया जाता था।

1820 में सिपाहियों के ढाँचे में कुछ परिवर्तन दिखलायी पड़ता है। सेना में मराठा, महीसुर अंचल की पहाड़ी उपजाति और नेपाल से गोर्खा आदि ने सेना में भर्ती होना शुरु किया। अत: उच्च वर्ण के ब्राह्मण, राजपूत, किसान की सुख सुविधाएं घटने लगी। इससे सिपाहियों के बीच असंतोष दिखलायी पड़ा।

औपनिवेशिक शासन के महत्त्वपूर्ण हथियार के रूप में सेना का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। 1880 के दशक में सिपाहियों की संख्या प्राय: 2,50,000 थी जिनके पीछे राज्य का 40 प्रतिशत खर्च किया जाता था।

कुछ बातें

सामरिक जाति

ब्रिटिशों की धारणा थी कि सब भारतीय चावल खाते है इस कारण वे शरीर से कमजोर होते हैं। रोटी खाने वाले अधिक शक्तिशाली होते है। इसी कारण सेना में भर्ती होने से पहले उनके भोजन के बारे में उनसे पूछा जाता था। 1857 के विद्रोह के बाद सिपाहियों को अच्छी तरह तैयार किया गया था। तभी से पंजाब के जाटों को सेना में लिया गया। साथ ही पठान, राजपूत और नेपाली गोर्खा की संख्या भी सेना में बढ़ने लगी। शासकों का विचार था कि ये सब जातियाँ युद्ध करने में निपुण थी। इन्हें 'सामरिक जाति' कहकर इनका प्रचार किया जाता था। बदले में ये सिपाही ब्रिटिश शासकों के अधीन रहते थे 1914 ई० में औपनिवेशिक सेना का लगभग चार भाग ही सामरिक जाति के लोग थे।

नौकरशाही

असामरिक शासन व्यवस्था के शासकों का प्रमुख हथियार नौकरशाही था। परंतु नीति निर्धारण में इनसे कोई सलाह नहीं ली जाती थी। अंग्रेजों की नीति का पालन करना ही इनका काम था। इसी कारण शासन के लिए एक संगठित नौकरशाही की जरूरत महत्त्वपूर्ण थी।

नौकरशाही को संगठित करने के लिए लार्ड कार्नवालिस ने सिविल सर्विस या असामरिक प्रशासन व्यवस्था चालू की। उनका उद्देश्य ब्रिटिश प्रशासन को दुर्नीति मुक्त करना था। कार्नवालिस सोचते थे कि अच्छा वेतन न मिलने के कारण कम्पनी के कर्मचारी मन लगाकर दक्षता से काम नहीं करते। इसी कारण उन्होंने प्रशासन के अधिकारियों का वेतन बढ़ा दिया तथा किसी भी प्रकार के उपहार लेने और व्यवसाय करने पर रोक लगा दी। साथ ही पदोन्नति व्यवस्था चालू की और कर्मचारियों का वेतन भी बढ़ा दिया।

लार्ड कार्नवालिस के समय से ही भारतीयों का सिविल सर्विस में प्रवेश बन्द था। उन्होंने यूरोपीय प्रशासकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की थी। इसी कारण 1800 ई० में कलकत्ता में फोर्ट विलियम कॉलेज की स्थापना हुई। सिविल सर्विस या असामरिक प्रशासन इस कॉलेज में शिक्षा ग्रहण करते थे। परंतु ब्रिटेन में कम्पनी के परिचालक कलकत्ता प्रशिक्षण के बदले ब्रिटेन के प्रशिक्षण को ही अधिक ऊँचा उपयुक्त मानते थे। अन्त में हेलवरी कॉलेज में प्रशिक्षण की प्रक्रिया शुरु की गयी। सिविल सर्विस के समस्त परीक्षार्थियों को हेलवेरी कॉलेज में प्रशिक्षण लेना पड़ता था। एक ही कॉलेज में

पढ़ने के कारण सिविल सर्वेन्टो के बीच मिलता है। ये सर्वेन्ट अपने आपको एक अलग दल के रूप में देखते थे। यह मनोभाव तथा संकीर्ण दलीय भावना औपनिवेशिक प्रशासन के पक्ष में सहायक थी।

ब्रिटिश विचार व्यवस्था। मूल चित्र का नाम *Our Judge*। चित्र जार्ज फ्रांकलीन आर किन्सन द्वारा अंकित।

कुछ बातें

कानूनी शासन और कानूनी दृष्टि में समता

भारत में अंग्रेजों ने कानून व्यवस्था चालू की थी। उनका कथन था प्रशासन कानून मानकर चलेगा। कानून में शासक और शासितों के अधिकारों की स्पष्ट व्याख्या की गयी। शासकों की स्वेच्छा पर प्रशासन निर्भर नहीं करेगा। एक बात में कहा जाए तो कानून का शासन इसकी अवधारणा में बहुत कुछ गणतांत्रिक प्रशासन की ही बात कही गयी थी।

अदालत द्वारा व्याख्यायित कानून की धारा के अनुसार ही कम्पनी का कार्य चलता था। वे व्याख्यायें अंग्रेजों के स्वार्थ में थीं। अत: गणतांत्रिक प्रशासन को क्रियान्वित करने का प्रश्न नहीं उठता था।

कानून के साथ कानून की दृष्टि में 'समता' का भी महत्त्व था। जाति, धर्म, वर्ण, श्रेणी सबसे ऊपर एक ही कानूनी व्यवस्था है। पर इस क्षेत्र में भी अपवाद दिखलायी पड़ता है। इसके सिवाय कानूनी अदालत केन्द्रित व्यवस्था महंगी हो गयी थी।

कुछ बातें

मुद्रित बांग्ला पुस्तक

वारेन हेस्टिंग्स की प्रेरणा से हिन्दू कानून का संकलन किया गया। उसका अंग्रेजी अनुवाद किया था नाथानियल ब्रासि हालेद। अनुवाद का शीर्षक था *A Code of Gentoo Law*। 1778 ई० में श्लेन ने एक बंगला पुस्तक लिखी थी। *A Grammar of the Bengal Language*। व्याकरण की पुस्तक हुगली के एनड्रज छापाखाना में छपायी गयी। पर बंगला की प्रथम पूरी पुस्तक जोनाथन डानकन का अनुवाद 1784 ई० में प्रकाशित हुई थी। इसका शीर्षक था मुफासिल दीवानी अदालत सबको और सदर की दीवानी न्याय और इन्साफ की धारा का उल्लेख है।

A
GRAMMAR
OF THE
BENGAL LANGUAGE
BY
NATHANIEL BRASSEY HALHED.
PRINTED
AT
HOOGLY IN BENGAL

नयी शिक्षा

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के स्वार्थ रक्षार्थ वारेन हेस्टिंग ने एक नयी शिक्षा पद्धति का सूत्रपात्र किया था। फारसी और भारतीय भाषा के जानकारों को उन्होंने राजस्व दफ्तर में नियुक्त किया। हिन्दू और मुस्लिम कानून का अंग्रेजी में अनुवाद करवाया। दूसरी ओर कम्पनी के नियमों का अनुवाद भारतीय भाषाओं में करवाया गया। जैसाकि एलिजा ईम्प के कानून को फारसी और बंगला में अनुवाद करवाया गया। जोनाथन डंकन ने इनका अनुवाद बंगला में सन् 1783 ई० में किया। हेस्टिंग्स महसूस करते थे औपनिवेशिक समाज के ज्ञान और चिन्तन से सम्यक परिचय प्रशासन को दृढ़ बनाना है।

हेस्टिंग्स ने संस्कृत के विभिन्न पंडितों को ज्ञान चर्चा के लिये कलकत्ता आमंत्रिण किया था। जोनाथन डानकन चार्लस विलिकिन्स नाथानियेला ब्रार्सि वारेन हेस्टिंग्स के साथ थे। सन् 1791 ई० जोनाथन डानकन ने हिन्दू कॉलेज की स्थापना की। इसके पीछे इनका उद्देश्य था कि इस कॉलेज से शिक्षा पाये व्यक्ति औपनिवेशिक शासन तंत्र को सुगठित रूप से चलाने में उनकी सहायता करेंगे। इससे भी दस वर्ष पहले हेस्टिंग्स ने कलकत्ता मदरसा की स्थापना की थी।

विलियन जोन्स ने 1784 ई० में कलकत्ता में एशियाटिक सोसायटी की स्थापना की थी। जोन्स का लक्ष्य था प्राचीन संस्कृत ग्रंथों का अंग्रेजी में अनुवाद करवाना। उन्हें लगता था इसके माध्यम से भारत के शिक्षित वर्ग को समझने में आसानी होगी। आपसी समझ से प्रशासन चलाना और भी सहज, सुगम हो जायेगा।

एशियाटिक सोसायटी के विभिन्न सदस्य और श्रीरामपुर मिशन के विलियम कैरी फोर्ट विलियम कॉलेज में पढ़ाते थे। इनके साथ ही सन् 1801 ई० में विभिन्न स्थानीय पण्डितों को भी कॉलेज में नियुक्त किया गया।

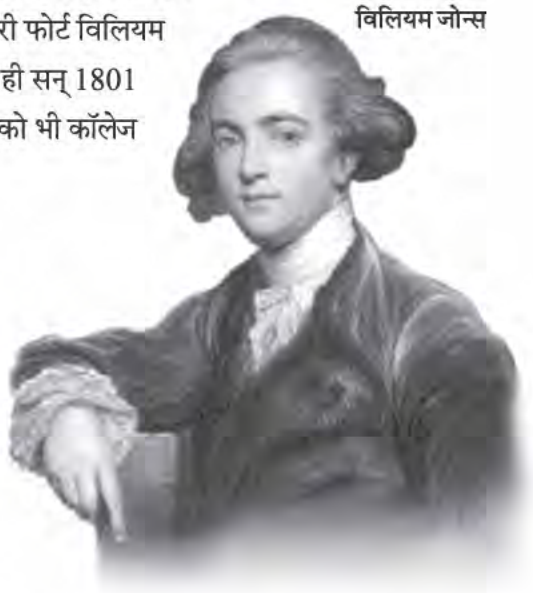
विलियम जोन्स

विलियम केरी

कुछ बातें
विलियम केरी और बापटिस्ट मिशन

सन् 1800 ई० में फोर्ट विलियम कॉलेज के साथ ही श्रीरामपुर बापटिस्ट मिशन की स्थापना की गयी। श्रीरामपुर के मिशनरी ब्रिटिश के शिक्षा विस्तार योजना में शामिल थे। अपना मुद्रण यंत्र लगाकर बांग्ला भाषा में लेख छापने शुरु किये।

इन मिशनरियों में उल्लेखनीय थे विलियम केरी। इन्होंने भारतीय महाकाव्यों का अंग्रेजी में अनुवाद किया इसके अतिरिक्त बाइबिल के एक अंश का विभिन्न भाषाओं में अनुवाद किया था। 1778 ई० में हालोदर द्वारा लिखित बांग्ला व्याकरण की पुस्तक का संपादन कर उसे प्रकाशित किया था।

बापटिस्ट मिशन का छापाखाना, कोलकाता।

1829 ई० में स्काटिश मिशनरी सोसायटी के सदस्य एलेक्जेण्डर ने कलकत्ता में मिशनरी स्कूल की स्थापना का प्रयास किया था। इनमें सबसे विख्यात था जनरल असेम्बली इन्स्टीट्युशन 1830 ई० संस्कृतज्ञ पंडित हेमैन होरास विल्सन के नेतृत्व में 1821 ई० में कलकत्ता के संस्कृत कॉलेज में पठन-पाठन शुरू हुआ। इस कॉलेज का मूल उद्देश्य था। संस्कृत साहित्य के साथ-साथ पाश्चात्य ज्ञान का विकास किया।

1823 ई० में ब्रिटिश प्रशासन ने जनरल समिति आफ पब्लिक इन्स्टीयुशन बनायी। इस समिति ने भारत में शिक्षा प्रसार की गंभीरता के लिये कई सुझाव दिये। उन सुझावों में और दो संस्कृत कॉलेज तथा एक मदरसा खोलने को कहा गया था।

1817 ई० में कलकत्ता हिन्दू कॉलेज बना। सुप्रिम कोर्ट के प्रधान न्यायधीश सर एडवर्ड हाईज ईस्ट और डेविड हेयर के प्रयत्नों से यह कॉलेज खुला। साथ ही कलकत्ता के कई शिक्षित और धनी व्यक्ति भी इस कॉलेज के

स्वयं करो

तुम जिस स्कूल में पढ़ते हो उसका इतिहास खोजो। उसपर एक चार्ट बनाओ स्कूल के चित्र के साथ।

संचालकों में थे। राजा राममोहन राय हिन्दू कॉलेज से युक्त थे। 1823 ई० में राजा राममोहन ने लार्ड अमहर्स्ट को पत्र लिखकर संस्कृत शिक्षा और संस्कृत कॉलेज की प्रतिष्ठा का विरोध किया।

1835 ई० के बाद अंग्रेजी भाषा आधारित शिक्षा का बहुत अधिक विस्तार हुआ। 1839 ई० के एक प्रतिवेदन में साफ-साफ कहा गया अंग्रेजी शिक्षा के विस्तार पर प्रशासन विशेष जोर देगा। परंतु साथ ही अन्य शिक्षा प्रतिष्ठान को भी सरकारी अनुदान दिया जायेगा। अंग्रेजी भाषा के साथ-साथ देशी भाषा पढ़ने का अधिकार भी विद्यार्थियों को दिया जायेगा। 1844 ई० में सरकारी नौकरी के लिये अंग्रेजी को अनिवार्य माना गया। अंग्रेजी शिक्षा नीति के पीछे लॉर्ड मैकाले के प्रतिवेदन की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी।

कुछ बातें

लॉर्ड मैकाले का प्रतिवेदन

1835 ई०, 2 अक्टूबर को जनरल समिति ऑफ पब्लिक इन्स्टुयशन के सभापति थामस बैरिंगटन मैकाले ने भारत में शिक्षा प्रणाली पर एक प्रतिवेदन या मिनिटस पेश किया। उस प्रतिवेदन में मैकाले ने कहा, भारत में अंग्रेजी शिक्षित मध्य वर्ग तैयार करना ही औपनिवेशिक प्रशासन का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। वह शिक्षित वर्ग जन्म से भारतीय होने पर रूचि, आदर्श और नैतिक आचरण से ब्रिटिश होंगे ।..... यहीं मैकाले की आशा थी। अपने प्रतिवेदन में मैकाले ने कहा था, जो शिक्षा संस्थान भारतीय भाषाओं के माध्यम को अपनाते है किसी प्रकार का अनुदान नहीं पायेंगे। मैकले यह मानते थे कि ब्रिटिश जाति ही सबसे उन्नत जाति है और अंग्रेजों का हाथ पकड़कर चलने से ही आधुनिकता आयेगी। इसी कारण मैकाले ने अपने प्रतिवेदन में भारतीय ज्ञान को अपने से हेय माना था।

उन्नीसवीं शतक के चार और पाँच दशक में क्रम से सरकारी प्रयास से शिक्षा का प्रसार होने लगा। 1843 ई० में बंगाल में काउन्सिल ऑफ एडूकेशन तैयार हुई। क्रमश: काउन्सिल नियंत्रित विद्यालय और उनकी छात्र संख्या बढ़ाने लगी। साथ-साथ शिक्षा में सरकारी अनुदान का परिमाण भी बढ़ा था। लेकिन उतना अनुदान विद्यालय के प्रयोजन के लिये बहुत कम था।

कुछ बातें

वुड का प्रतिवेदन

1854 ई० जुलाई महीने में बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल के सभापति चार्स वुड के नेतृत्व में शिक्षाएं बाधित एक प्रतिवेदन पेश किया गया। उसे 'वुड डिस्पैच' कहा जाता है। उसमें सरकार को प्राथमिक से उच्च विद्यालय तक एक रूपरेखा तैयार करने को कहा गया। पाश्चात्य शिक्षा के विस्तार के लिये माध्यम के रूप में अंग्रेजी और भारतीय दो भाषाओं को रखने के लिये कहा गया। उसी मुताबित औपनिवेशिक सरकार की ओर से कई प्रयास किये गये। 1857 ई० में तीन प्रेसीडेन्सी में तीन विश्वविद्यालयों की स्थापना की गयी। उच्च विद्यालय की संख्या बढ़ायी गयी। देश के विभिन्न अंचलों में प्राथमिक विद्यालय खोले गये।

बम्बई प्रेसीडेन्सी में शुरु से ही भारतीय भाषा के माध्यम से पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की चर्चा होती थी। वहाँ के ब्रिटिश प्रशासकों को लगता था कि केवल बम्बई में ही अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा का अधिकार तय हुआ है। अत: बम्बई शहर के बाहर अन्य स्थानों पर देशी भाषा में ही शिक्षा देना उचित है। सन् 1853 ई० में बम्बई प्रेसीडेन्सी के कई स्कूलों में मातृभाषा के माध्यम से शिक्षादान की व्यवस्था थी। मद्रास प्रेसीडेन्सी में मिशनरियों के कारण शिक्षा का प्रसार हुआ।

औपनिवेशिक शिक्षा विस्तार नीति के कई पक्ष थे। इस शिक्षा का उद्देश्य ही था समाज के कुछ लोगों को शिक्षित कर औपनिवेशिक प्रशासन के ढाँचे के साथ जोड़ना। सर्व गण शिक्षा की कोई परिकल्पना ही नहीं थी। उच्च शिक्षा में अंग्रेजी को अनिवार्य कर देने के फलस्वरूप शिक्षा साधारण जन की सीमा के बाहर हो गई। शिक्षा का प्रायोगिक, व्यवहारगत रूप न होने के कारण शिक्षा केवल किताबों तक ही सीमित रह गयी थी। पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की चर्चा होने के कारण भारतीय शिक्षा की अवनति होने लगी। औपनिवेशक शिक्षा नीति में पहले नारी शिक्षा को महत्त्व नहीं दिया गया था। कई विद्वानों के व्यक्तिगत प्रयास से नारी शिक्षा का विस्तार शुरु हुआ। उनमें प्रमुख थे बीटन साहब (बेथून)—इनके प्रयास से बेथून स्कूल खुला।

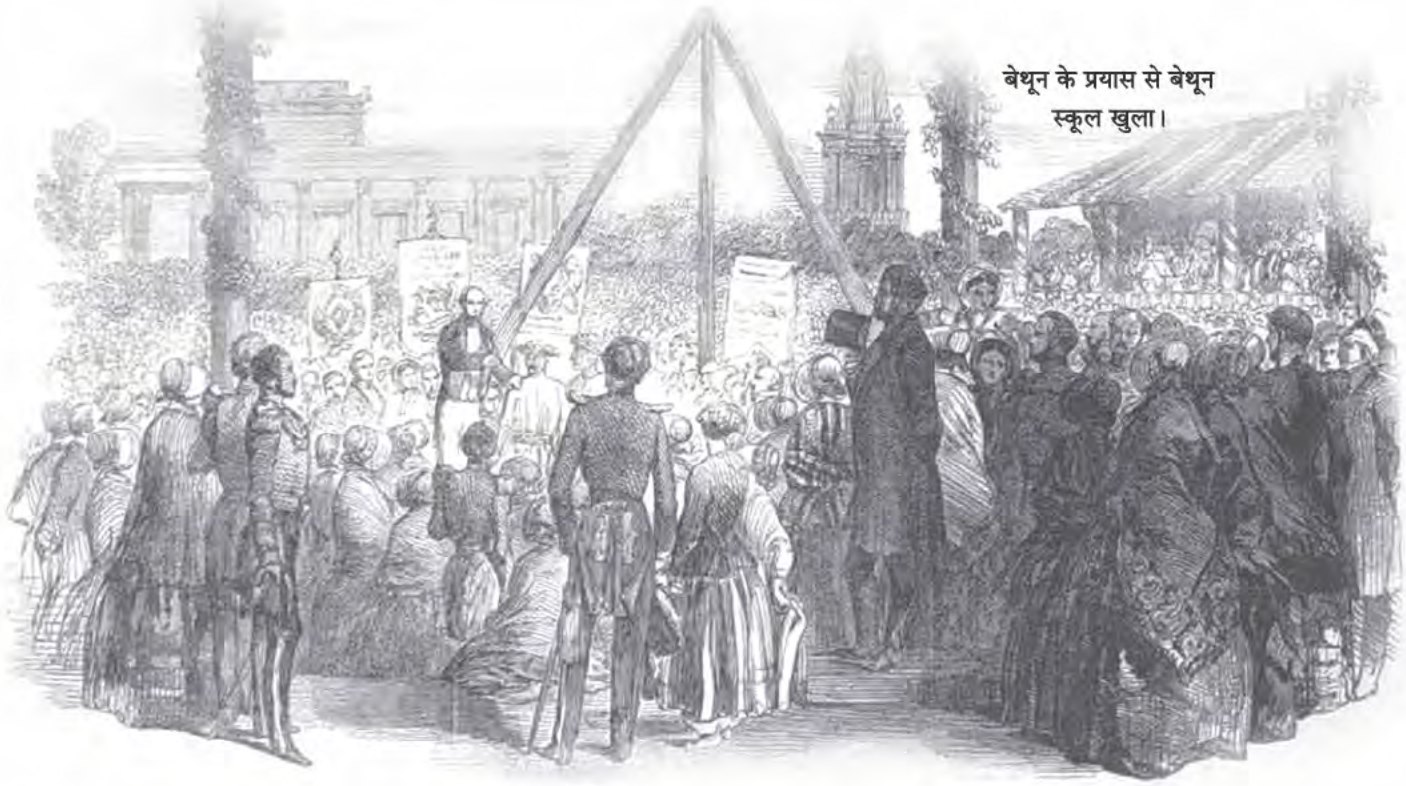

बेथून के प्रयास से बेथून स्कूल खुला।

जमीन माप और राजस्व निर्णय

जेम्स रेनेल का हिन्दुस्तान मानचित्र संकलन का व्याख्यान पत्र। चित्र में ब्राह्मण पण्डित अपने मूलपत्र ब्रिटानिया के हाथ में दे रहे है। ब्रिटानिया ब्रिटिश साम्राज्य और क्षमता का प्रतीक है। अर्थात् चित्र में जो कहा गया है ब्रिटानिया ही भविष्य में भारत का रक्षक होगा।

ब्रिटिश शासन में राजस्व को लेकर काफी संशोधन परिवर्तन चल रहे थे। उनमें जमीन की माप करके, उसके अनुसार राजस्व का निर्णय करने की प्रक्रिया मुख्य थी।

1757 ई० में प्लासी के युद्ध के बाद मीरजाफर से कम्पनी को कलकत्ता से कुलपी तक 24 परगना की जमीन्दारी मिली थी। तब रार्बट क्लाइव ने जमीन की जरीन या मापजोख के लिये माप विशेषज्ञ की खोज की। अन्त में 1750 ई० में फ्लैकलैण्ड ने 24 परगना में जमीन माप का काम शुरु किया। काम शुरु होने से पहले ही फ्लैकलैण्ड मर गये। उसका काम पूरा किया हग कैमेरन ने।

1764 ई० में बंगाल के नदीपथ की माप की जोमस रेनेल ने। उन्हें 1767 ई० में ब्रिटिश कम्पनी ने भारत का सर्वे जनरल या माप विभाग का प्रधान नियुक्त किया। बंगाल के नदी पथो को माप कर रेनेल ने कुल 16 मानचित्र (नक्शे) तैयार किये। तब पहली बार बंगाल की नदियों का गतिपथ बनाया गया।

बक्सर के युद्ध के बाद (1764 ई०) दीवानी अधिकार पाने के फलस्वरूप बंगाल की जमीन माप करवाकर राजस्व का निर्णय कम्पनी को करना पड़ता था। 1770 ई० में मुर्शिदाबाद में 'कम्पट्रोलिंग काउन्सिल ऑफ रेवेन्यू' नाम से एक कमेटी का गठन किया गया। इसका नाम था 'कमेटी ऑफ रेवेन्यू' 1786 ई० में कमेटी ऑफ रेवेन्यू को फिर से नया नाम दिया गया बोर्ड ऑफ रेवेन्यू। तब से यह बोर्ड ऑफ रेवेन्यू ही राजस्व सम्बन्धी विषयों की जानकारी रखता था।

स्वयं करो

अपने स्थानीय क्षेत्रो के जलाश यों, रास्तों और जनबस्तियों का एक मानचित्र तैयार करो।

कुछ बातें

इजारेदारी व्यवस्था

ब्रिटिश कम्पनी ने बंगाल प्रेसीडेन्सी में भूमि की राजस्व की व्यवस्था के लिये कई कदम उठाये। पहले जमीन को नीलाम किया जाता था। सबसे अधिक बोली लगाने वाले को जमीन दे दी जाती थी। बाद के वर्ष में एक बार उस व्यक्ति के साथ कम्पनी भूमि-राजस्व का निर्धारण करती। 1772 ई० में हेस्टिंग्स ने नदिया जिले में नया भूमि-राजस्व चालू किया। इसके अनुसार जो व्यक्ति जमीन की नीलामी पर सबसे अधिक बोली लगाता था। उसके साथ कम्पनी उस जमीन का बन्दोबस्त करेगी। पाँच वर्ष तक जमीन उस व्यक्ति को दी जाती थी। इसी कारण उस बन्दोबस्त को इजारेदारी बन्दोबस्त कहा जाता था। चूंकि उसकी मियाद पाँच वर्ष होती थी, इस कारण उसे पाँच साला बन्दोबस्त कहा जाता था।

इस इजारेदारी बन्दोबस्त में कुछ समस्या दिखायी पड़ी। कई इजारेदार ग्राम-समाज के बाहरी लोग थे। अत: उनके राजस्व निर्धारण का उचित निर्णय नहीं हो पाया। इसके फलस्वरूप निर्णायक राजस्व से वास्तविक राजस्व कहीं अधिक हो गया था। अत: कई इजारेदार देय राजस्व दे नहीं पाये। अत: 1790 ई० में कम्पनी ने दस वर्ष बन्दोबस्त चालू किया। लेकिन क्रम से इन बन्दोबस्त को हटाकर ब्रिटिश कम्पनी गर्वनर जनरल लार्ड कार्नवालिस बंगाल में 1793 ई० में चिर स्थायी बन्दोबस्त लागू किया। इससे बंगाल में राजस्व का एक नया पर्याय शुरु हुआ। साथ ही साथ भारत के अन्य स्थलों में भी जमीन की माप और भूमि राजस्व निर्णय विषयक कार्यक्रम चलते रहे।

जेम्स ईनेल का बंगाल, बिहार, अयोध्या, इलाहाबाद और आगरा दिल्ली के मानचित्र संकलन के व्याख्यान पत्र।

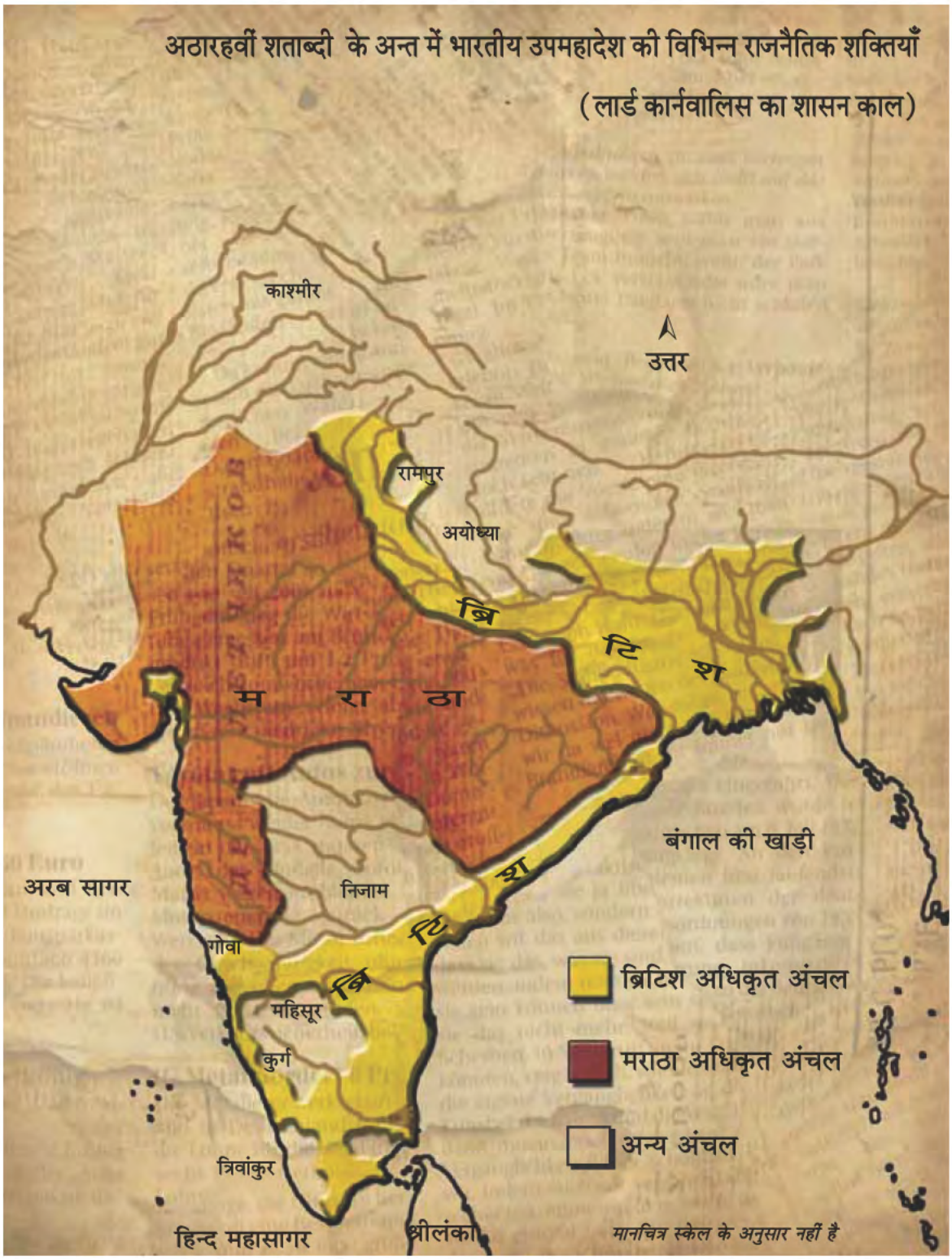
अठारहवीं शताब्दी के अन्त में भारतीय उपमहादेश की विभिन्न राजनैतिक शक्तियाँ
(लार्ड कार्नवालिस का शासन काल)
काश्मीर
उत्तर
रामपुर
अयोध्या
ब्रि
टि
श
म रा ठा
बंगाल की खाड़ी
अरब सागर
निजाम
श
टि
गोवा
ब्रि
महिसूर
कुर्ग
त्रिवांकुर
हिन्द महासागर
श्रीलंका
ब्रिटिश अधिकृत अंचल
मराठा अधिकृत अंचल
अन्य अंचल
मानचित्र स्केल के अनुसार नहीं है

उन्नीसवीं सदी के मध्य में भारतीय उपमहादेश में ब्रिटिश अधिकृत अंचल
(लार्ड डलहौसी के शासन काल का अन्तिम समय)
काश्मीर
पंजाब
उत्तर
पटियाला
रामपुर
राजपुताना
अयोध्या
अजमेर
सिन्धु
कच्छ
रीवा
बंगाल
त्रिपुरा
गुजरात
बंगाल की खाड़ी
अरब सागर
निजाम
गोवा
महिशुर
ब्रिटिश अधिकृत अंचल
(बाकी अंचल
ब्रिटिश अधिकृत)
त्रिवांकुर
हिन्द महासागर
श्रीलंका
मानचित्र स्केल के अनुसार नहीं है

सोचकर देखों
ढूंढकर देखों

1। बेमेल शब्द को खोजकर लिखो-

(क) बम्बई, मद्रास, कलकत्ता, बंगाल

(ख) क्लाईव, हेस्टिंग्स, डुप्ले, कार्नवालिस

(ग) बंगाल, बिहार, सिन्धु प्रदेश, उड़ीसा

(घ) डेविड हेयर, विलियम केरी, जोनाथन डन्कन, पिट

2। निम्नलिखित कथन में कौन सही है कौन गलत है?

(क) बंगाल प्रेसीडेन्सी को सेण्ट जार्ज प्रेसीडेन्सी कहा जाता था।

(ख) बनारस हिन्दू कॉलेज की स्थापना जोनाथन डन्कन ने की थी।

(ग) विलियम केरी श्रीरामपुर मिशनरी सोसायटी के सदस्य थे।

(घ) दस वर्ष के भूमि राजस्व के लिये कम्पनी ने इजारेदारी व्यवस्था चालू की थी।

3। अति संक्षिप्त उत्तर लिखो (30-40 शब्द में)

(क) ब्रिटिश प्रेसीडेन्सी व्यवस्था किसे कहते हैं?

(ख) कम्पनी परिचालित कानून व्यवस्था को ठीक करने के लिये लार्ड कार्नवालिस ने क्या किया था?

(ग) कम्पनी की सिपाही वाहिनी से क्या समझते हो?

(घ) कम्पनी के शासन में माप के क्षेत्र में जेम्स रेनेल की क्या भूमिका थी?

4। अपनी भाषा में उत्तर दो— (60-120 शब्दों में)

(क) वारेन हेस्टिंग्स और लार्ड कार्नवालिस के न्याय व्यवस्था की तुलनात्मक आलोचना करों। इस न्याय व्यवस्था का आम आदमी पर क्या प्रभाव पड़ा था?

(ख) भारत में कम्पनी का विस्तार और सेना वाहिनी की वृद्धि के बीच क्या सीधा संबंध था? तर्कयुक्त उत्तर दें।

(ग) ब्रिटिश कम्पनी की शासन व्यवस्था में नौकरशाही की क्या भूमिका थी? नौकरशाह किस प्रकार एक संकीर्ण दल के रूप में एकजुट हुए?

(घ) कम्पनी शासन की शिक्षा नीति के क्षेत्र में बंगाल से बम्बई का क्या कोई अन्तर था क्या?

(ङ) कम्पनी शासन के साथ जमीन माप का क्या संबंध था? इजारेदारी व्यवस्था चालू करने और बंद करने के पीछे क्या-क्या कारण थे?

5। सोचकर लिखो (200 शब्दों में)

(क) मान लो तुम कम्पनी के एक सिपाही हो। अपने काम और परिवेश के संबंध में अपने मित्र को चिट्ठी लिखो।

(ख) सोचो तुम 19वीं शताब्दी के प्रारंभ में कलकत्ता में रहने वाले हो। हिन्दू कॉलेज और बेथून स्कूल की स्थापना के समय कलकत्ता निवासी दो शिक्षित भारतीयों से औपनिवेशिक शिक्षा व्यवस्था पर एक कथोपकथन (संवाद) लिखो।

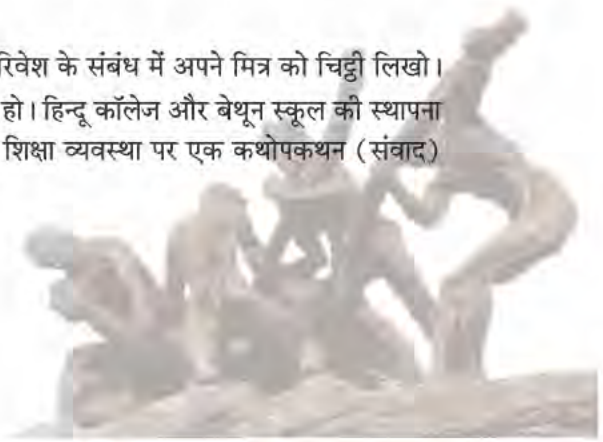

4 औपनिवेशिक अर्थनीति का स्वरूप

1969-70 ई० सन में बंगाल में भंयकर दुर्भिक्ष मन्वन्तर हुआ था। इसके फलस्वरूप कम्पनी अपने राजस्व अदायगी संबंधित ढाँचे पर फिर से विचार करने पर बाध्य हुई थी। बंगाल में कम्पनी के नये शासनकर्ता वॉरेन हेस्टिंग्स ने राजस्व अदायगी के लिये इजारादारी व्यवस्था चालू की थी। परंतु उससे भी अवस्था में कुछ हेर-फेर नहीं हुआ। बहुत अधिक राजस्व वसूलने के लिये किसानों पर करों का बोझ लाद दिया गया। कृषक समाज संकट में पड़ गया था। सन् 1784 ई० में लॉर्ड कार्नवालिस ने राजस्व संबंधी प्रशासन में सुधार लाने की कोशिश की ।

चिरस्थायी (व्यवस्था) बंदोबस्त

लॉर्ड कार्नवालिस कर अदायी के प्रशासनिक ढाँचे की कमजोरियों को जल्द ही समझ गये थे। राजस्व अदायगी की मूल पद्धति के फलस्वरूप कृषक समाज और देशी अर्थनीति डवाडोल हो गयी थी। इससे कम्पनी नुकसान में जा रही थी। खेती के संकट के कारण रेशम और कपास के निर्यात में कम्पनी को घाटा लग रहा था। देशी हस्त शिल्प उद्योग पर भी कृषि संकट का नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा था। इन सबकी जड़ थी राजस्व अदायगी संबंधी व्यवस्था। इसी कारण कम्पनी के कई अधिकारियों ने कर अदायगी को चिरस्थायी बनाने का प्रस्ताव रखा।

1793 ई० में बंगाल में राजस्व अदायगी की चिर व्यवस्था चालू की गयी। यह सोचा गया था इससे राजस्व संबंधित हिसाब में गड़बड़ी नहीं होगी। जमीन्दारी से कितना राजस्व प्राप्त होगा उसका लेखा-जोखा कर लिया गया था। फलस्वरूप कम्पनी के कर्मचारी अपनी इच्छा के अनुसार कर वसूली नहीं कर पाते थे।

दाना निकालते कृषक
मूल चित्रकार सोमनाथ होड़।

कम्पनी को आशा थी कि जमींदार अपने लाभ के लिए कर का भाग बढ़ा लेगें और अधिक निवेश करेंगे। चिरस्थायी बन्दोबस्त में राजस्व ऊँचे दर के हिसाब से रखा गया था।

राजस्व किससे वसूल किया जायेगा ? इसके लिये कम्पनी समस्या में पड़ गयी थी। नवाब के शासनकाल में जमींदारों से नवाब कर वसूलते थे। जमीन्दार किसानों से कर वसूलते थे। इस पद्धति से कम्पनी शासन टूट गयी थी। किसी-किसी जमीन्दार को राजस्व अदायगी से मुक्त कर दिया गया था। तो किसी-किसी को रख दिया गया था। कार्नवालिस ने जब शासन भार संभाला तो पूरी कर व्यवस्था चरमरा गयी थी।

लॉर्ड कार्नवालिस बंगाल में जमीन्दारों की उन्नति चाहते थे, उनकी यह धारणा थी कि जमीन्दार की सम्पत्ति के अधिकार को स्थायी और सुरक्षित करने से वे कृषि की उन्नति के लिये धन का निवेश करेंगे। इसके अतिरिक्त अनेकों कृषकों से कर आदायगी की अपेक्षा कुछ जमीन्दारों से कर अदायगी करना काफी सहज था। साथ ही जमीन पर स्थायी अधिकार करने से वे कम्पनी के अनुगत दल के रूप में रहेंगे। इन्हीं सब कारणों से 1793 ई० में कम्पनी की ओर से जमीन्दार के साथ कर अदायगी को चिर स्थायी बन्दोबस्त किया गया। बंगाल, बिहार, उड़ीसा की सारी जमीने जमीन्दारों की हो गयीं। सब जमीनों पर निर्दिष्ट कर अदायगी बतलायी गई। जमीन्दार समय से अपना निर्धारण कर चुका दें तो जमीन पर उनका स्थायी अधिकार होता। इसके सिवाय भी जमीनों पर उनका पूर्ण अधिकार था। जो उन्हें उत्तराधिकार के रूप में पीढ़ी दर पीढ़ी मिला था। जमीन्दार को अपनी इच्छानुसार जमीन की बिक्री या फेरबदल करने का भी अधिकार था। निर्दिष्ट समय पर कर न चुकाने की स्थिति में कम्पनी जमीन्दारों से जमीने हड़प लेती थीं। उस जमीन की नीलामी कर किसी दूसरे व्यक्ति के हाथों जमीन्दार के अधिकार दे दिये जाते थे। इस प्रकार धीरे-धीरे सारी जमीन ही जमीन्दार की व्यक्तिगत सम्पत्ति हो गयी थी। कार्नवालिस को आशा थी कि इस नयी व्यवस्था से जमीन्दार का स्वार्थपूर्ति और कृषि की उन्नति दोनों ही होंगे।

चिरस्थायी बन्दोबस्त के फलस्वरूप जमीन्दारों की समृद्धि बढ़ी परंतु कृषकों की अवस्था हीन ही बनी रही। कृषक जमीन्दारों की कृपा पर निर्भर हो गये थे। प्राक् औपनिवेशिक समय में कृषकों की अपनी जमीन का अधिकार था किन्तु चिरस्थायी बन्दोबस्त में कृषक के अधिकार खारिज हो गये थे। ऊँचे भाग का राजस्व अदा करने के लिये कृषकों के ऊपर अतिरिक्त कर का बोझ लाद दिया जाता था। इसके सिवाय कई गैर कानूनी कर कृषकों को

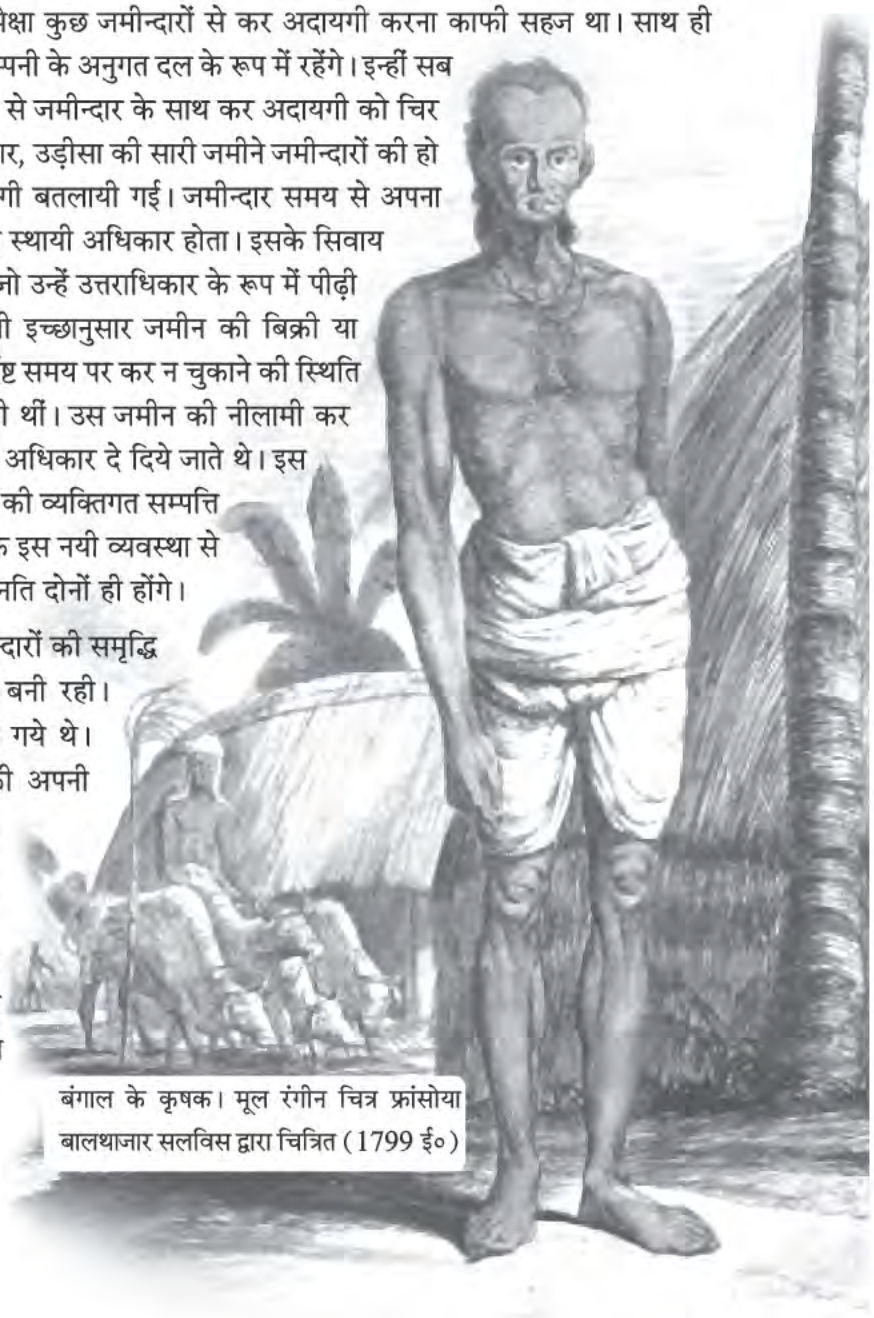

बंगाल के कृषक। मूल रंगीन चित्र फ्रांसोया बालथाजार सलविस द्वारा चित्रित (1799 ई०)

देने पड़ते थे। साथ ही कर न दे पाने की स्थिति में जमींदार को उनको जमीन से बेदखल कर देने का भी अधिकार था। चारों ओर से दबाव के कारण कृषकों की दशा दीन से दीन होती चली जा रही थी।

ऊँचे दर का राजस्व कृषकों से वसूल करना जमींदारों के लिये एक समस्या हो उठी थी। साथ ही प्राकृतिक विपदा के समय वे किसी प्रकार का कर नहीं दे पाते थे। अत: राजस्व न देने के कारण जमींदार की जमीन नीलाम की जाती थी। वास्तव में चिरस्थायी बन्दोबस्त द्वारा कम्पनी की पकड़ भारतीय समाज और अर्थनीति पर सुदृढ़ हुई थी।

कुछ बातें

सूर्यास्त कानून

जमीन्दारों के लिये चिरस्थायी बन्दोबस्त समस्या का एक पक्ष था। जमीन का अधिकार जमींदार के पास होने पर भी सारी जमीन के असली मालिक कम्पनी वाले थे। निर्दिष्ट एक तारीख के अन्दर सारा राजस्व उन्हें कम्पनी को जमा करना होता था। यह व्यवस्था सूर्यास्त कानून के नाम से प्रसिद्ध था। निर्दिष्ट तारीख तक कर जमा न कर पाने की स्थिति में जमीन बिक्री का अधिकार कम्पनी को था।

कुछ बातें

चिरस्थायी बन्दोबस्त का प्रभाव —बंकिमचन्द्र की समालोचना

जीव का शत्रु जीव। मनुष्य का शत्रु मनुष्य, बंगाली कृषक का शत्रु बंगाली भूस्वामी। .... जमीन्दार नामक बड़ा आदमी कृषक नामक छोटे आदमी का भक्षण करता है। जमीन्दार वास्तव में कृषक को पकड़कर उपदस्त नहीं करता हो, चाहे वह जो करते हैं उसकी अपेक्षा हृदय से रक्त पीते तो दया करते। .....

अंग्रेज राज्य में बंगदेश के कृषकों का यह पहली बार भाग्य फूटा। यह 'चिरस्थायी बन्दोबस्त' बंगदेश के अधोपतन का चिरस्थायी बन्दोबस्त मात्र है। किसी भी काल में यह बदलेगा नहीं यह अंग्रेजों का कलंक चिरस्थायी है। कारण अंग्रेजों का चिरस्थायी बन्दोबस्त है।

कॉर्नवालिस ने प्रजा के हाथ पैर बाँध जमीन्दार का ग्रास बनाकर फेंक दिया। जमीन्दार उनपर अत्याचार न कर सके इसके लिये कोई विधि नियम नहीं बनाया। केवल कहा कि प्रजा आदि के रक्षार्थ और मंगलार्थ गवर्नर जनरल जिन सब नियमों को आवश्यक मानकर विवेचना करेंगे, तब जब उपयुक्त समय पर विवेचना करेंगे तब ही बिधिवत् करेंगे। तब जमीन्दार आदि खजाना अदायगी में कोई आपत्ति नहीं कर पायेंगे।

''बिधिबन्ध करेंगे'' आशा दी लेकिन किया कुछ भी नहीं। प्रजा पीढ़ी दर पीढ़ी जमीन्दार के आत्याचार से पीड़ित होनी लगी, लेकिन अंग्रेजों ने कुछ नहीं किया।

जान शोर

फिलिप फ्रान्सिस

थामस मानसे
रैयतदारी बन्दोबस्त के प्रवर्तक
उत्साही व्यक्ति।

रैयतदारी बन्दोबस्त

"दक्षिण और दक्षिण पश्चिम भारत में कम्पनी ने अधिकार पाने के बाद भूमि राजस्व को लेकर परीक्षा-निरीक्षा शुरु की। तब तक चिरस्थायी बन्दोबस्त के सम्बन्ध में अधिकारियों के असंतोष दिखलायी पड़ रहा था। इसके सिवा मद्रास में बड़ी-बड़ी जमीने न थी। मद्रास में बड़े जमीन्दार भी न थे। अत: वहाँ भूमि राजस्व का बन्दोबस्त सीधे कृषक के साथ ही कम्पनी करना चाह रही थी। उस क्षेत्र में कम्पनी को प्राप्त राजस्व का भाग जमीन्दार से करने की जरुरत नहीं थी। कृषक को या रैयत की जमीन के मालिक के रूप में मान लेने से उन्हें जमीन्दार के अत्याचार पीड़न से भी बचाया जा सकेगा। रैयतदारी की शर्त थी कि ठीक समय पर रैयत को भूमि का कर (राजस्व) जमा देना होगा। उन्नीसवीं शताब्दी में बन्दोबस्त चालू किया गया। पर इस बन्दोबस्त को चिरस्थायी नहीं किया गया। निश्चित समय पर किसानों से राजस्व वसूला जाता था। इस रैयतदारी बन्दोबस्त के फलस्वरूप कृषक स्थानीय जमीन्दार के बदले औपनिवेशिक राष्ट्र के अधीन हो गये।

देखा जाय तो कृषक को कोई मालिकाना नहीं मिला। किसान असल में औपनिवेशिक शासक के किराये वाले किसान जमीन पर खेती का अधिकार पाया था। उन्हें पता था कि राजस्व न देने पर उसे जमीन से बेदखल कर उसकी जमीन दूसरे किसान को दे दी जायेगी। औपनिवेशिक प्रथा ने समझा दिया था कि रैयत को प्रदत्त भूमि राजस्व कर नहीं खजाना है। मद्रास बम्बई प्रदेश के अनेक भागों में इस खजाना का स्तर बहुत ऊँचा था। कहीं-कहीं 45% से 55% तक खजाना लिया जाता था। यहाँ तक कि प्राकृतिक प्रकोप से फसल नष्ट होने पर भी रद-बदल का प्रतिशत रद-बदल नहीं किया जाता था।

महलवारी व्यवस्था

महल यानी कई ग्रामों की समष्टि। महलवारी से ग्राम सम्पर्कित अर्थ समझ में आता है। उत्तर और उत्तर पश्चिम इलाके में भूमि राजस्व अदायगी के क्षेत्र में महलवारी बन्दोबस्त चालू किया गया। इस बन्दोबस्त में राजस्व अदायगी के लिये औपनिवेशिक सरकार महल के जमीन्दार या प्रधान के साथ समझौता करता है। उस समझौते में सारा गाँव या समाज को ही ले लिया जाता था।

महलवारी बन्दोबस्त से भी कृषक समाज को राहत नहीं मिली। निश्चित समय के अन्तराल पर राजस्व के भाग का संशोधन किया जाता था। परिणामस्वरूप राजस्व का दर ऊँचा हो होता था। राजस्व का बोझ कम करने के लिये कृषक उधार लेता था। उधार चुका न पाने के स्थिति में उसपर अत्याचार किया गया। अधिकत्तर किसान महाजन और व्यवसायियों के हाथों की कठपुतली था।

भारतीय समाज में ब्रिटिश राजस्व नीति का प्रभाव

अत: देखा जाता है उन्नीसवीं शाताब्दी के बीचों-बीच भारतीय उपमहादेश में तीन प्रकार के राजस्व बन्दोबस्त लागू थे। चिरस्थायी बन्दोबस्त—जमीन्दारी के साथ किया गया। रैयतवारी बन्दोबस्त-रैयत या कृषक के साथ किया गया। तब महलवारी बन्दोबस्त-सीधे ग्राम सम्प्रदाय के साथ किया गया बन्दोबस्त। इन तीनों क्षेत्रों में ही काफी फेरबदल किया गया। शुरु में ब्रिटिश कम्पनी शासन में भूमि राजस्व का मूल उद्देश्य था जितना अधिक हो सके राजस्व जमा करना। इससे सबसे अधिक दबाव पड़ा था कृषक समाज पर। इस दबाव के कारण ही अकाल और दारिद्रय आये। यह भी देखा गया वहाँ के अंचल पर स्थायी बन्दोबस्त नहीं था, वहाँ के किसानों को अधिक समस्या का सामना करना पड़ा था। अधिक राजस्व एकत्र करने के स्वार्थ के लिये कम्पनी ने राजस्व की क्षमता अपने हाथों में रखी थीं।

देशी समाज व्यवस्था पर औपनिवेशिक भूमि राजस्व नीति और बन्दोबस्त का कई प्रकार से प्रभाव पड़ा था। चिरस्थायी बन्दोबस्त के अधीन जमींदारी में भी किसानों की अवस्था में सुधार नहीं था। जमीन्दार कृषक और जमीन की उन्नति के लिये कुछ भी उपाय नहीं करते थे। कृषक के जीवन यापन के लिये कोई उपाय नहीं करते थे। बंगाल में कृषकों को हीन अवस्था में पहुँचाया जाने में कोई कसर नहीं छोड़ी गयी।

अकाल पीड़ित किसान मूल चित्र चित्रों प्रसाद भट्टाचार्य द्वारा चित्रिता

कुछ बातें

बंगाल के कृषकों की दुर्दशा : अक्षयकुमार दत्त की समालोचना

'जो रक्षक है वही भक्षक है'। यह उक्ति भू-स्वामीगण के व्यवहार को सूचित करता है। भू-स्वामी अपने अधिकार को जान ले तो प्रजा एक दिन के लिये भी निश्चिन्त नहीं हो पायेगी —कि न जाने कब क्या उत्पात कर लें, उनका भविष्य तो सदा ही शंका से भरा रहता है। वे क्या केवल राजस्व लेकर सन्तुष्ट होंगे? वे छल बल कौशल से उनका सर्वस्व एकाग्र चित्त भाव से करने को कृत संकल्प है। उनके दारिद्रय, जीर्ण-शीर्ण शरीर, म्लान भूख अति मलिन वस्त्र-किसी से भी उनका पत्थर हृदय आर्द्र नहीं कर पाते। कुछ भी उनके कठोर नेत्रों से अश्रु की एक बूंद नहीं निकलती।

नायब और गुमाश्ते आज निर्भर होकर प्रजा पर अत्याचार कर रहे है। भू-स्वामी के भाग लेने से पहले ही अपने-अपने भाग ले लेते हैं। छल-बल से प्रजा का धन हरण करते है।

[अक्षयकुमार दत्त के पल्लीग्राम की उपकथा से उद्धृत]

रैयतदारी और महलवारी बन्दोबस्त के अधीन ही कृषक की दशा बहुत अच्छी नहीं थी। वहाँ जमीन्दार के बदले उपनिवेश के अधिकारी शोषक -बने हुए थे। दूसरी ओर कुटीर उद्योग के नाश से लोगों को खेती पर ही निर्भर रहना पड़ रहा था। अत: जीविका के रूप में कृषक खेती पर अधिकाधिक निर्भर थे। साथ ही साथ जमीन्दार, महाजन और व्यापारी भी ग्रामों पर अपनी क्षमता कायम करते रहे। इससे किसानों को दोहरे अत्याचारों का सामना करना पड़ रहा था एक ओर जमीन्दार, महाजन, व्यापारी और दूसरी ओर औपनिवेशिक सत्ताधारी।

औपनिवेशिक राजस्व बन्दोबस्त में गाँव में एक ओर बदलाव दिखायी पड़ रहा था, वह था कई पुराने जमीन्दार अपने अधिकार खो चुके थे। कई नये व्यापारी, महाजन और शहरी लोगों ने गाँव की जमीन्दारी खरीद ली थी। अत: ग्राम के सामाजिक सम्पर्क क्षेत्र में भी बदलाव आया था। पुराने जमीन्दार के साथ किसानों का सम्बन्ध नये मालिक के सम्बन्ध से बदल गया था। नये जमीन्दार अधिकाशत: अपनी जमीन पर वास नहीं करते थे। अत: किसान, जमीन के उन्नति किसानों के दुख-सुख से उनका विशेष लेन देन नहीं था। केवल कर्मचारी भेजकर राजस्व अदायगी ही उनका एक मात्र लक्ष्य था।

कुछ बातें
महाजनी व्यवस्था

औपनिवेशिक शासन काल में ग्राम महाजन की विशेष भूमिका मिलती है। अपने राजस्व की अदायगी के लिये किसान महाजन से ऊँचे दर पर स्वयं ऋण लेते थे। किसानो के भोलापन, निरक्षरता का लाभ उठा महाजन जालसाजी कर किसानो को खुद के जाल में उलझा देते थे। इससे किसान बाहर निकल नहीं पाते थे। कम्पनी के कई कानून से महाजनों को जमीन दखल करने का अवसर मिल गया था, जिससे वे किसानों की जमीन हड़प लेते थे। न्याय-व्यवस्था की असगंतियों को महाजन अपने स्वार्थ में तोड़ मरोड़ते थे। कालान्तर में उनके विरूद्ध किसान उठ खड़े हुए थे। विभिन्न अंचलों के किसान विद्रोह का साधारण वैशिष्ट्य और महाजनों के ऊपर आक्रमण देखा गया।

महाजन के अत्याचार से ग्रसित दरिद्र मनुष्य। चित्रकार- चित्तो प्रसाद भट्टाचार्य

कृषि (खेती) का वाणिज्यिक (रूपांतर) परिवर्तन

औपनिवेशिक शासनाधीन भारतीय अर्थनीति का एक ओर कृषि का वाणिज्यिकरण पक्ष था। अर्थात् वाणिज्य के काम में लगने वाली फसलों के प्रति कृषकों पर विशेष दबाव पड़ा था। जैसे चाय, नील, पटसन, कपास की खेती पर सरकार विशेष बल दे रही थी। रेलपथ बनाना, रफ्तानी का भाग बढ़ाना, कृषि के वाणिज्यीकरण की प्रक्रिया को एक साथ 'अर्थनीति के आधुनिकरण' की संज्ञा दी जाती है।

प्रश्न उठता है कि औपनिवेशिक शासन में क्या भारत में कृषि व्यवस्था में उन्नति हुई थी ? यह कहा जा सकता है कि औपनिवेशिक सरकार विशेष उत्साही न थी। कुछेक अपवाद जरुर थे। भारत के कई अंचलों में सिंचाई व्यवस्था के लिये नहरें खुदवायी गयीं थीं। अवश्य ही उन अंचलों में चिरस्थायी बन्दोबस्त चालू न था। इन नहर खुदाई के बदले जमीन के खजाना का भाग सरकार ने बढ़ा दिया था। सरकार की सिंचाई व्यवस्था जरुरत के हिसाब से बहुत कम थीं। सिंचाई व्यवस्था का लाभ धनी वर्ग को अधिक मिलता था। क्योंकि ऊँचे दर का राजस्व केवल धनी किसान ही दे सकते थे। गरीब किसान की दशा में कुछ सुधार नहीं हुआ था। जमीन्दार और बड़े किसानों के अधीन ही उन्हें रहना पड़ता था। इसके सिवाय जनसंख्या बढ़ने के अनुपात में फसल नहीं बढ़ी थी। फलत: दुर्भिक्ष की स्थिति ही बार-बार घटती थी।

कृषक के वाणिज्यिकरण के फलस्वरूप भारतीय कृषक समाज में भेद-भाव आ गया था कृषि के आधुनिकीकरण के साथ मूलधन का जोगाड़ करना और बाजार की खपत के अनुसार फसल उत्पादन विषय जुड़े हुए थे। बल्कि कई कारणों से इन विषयों पर कृषक वर्ग कुछ कर सकने में असमर्थ था। अत: कृषि की जितनी उन्नति होती, उससे कृषक के सीधे लाभ नहीं मिल पाते थे। मूलधन लगाने वाले ही मुनाफा कमाते थे।

पूर्वी भारत में नील की खेती से यह बात स्पष्ट हो गयी थी। नील की खेती के लिये सरकार ने प्रत्यक्ष बढ़ावा दिया था। 1788 ई. में कम्पनी ने दस नीलकर किसानों को नील की खेती के लिये अग्रिम रुपये दिये थे। ये नीलकर किसान ही बंगाल में नील की खेती के लिये उत्तरदायी थे। 1829 ई. में नीलकरों को जमीन खरीदने का अधिकार न था। पहले उन्होंने स्थानीय कृषकों को नील की खेती के लिये राजी करने की चेष्टा की। उनके न मानने पर अग्रिम रुपये देकर उन्हें खेती के लिये बाध्य करते। नील की खेती के कारण ही बंगाल के विभिन्न अंचलों में नीलकर और कम्पनियों के बीच द्वन्द्व होता रहा।

नील की खेती इंग्लैण्ड के कारखानों के कपड़ों की रंगाई के लिये करवायी जाती थी। उसी समय रासायनिक पद्धति से नील तैयार किया जाने लगा। अत: नील की खपत कम हो गयी। इसके अतिरिक्त किसानों के ऊपर नील की खेती करने का दबाव डाला जाता था। उनका दमन किया जाता था। उसी के फलस्वरूप बंगाल में नील विद्रोह हुआ था।

स्वयं करो

तुम्हारे स्थानीय अंचल में क्या खेती होती है? वह कौन-कौन से खाद्य पदार्थ है? कौन सा वाणिज्यिक खाद्य है? तुम्हारे स्थानीय अंचल के एक फसल का मानचित्र बनाओं।

कुछ बातें

बगीचा शिल्प

नील की खेती और विभिन्न बगीचा शिल्प के लिये यूरोपीय उत्साहित थे। उन्नीस शतक के दूसरे भाग में आसाम, बंगाल, दक्षिण भारत और हिमाचल प्रदेश के पहाड़ी अंचल में चाय बगीचा का शिल्प उन्नत था। चाय के बगीचों का मालिकाना विदेशी हाथों में था इस कारण सरकार ने उन्हें कर मुक्त कर दिया था। बगीचे वालों को और भी सुविधाए दी जाती थी। धीरे-धीरे विदेशों में चाय का निर्यात बढ़ने लगा था। दक्षिण भारत में कॉफी के बगीचों का भी विकास हुआ। बगीचों के विकास से भारत के जनगण को आर्थिक सुविधा न मिली थी। क्योंकि विदेशी इससे होने वाले मुनाफे को देश के बाहर भेज देते थे। वेतन का अधिक भाग विदेशी कर्मचारी पाते थे, उत्पन्न उत्पादित द्रव्यों को भी विदेशों में बेचा जाता था जिसका सारा अर्थ ब्रिटेन को मिलता था।

कहने का तात्पर्य यह कि कृषि के वाणिज्यिकरण का विशेष लाभ न हुआ। प्रश्न उठता है कि भारत के कृषक समाज पर इस वाणिज्यिकरण का क्या प्रभाव मिलता है? वास्तव में कृषि उन्नति का अधिकांश सुविधा आर्थिक दृष्टि से शक्तिशाली कृषक ही उठाते थे साधारण किसान वर्ग की स्थिति दयनीय ही रही।

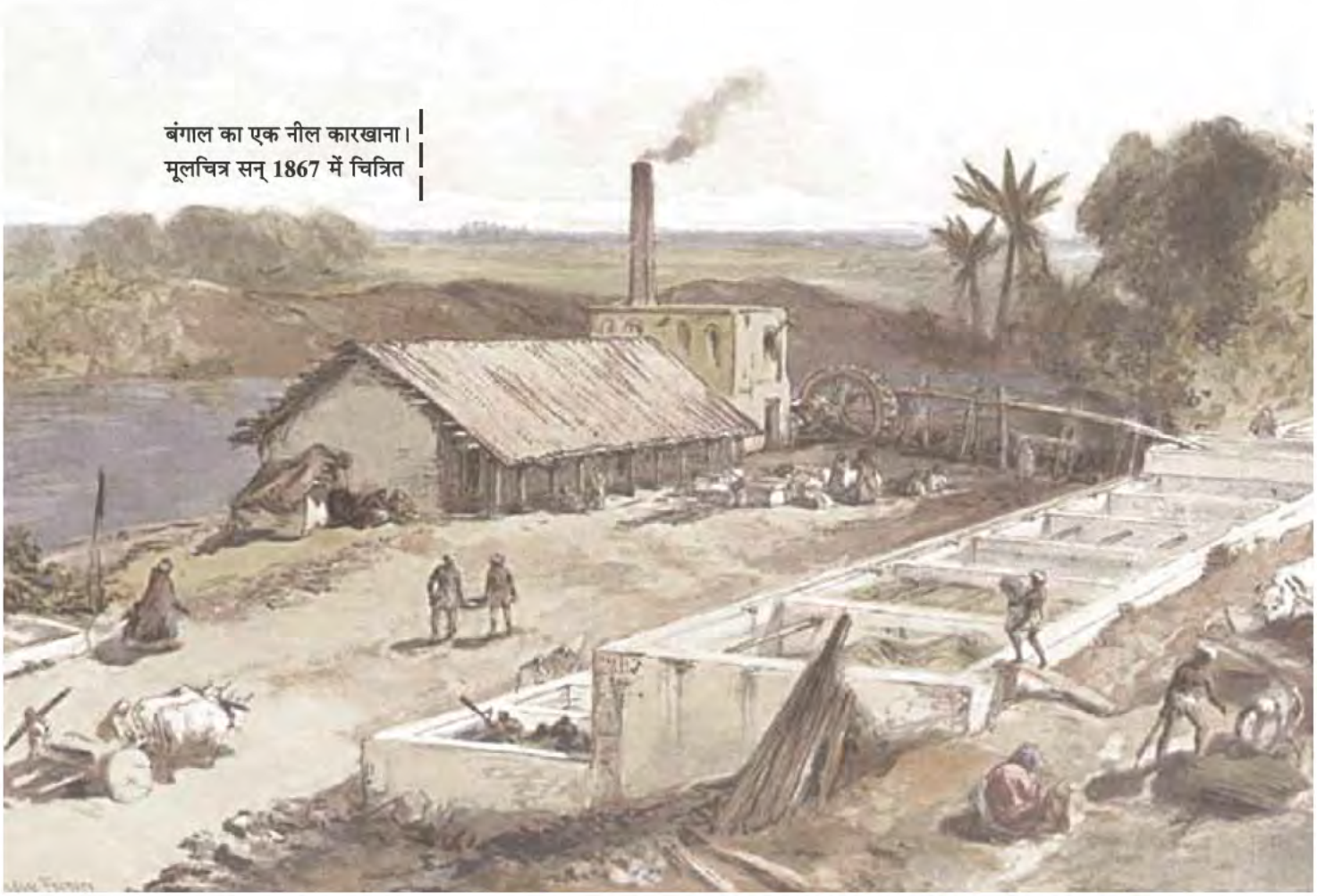

बंगाल का एक नील कारखाना।
मूलचित्र सन् 1867 में चित्रित

विराट संख्यक कृषकों के लिये अच्छे पालतु आदि पशु, उन्नत बीज, खाद और यन्त्रों का जोगाड़ संभव न था। राजस्व का दर ऊँचा होने के कारण कृषि से उपार्जन कम होता था। खेती से उत्पन्न का अधिकांश भाग ही ब्रिटिश सरकार, जमीन्दार और महाजनों के पास चला जाता था। ब्रिटिश सरकार की ओर से किसानों की रक्षा के लिये कोई नियम नहीं बनाये गये थे। अनेक स्थलो पर ही किसान मजदूर या बंधुआ मजदूर में बदल रहे थे। मध्यप्रदेश के एक प्रतिवेदन से पता चलता है कि ऋण के बोझ तले दबे किसान 'दासों' में बदल गये थे।

1905 ई. में रेलपथ बनाने के लिये प्राय: 160 करोड़ रुपये ब्रिटिश सरकार ने खर्च किये थे। इसी समय सिंचाई के लिये 50 करोड़ से भी कम खर्च किये गये थे। वे यह तर्क देते थे कि जल-सिंचाई की अपेक्षा रेलपथ से अधिक लोगों को लाभ मिलेगा। उनके इस कथन की कई देशी बुद्धिजीवियों ने आलोचना भी की थी।

खेती के वाणिज्यिकीकरण के नकारात्मक प्रभाव के कारण भारत के विभिन्न स्थलों पर किसान विद्रोही हो उठे थे। उन्नीस शतक के द्वितीय भाग में अमेरिका के गृह युद्ध के कारण कपास की मांग बढ़ गयी थी। इससे दक्षिण में कपास की खेती बढ़ा दी गयी थी। अमेरिका के गृह युद्ध के रुक जाने के बाद दक्षिणात्य में रूई के दाम गिर गये। इसके ऊपर राजस्व का अतिरिक्त भार किसानों के ऊपर था। उसी समय सूखे, दुर्भिक्ष के कारण पूरा किसान वर्ग दुर्दशा की चरम सीमा पर पहुँच चुका था। उनकी इस दुर्दशा का लाभ उठाया था महाजनों, साहूकारों ने। साहूकार किसान को ऋण देने के बदले उनकी फसल पर अधिकार जताते थे। इस कारण दक्षिणात्य में कपास की खेती करने वाले किसान विद्रोही हो उठे। विद्रोही किसानों ने साहूकार पर आक्रमण करके उनके बही खाते जला दिये। अहमदनगर और पूना से विद्रोह ने भंयकर रूप लिया था। 1815 ई० में मई से सितम्बर महीने तक के इस विद्रोह को ब्रिटिश सरकार ने 'दक्षिणात्य हंगामा' कहा था।

कुछ बातें

आसाम के चाय बागान और श्रमिक अधिकार

बगीचा शिल्प में स्थानीय लोगों को लिया जाता था। मामूली सी मजदूरी और दुर्दशा के बीच उन्हें काम करना पड़ना था। ब्राह्म नेता द्वारकानाथ गंगोपाध्याय ने आसाम के चाय बागान के मजदूरों के पक्ष में सवाल उठाये थे। आसाम के चाय बागानों में मजदूरों पर हो रहे अत्याचारों को उन्होंने अपने आँखों से देखा था और उसे संजीवनी पत्रिका में प्रकाशित किया था। उसी समय द्वारकानाथ के साथी रामकुमार विदारण ने भी धारावाहिक रूप से संजीवनी 'कुली काहिनी' निबन्ध लिख रहे थे। उन दोनों के प्रयत्न से देश के लोगों ने भी सरकार का ध्यान इस ओर खींचा था। श्रमिका की ओर से होकर भारत से लड़ने का यह अन्यतम पुराना उदाहरण है।

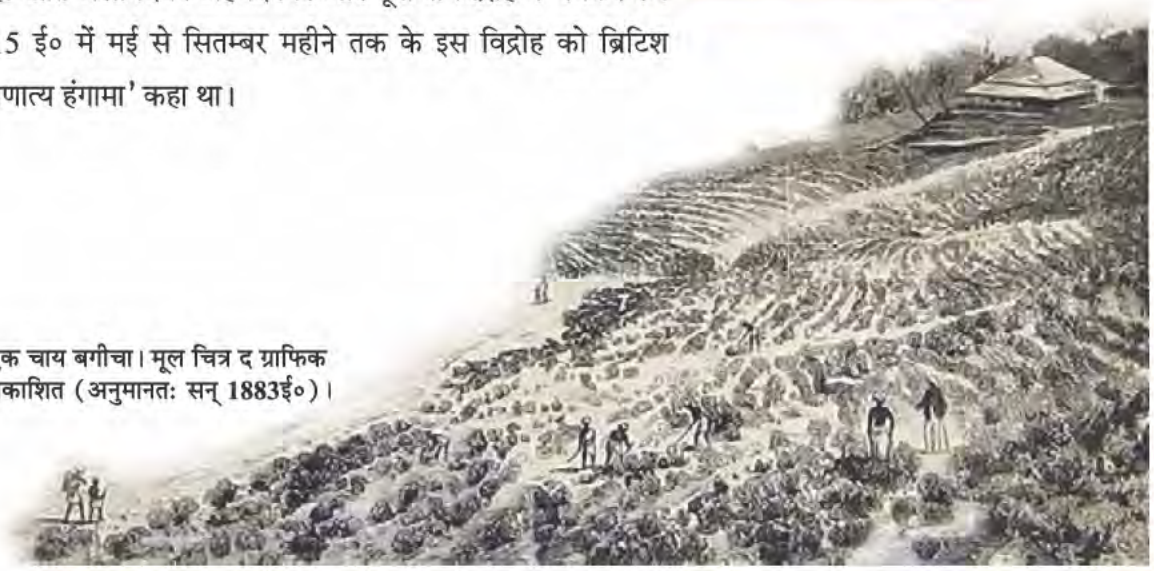

भारत का एक चाय बगीचा। मूल चित्र द ग्राफिक पत्रिका में प्रकाशित (अनुमानत: सन् 1883ई०)।

कुछ बातें

औपनिवेशिक प्रशासन में कृषकों के लिये कानून

दक्षिणात्य में कृषक विद्रोह के फलस्वरूप 1879 ई० में Agriculturists Relief Act (कृषकों की सुविधा के लिये कानून) प्रशासन की ओर से जारी किया गया। इस कानून का उद्देश्य था किसानों के ऊपर से ऋण का बोझ कम करना। ऋण न दे पाने के कारण उन्हें बन्धक बनाकर रखना और गिरफ्तार करना निषिद्ध कर दिया गया। इसके बदले ग्राम से ही पंचायत के माध्यम से साहूकार और किसानों के बीच संवाद के माध्यम से ऋण-शोध करने के उपाय पर जोर दिया गया।

इसी तरह बंगाल के किसानों को जमीन्दार के अत्याचार से बचाने के लिये प्रशासनिक कदम उठाये गई। उनमें 1885 ई० के Tenancy Act अन्यतम है। इस एक्ट के अनुसार अस्थायी रैयतदार को दखली स्वत्व दिया गया। उसमें स्पष्ट कहा गया अदालत के आदेश के सिवाय कोई भी किसान को जमीन से बेदखल नहीं किया जा सकेगा। खजाना बढ़ाने पर जमीन्दार को उसका कारण बतलाने को कहा गया। लेकिन दक्षिणात्य और बंगाल में बहुसंख्यक किसानों, श्रमिकों और बटाईदारों के हितों की ओर औपनिवेशिक प्रशासन की विशेष नजर नहीं थी।

शिल्प वाणिज्य-शुल्क नीति

1757 ई० में प्लासी के युद्ध के समय तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी एक व्यापारिक संस्था थी। कीमती धातु, कई प्रकार के द्रव्य, वस्तु लेकर भारत आते और यहाँ से मसाले, कपड़े ब्रिटेन में भेजते।

ब्रिटेन के वस्त्र उत्पादक कम्पनी के इस निर्यात से खुश नहीं थे। वे ब्रिटेन की सरकार पर दबाव डाल रहे थे, जिससे ब्रिटेन में भारतीय वस्तु बेचना बन्द हो सके। इसी कारण 1720 में नियम बनाकर सूती वस्त्रों पर रोक लगा दी गयी। साथ ही आयातित दूसरे कपड़ों पर आयात शुल्क बढ़ा दिया गया। इतने प्रतिबन्धों के बावजूद अठारहवीं शती में यूरोप के बाजार में भारतीय कपड़ों की मांग थी।

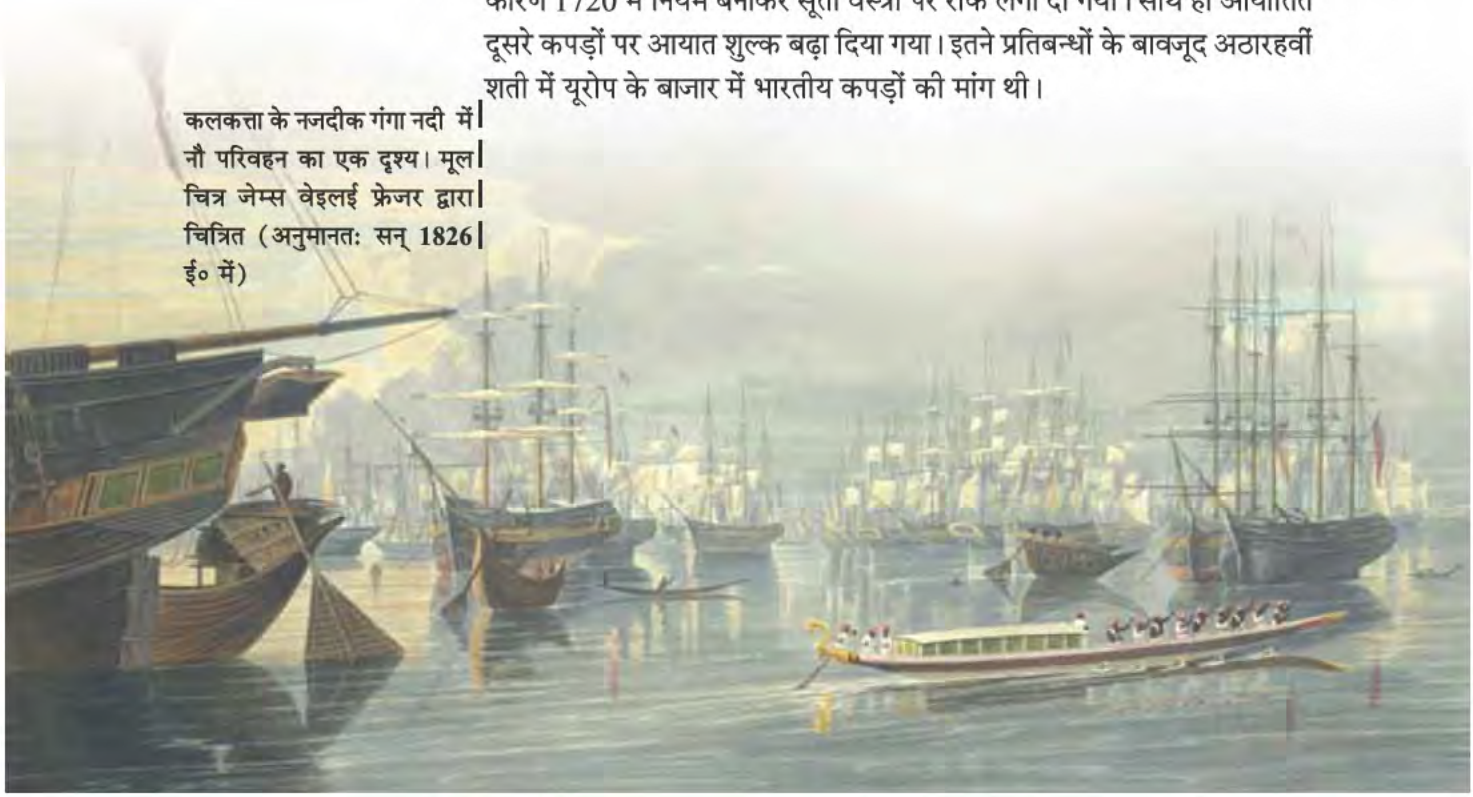

कलकत्ता के नजदीक गंगा नदी में नौ परिवहन का एक दृश्य। मूल चित्र जेम्स वेइलई फ्रेजर द्वारा चित्रित (अनुमानतः सन् 1826 ई० में)

अठारहवीं शताब्दी के बीचों-बीच इग्लैण्ड में वस्त्र शिल्प में नये-नये प्रयोग करके उत्पादन बढ़ाया जाने लगा तथा उसका मान भी अच्छा कर दिया गया। दूसरी ओर अठाहरवीं सदी में प्लासी के युद्ध के बाद भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों भारत का वाणिज्य-व्यवसाय आ गया। बंगाल का राजस्व खर्च कर कम्पनी भारतीय वस्तुओं का आयात करती थी। साथ ही राजनैतिक क्षमता का दुरुपयोग कर देशी वाणिज्य की शुल्क नीति भी ब्रिटिश कम्पनी ने निर्धारित करना शुरू किया। बंगाल के तांतियों को सस्ते में या कम्पनी के बँधे दर में माल बेचने का आदेश दिया जाता तथा उन्हें मजबूर किया जाता था। इससे ताँत शिल्प घटने लगा। कई ताँती सामान्य मजदूरी पर काम करने को विवश हो जाते थे। भारतीय तथा अन्य प्रतिद्वन्द्वी विदेशी व्यापारियों को कम्पनी ने भारत के बाजार से हटवा दिया था।

इसके सिवा बंगाल के हस्त शिल्पियों द्वारा माल की कहीं ऊँचे दाम पर बेचा तो नहीं जा रहा इस ओर भी उनकी कड़ी नजर रहती थी। कम्पनी का आधिपत्य कच्चे सूत के व्यापार पर था। इससे बंगाल के ताँतियों को ऊँचे दर पर सूत खरीदना पड़ता था। बढ़े हुए दाम पर कच्चा माल खरीद सस्ते दाम पर बेचने के लिये बाध्य होने के फलस्वरूप बंगाल का तांत शिल्प क्रमश: क्षतिग्रस्त हो रहा था। 1813 ई० के बीच विदेश के बाजार में भारतीय वस्त्र शिल्प लुप्त हो रहा था दूसरी ओर देश में इस शिल्प को विदेशी वस्त्रों से प्रतियोगिता करनी पड़ती थी। दोनों ओर से आक्रान्त होने से भारतीय वस्त्र हस्त शिल्प उद्योग ठप हो गया। आर्थिक दृष्टि से ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी का अर्थ पर नियंत्रण और एकाधिपत्य हो गया।

कुछ बातें

अवशिल्पायन

1813 ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों भारत के बाजार के एकाधिकार हो जाने के बाद धीरे-धीरे विदेशी वस्तुओं का आयात भारत में होने लगा। इस वैषम्यमूलक प्रतियोगिता के कारण देशी शिल्प का नाश होता गया। भारतीय शिल्पों के लोप की इस प्रक्रिया को 'अवशिल्पायन' कहा गया। ब्रिटेन में तैयार कपड़ों का बराबरी न कर पाने के कारण सूती वस्त्र उद्योग ठप पड़ गया इससे इसके साथ जुड़े सैकड़ों लोग बेरोजगार हो गये।

इन बेरोजगारों ने काम की तलाश में खेती की ओर रुख किया। खेती की अर्थनीति भी इससे चरमरा उठी। उन्नीसवीं के उत्तरार्द्ध में योगायोग व्यवस्था की उन्नति के फलस्वरूप विदेशी वस्तुओं से देशी-बाजार भर गया। इससे देशी शिल्प नष्ट होने लगे। ताँत, काठ, और चर्म शिल्प से जुड़े मनुष्यों ने शिल्प के बदले रेलपथ बनाने का रास्ता बनाने का काम चुना। सहज ही वे मजदूर बन गये।

अवशिल्पायन के लिये सरकार ने सकारात्मक रुख नहीं दिखलाया था। भारतीय अर्थनीति पर अवशिल्पायन के इस नकारात्मक प्रभाव से बुद्धिजीवियों ने सरकार की निन्दा की थी।

इससे स्पष्ट होता है ब्रिटिश की अवधि वाणिज्य नीति का प्रभाव भारत की औपनिवेशिक अर्थनीति पर नकारात्मक था। ब्रिटेन में तब भी भारतीय द्रव्य जनप्रिय थी। उन पर दुगुना कर लगाया जाने लगा। कर तब तक बढ़ाया जाता था, जब तक उस वस्तु का निर्यात न बन्द हो जाय। इस कारण तैयार माल का निर्यात बन्द हो गया बदले में कच्चे माल का निर्यात होता था।

कच्चे माल में 'सूत' प्रमुख था। सूत से तैयार किये गये वस्त्र ब्रिटेन भारत में निर्यात करता था। 1813 ई० के बाद से ही ब्रिटेन की मांग को ध्यान में रखकर भारत की औपनिवेशिक शिल्प नीति का निर्धारण होता था। उपनिवेश के हिसाब से भारत ब्रिटेन के तैयार माल के निर्यात का बाजार बन गया था।

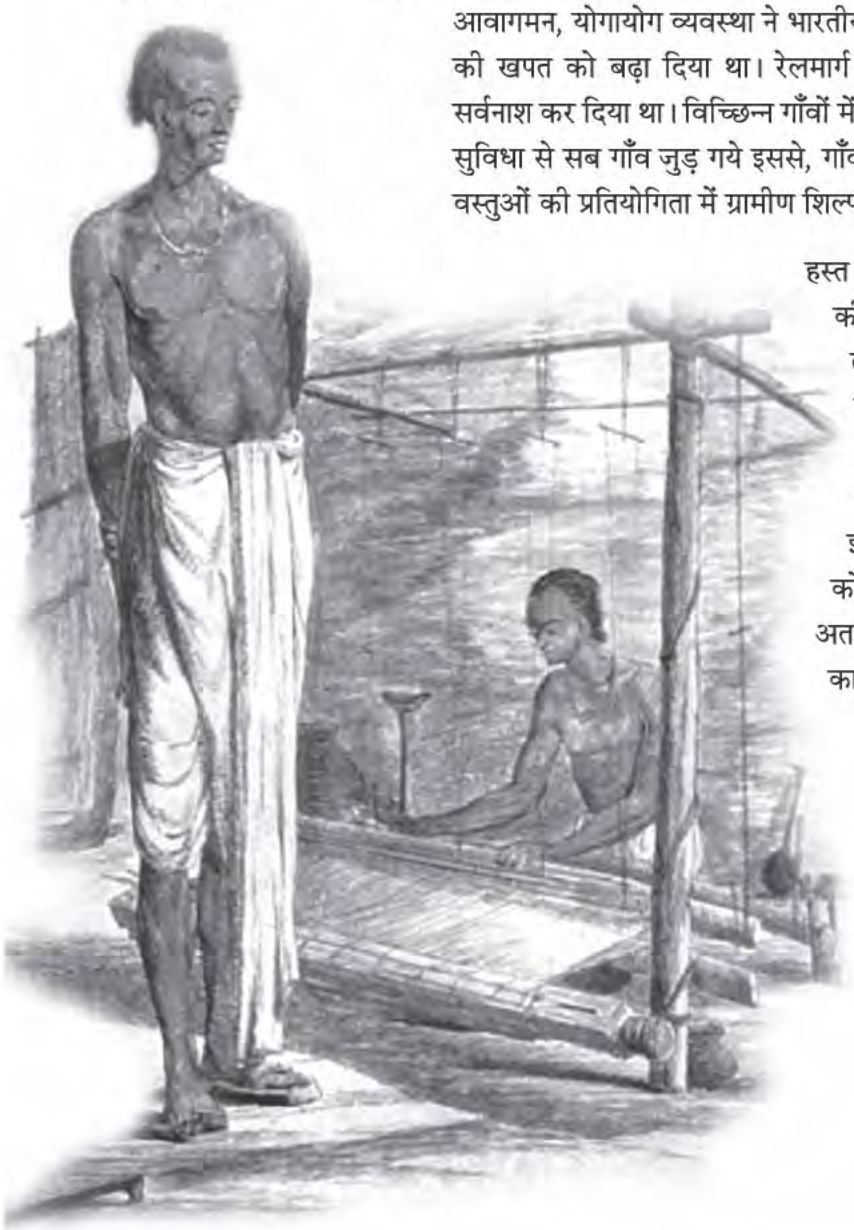

बंगाल के ताँती। मूल चित्र फ्रासोआ बालथाजार सलबिस द्वारा चित्रित।

आवागमन, योगायोग व्यवस्था ने भारतीय बाजार को विस्तृत कर ब्रिटेन के द्रव्यों की खपत को बढ़ा दिया था। रेलमार्ग के फैलाव ने ग्रामीण हस्त-उद्योग का सर्वनाश कर दिया था। विच्छिन्न गाँवों में हस्तशिल्प के ग्राहक थे, लेकिन रेल की सुविधा से सब गाँव जुड़ गये इससे, गाँवों में भी ब्रिटिश द्रव्य फैल गये। विदेशी वस्तुओं की प्रतियोगिता में ग्रामीण शिल्प पिछड़ते चले गये।

हस्त शिल्प के नष्ट होने के कारण कई शहरों की चमक भी कम होती गयी। मुर्शिदाबाद, ढाका, सूरत दुर्बल होते गये। इन शहरों की जनसंख्या उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक बहुत कम हो गयी थी। शिल्पी और कारीगरों ने कृषि का काम ले लिया था इससे खेती पर भी दबाव बढ़ा। इस दबाव को संभालने की शक्ति खेती में न थी। अत: भारत में कृषि और शिल्प की अर्थनीति का संतुलन बिगड़ गया।

कुछ बातें

ब्रिटिश साम्राज्य के–'रत्न'

अठारहवीं शताब्दी के अन्त में डेढ़ शतक तक औपनिवेशिक ब्रिटिश प्रशासन भारत की अर्थनीति को ब्रिटिश साम्राज्य के स्वार्थ के ऊपर निर्भर करती थी। 1857 के सिपाही विद्रोह के बाद कहा गया कि भारत में ब्रिटिश शासन व्यवस्था का खर्च भारत को ही उठाना पड़ेगा। लेकिन ब्रिटिश साम्राज्य के प्रयोजन अनुसार भारतीय सम्पद का व्यवहार कर पायेगा। भारत का बाजार ब्रिटिश वस्तुओं के लिये खुल गया। 1914 ई0 में ब्रिटिश के लंकाशायर में तैयार सूती कपड़ों का 85 प्रतिशत भारत में बिक्री होता था। भारतीय रेल में लगाये गये लोहा और इस्पात के 17 प्रतिशत ब्रिटिश से आता था। अत: ब्रिटिश साम्राज्य के लिये सबसे महत्त्वपूर्ण 'रत्न' था भारत।

उपनिवेश के रूप में भारत में ब्रिटिश अर्थनैतिक नीति को व्यंग्य करके बनाया गया चित्र। मूल चित्र इंग्लैण्ड के प्रांच पत्रिका में प्रकाशित। (अनुमानत: 1873 ई०)

उन्नीसवीं शताब्दी के दूसरे भाग में भारत में यन्त्र–निर्भर शिल्पों का निर्माण हुआ। 1850 में सूती कपड़े, पटसन और कोयले के शिल्प आये। 1853 में बम्बई में पहला सूती कपड़े का कारखाना चालू हुआ। हुगली के रिषड़ा में पहला पटसन का कारखाना चालू हुआ। धीरे–धीरे सूती कपड़े और पटसन शिल्प में कई लोग श्रमिक के रूप में भर्ती हुए। बीसवीं सदी के आरम्भ में चमड़ा, चीनी, लोहा, इस्पात और विभिन्न खनिजों के कारखानों का निर्माण हुआ।

इन सब कारखानो में अधिकांश धन ब्रिटिश का लगता था। सस्ते मजदूर, कच्चा माल और ऊँचा मुनाफा ब्रिटिश विनियोगकारियों को अपनी ओर आकर्षित करते थे। भारत और उसके आस-पास के देशों में द्रव्य विक्रय का बाजार भी था। साथ ही औपनिवेशिक सरकार का भी पूर्ण सहयोग उन्हें प्राप्त था। भारतीय उद्योगपतियों को यह सहयोग नहीं मिला था। केवल सूती कपड़े के शिल्प उद्योग में कई भारतीय निवेशकारी थे। बैंक से उधार लेना अथवा बैंक से व्याज के दर पर भी भारतीयों के संग विषमता बरती जाती थी। धीरे-धीरे भारतीय व्यवसायियों ने देशी बैंक और बीमा कम्पनी खोलने का प्रयास किया।

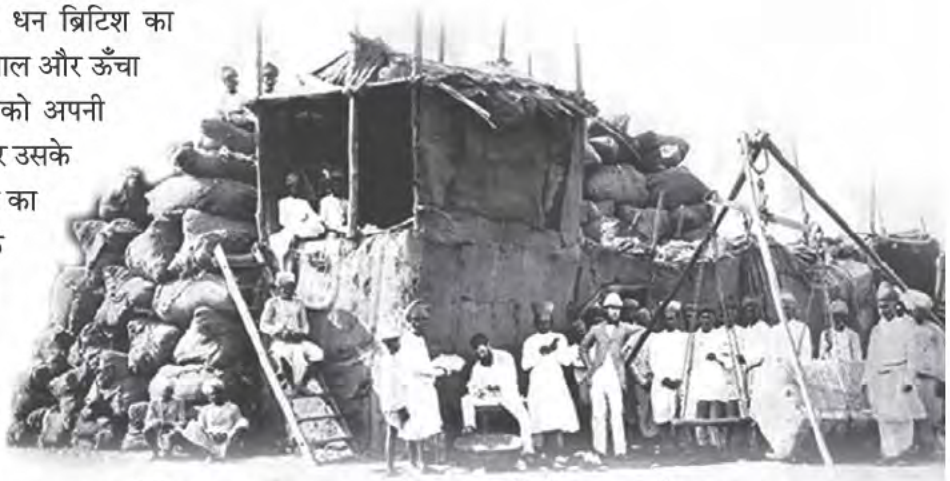

मुम्बई में एक ऊन का बाजार। मूल चित्र 1869 ई० के लगभग खींचा गया था।

सरकार के रेल और परिवहन व्यवस्था में भी यह विषमता दिखलायी पड़ती है। देशी द्रव्यों के लिये रेल भाड़ा अधिक था जबकि विदेशी माल को कम खर्च में बाजारों में पहुँचा दिया जाता था। इसके परिणाम स्वरूप देशी शिल्प की अग्रगति मूलत: 'सूत' और पटसन तक सीमित रह गया था। इसके साथ ही देशी शिल्प कुछ क्षेत्रों तक ही सीमाबद्ध था।

मुम्बई का नेशनल बैंक ऑफ इण्डिया। मूल चित्र 1860 ई० का

रेल व्यवस्था

भारत में औपनिवेशिक शासक की अन्यतम प्रतीक था रेल व्यवस्था। इसके कारण भारत के कई अंचल एक दूसरे से जुड़ गये थे। रेलपथ बनाने की पद्धति से स्पष्ट होता है शुरु में भारत की उन्नति के लिए रेलपथ बनाने की

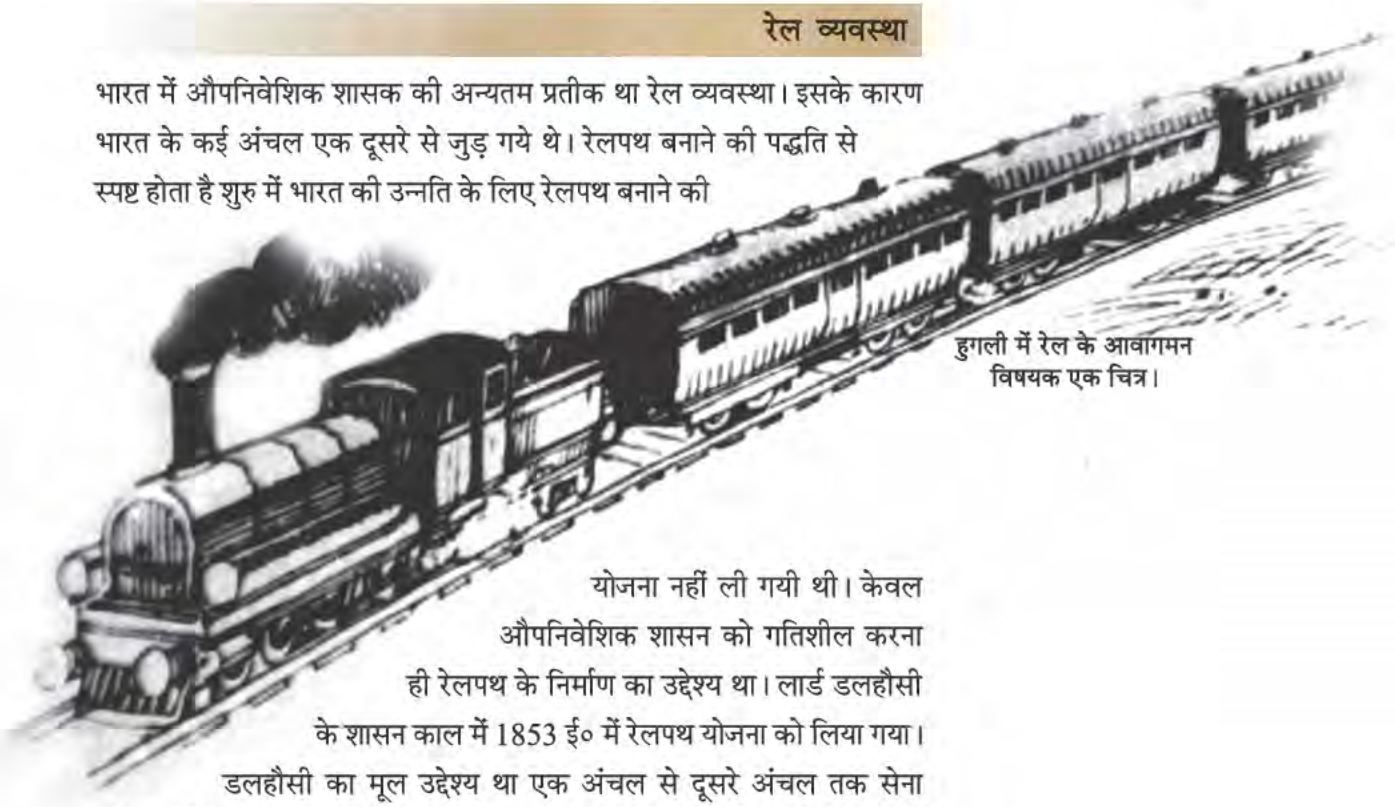

हुगली में रेल के आवागमन विषयक एक चित्र।

योजना नहीं ली गयी थी। केवल औपनिवेशिक शासन को गतिशील करना ही रेलपथ के निर्माण का उद्देश्य था। लार्ड डलहौसी के शासन काल में 1853 ई० में रेलपथ योजना को लिया गया। डलहौसी का मूल उद्देश्य था एक अंचल से दूसरे अंचल तक सेना बाहिनी को पहुँचा देना। साथ ही बन्दरगाह, शहर, विभिन्न बाजारों और कच्चे माल के उत्पादन की जगहों को रेलपथ से सहज ही जोड़े जाने की परिकल्पना भी थी। इससे भारत के बाजार की ब्रिटिश द्रव्य - उपयोगी बाजार बनाना सहज हो गया था।

रेलपथ के निर्माण में खर्च की व्यवस्था ब्रिटिश ने व्यवस्था की थी। इसके सिवाय विशेष जरूरत पड़ने पर राजस्व से पाँच प्रतिशत दर पर धन देने की बात भी की एवं उन्हें निन्यानबे वर्ष के लिये जमीन दी गयी थी। अत: जमीनों से राजस्व नहीं लिया जाता था। कहा गया था कि समझौता की मियाद खत्म होने पर रेलपथ सरकार के अधीन हो जायेगा। मियाद के बीच में किसी भी समय कम्पनी रेलपथ सरकार को लौटाकर मूलधन के साथ सारा खर्चा सरकार से मांग सकती थी। इसी कारण रेलपथ निर्माण का प्रकल्प कई कम्पनियों के लिए मूलधन निवेश का आदर्श क्षेत्र हो उठा था। इसी कारण 1858 से 1869 ई० के बीच 7 करोड़ पाउण्ड से भी अधिक

रेलमार्ग से सेना भेजने का एक दृश्य।

स्वयं करो

1760 में एक हिसाब अनुसार प्रति मील रेललाईन बैठाने के लिये 2000 स्लीपर लगते थे। यदि पाँच स्लीपर बिछाने में एक बड़ा वृक्ष काटा जाता हो तो प्रत्येक मील पर स्लीपर बिछाने के लिए कितने पेड़ काटे जायेंगे? उनका प्रभाव परिवेश पर किस प्रकार पड़ेगा।

मूलधन भारत के रेलपथ निर्माण के कार्य में निवेश किया गया था।

उपनिवेश की आर्थिक उन्नति के बदले ब्रिटिश सरकार के स्वार्थ पूर्ति ही रेलपथ निर्माण का प्रमुख उद्देश्य था। पर्याप्त ब्रिटिश माल रेलपथ के माध्यम से देश के भीतरी बाजारों तक पहुँचा दिया जाता था। उसके लिये भाड़ा कम लगता था। देश के विभिन्न भागों से बन्दरगाह तक माल निर्यात के लिये लाने पर बहुत अधिक किराया लगता था। इसी प्रकार कच्चे माल के परिवहन पर भी रेल के किराये में वैषम्य था।

भारत में रेलपथ के निर्माण के फलस्वरूप ब्रिटेन की आर्थिक उन्नति हुई थी। रेलपथ बनाने का सारा सामान लोहा यहाँ तक कि कुछ दिनों तक कोयला भी ब्रिटेन से आयातित होता था। रेलपथ निर्माण की साधारण कला भारतीयों को सिखायी जाती थी पर विशेष कला विदेश से लोग ही मंगाये जाते थे। रेलपथ निर्माण को केन्द्र में रखकर भारतीयों को विशेषज्ञता से सचेतन भाव से दूरी पर रखा जाता था। रेलपथ बनाने में साधारण जल निकासी व्यवस्था की क्षति होती थी, जिससे कई तरह के संक्रामक रोग रेलपथ के साथ फैल गये थे। रेलपथ के लिये जंगलों को काटा गया। इससे परिवेश दूषित हुआ। जंगल में निवास करने वाली जन-जातियों ने रेलपथ निर्माण का विरोध किया। क्योंकि इससे उनकी जमीन घर बार छीन ली जा रही थी, उनकी मान मर्यादा पर आघात पहुँच रहा था। इसी कारण उनमें औपनिवेशिक शासन के प्रति असन्तोष का भाव था।

रेल लाइन बनाने के लिए साँवतालों के साथ ब्रिटिश कम्पनी का विरोध। मूल चित्र इलासट्रेटेड लन्दन न्यूज पत्रिका में प्रकाशित (अनुमानतः 1856 ई०)

कुछ बातें

रेल भ्रमण का अनुभव

भारत में रेल व्यवस्था चालू होने के बाद आम आदमियों को रेल भ्रमण का कई तरह का अनुभव हुआ था। महानन्द चक्रवर्ती अपने अनुभव को बताते हैं — 'रेलपथ भ्रमण वर्णन में' इस निबंध में मुफासिल से कलकत्ता की रेलयात्रा का अद्‌भूत वर्णन है। बहुत दिनों के आयोजन के बाद महानन्द रेल में चढ़कर कलकत्ता जाने वाले थे। उसका वर्णन करते हुए वे कहते है, ''दस घण्टा रात में छोड़ने के बाद बस्ती/ स्टेशन के शक्तिपीठ में किया बस्ती। इसी समय घण्टा बजा किया आश्चर्यचकित घण्टा को सुन डर-डर सा गया।''

घण्टा बजा उन्होंने किया विसर्जन / महाशब्द ने किया पुनः गमन / पास से नद-नदी नगर गतिमान / भाद्रपद मास में जैसे नदी वेगवान / उस रूप में नहीं किया जाता विश्राम / वैद्यवाटी फरासजांगा श्रीरामपुर लांघकर / दस घण्टा समय पर पहुँचा हावड़ा में। महानन्द चक्रवर्ती द्वारा लिखित अंश से चिन्ताहरण चक्रवर्ती रेल भ्रमण प्राचीन चित्र से लिया गया है। (मूल वर्णन अपरिवर्तित है)

रेलपथ निर्माण औपनिवेशिक समाज के लिए कितना जरुरी है इस पर विभिन्न मत थे। भारतीय यह मानते थे कि प्रशासन रेलपथ की जगह अगर सिंचाई व्यवस्था पर ध्यान देते तो समाज की बहुत भलाई होती। इसके सिवाय भारत के राजस्व से कम्पनियों को सूद पर धन देने की आलोचना भी की गयी। उनके अनुसार इससे देश की संपत्ति विदेशों में चली जा रही थी। इसी से देशी समाज में रेल को लेकर मिली-जुली प्रतिक्रिया थी। वास्तव में देखा जाये तो रेलपथ ने बाजारों की दूरी कम कर दी थी। माल और यात्री परिवहन भी सहजता से हो रहा था, इसमें कोई दो मत नहीं है।

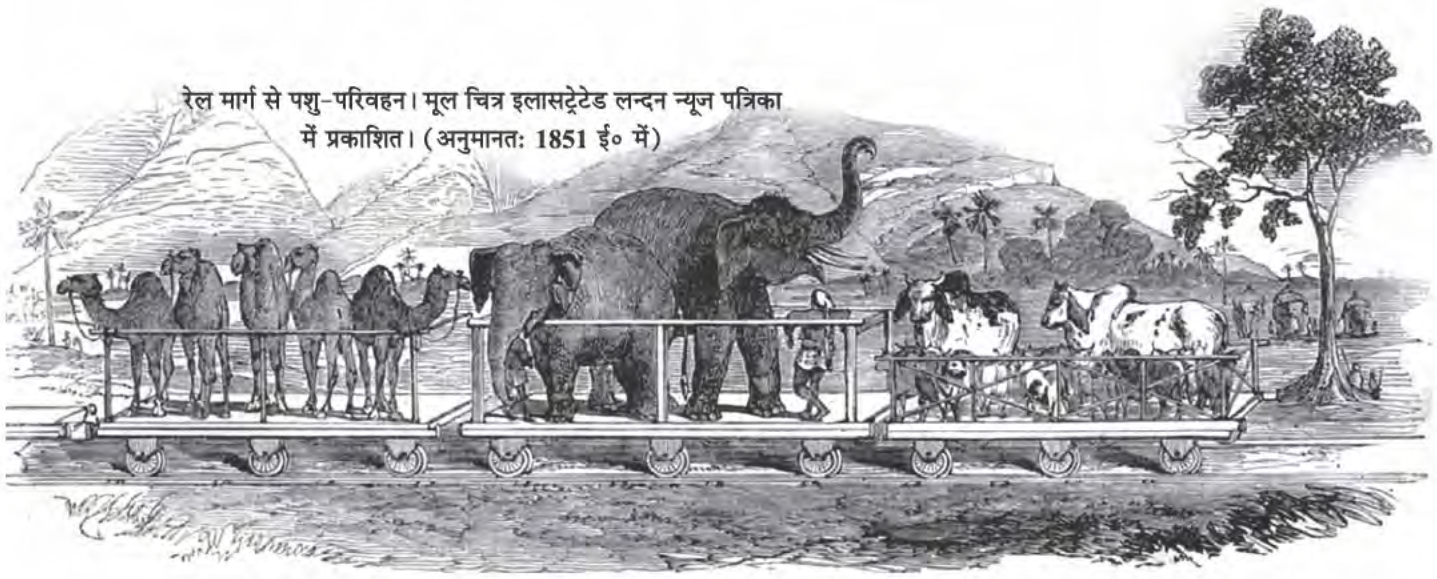

रेल मार्ग से पशु-परिवहन। मूल चित्र इलासट्रेटेड लन्दन न्यूज पत्रिका में प्रकाशित। (अनुमानत: 1851 ई० में)

स्वयं करो

कुछ ही समय पहले कलकत्ता में टेलीग्राफ आफिस बन्द हो गया। अपने अंचल की परिवहन एवं सम्पर्क व्यवस्था पर एक चार्ट बनाओ।

औपनिवेशिक भारत में टेलीग्राफ व्यवस्था

उन्नीसवीं शताब्दी के दूसरे भाग में रेलपथ की तरह ही टेलीग्राफ व्यवस्था का भी विकास हुआ था। औपनिवेशिक शासन के राजनैतिक और सामरिक प्रयोजनों ने टेलीग्राफ के व्यवहार को आवश्यक जरुरत बना दिया था। वस्तुत: रेलपथ और टेलीग्राफ का विकास सहगामी हैं। रेलपथ के बराबर ही टेलीग्राफ की लाइन तैयार की गयी थी। यहाँ तक कि टेलीग्राफ से रेल स्टेशनों के बीच योगायोग करना प्रयोजन होता था। उनके द्वारा रेल की सिग्नल व्यवस्था चलायी जाती थी।

1851 से भारत में कई मील जोड़कर टेलीग्राफ व्यवस्था चालू हुई। 1856 के अन्त तक भारतीय उपमहादेश में 46 टेलीग्राफ केन्द्र तैयार हो गये थे। प्राय: 4 हजार 250 मील से अधिक अंचल टेलीग्राफ के परिवृत्त में समा गये थे। कलकत्ता से आगरा, उपमहादेश के उत्तर-पश्चिम अंचल, बम्बई, मद्रास, इत्यादि अंचल टेलीग्राफ के अन्तगर्त थे। 1856 ई० के बीच 17 हजार 500 मील और उन्नीसवीं सदी के अन्त तक 52 हजार 900 मील टेलीग्राफ से जुड़ गये थे।

टेलीग्राफ व्यवस्था के पीछे औपनिवेशिक राष्ट्र का राजनैतिक स्वार्थ छिपा था। उपमहादेश के विभिन्न प्रान्तों से जरुरी संवाद और तथ्य अति शीघ्र शासन केन्द्र में पहुँचाना जरुरी था। इस काम में टेलीग्राफ ही सबसे अधिक सहायक और निर्भरयोग्य था। द्वितीय अंग्रेज-बर्मा युद्ध के समय (अप्रैल 1852 ई०) बर्मा की राजधानी रंगून पराजय की खबर कलकत्ता में बैठे लार्ड डलहौसी ने टेलीग्राफ के मार्फत ही पायी थी। यहाँ तक कथन प्रसिद्ध था कि वैद्युतिक टेलीग्राफ के माध्यम से ही 1857 के युद्ध से ब्रिटिश की रक्षा हुई थी। दूरदराज के प्रान्तों में उठने वाले विद्रोह की सामान्य सी सूचना भी केन्द्र तक पहुँच जाती थी।

बंगाल का डाकहरकरा। मूल चित्र इलासट्रेटेड लन्दन न्यूज पत्रिका में प्रकाशित (अनुमानत: 1858 ई०)

टेलीग्राफ व्यवस्था ने शीघ्र ही यूरोपीय और भारतीय व्यवसायियों को अपनी ओर आकर्षित किया। प्रशासकों के समान ही भारत का शिक्षित वर्ग भी इस

सुविधा का लाभ उठाने लगा। 1870 ई० में भारत और ब्रिटेन के बीच टेलीग्राफ सम्पर्क का विकास हुआ। जिसके फलस्वरूप भारत पर अंग्रेजों का शिकंजा और भी जोर से कसा।

सम्पदा का बहिर्गमन

औपनिवेशिक शासन के अधीन भारत में आर्थिक नीति के तीन विषय तर्क के घेरे में थे— (1) सम्पदा का निर्माण, (2) अवशिल्पायन, (3) देशी जनगण का दारिद्रय। प्लासी के युद्ध के बाद देश की सम्पदा को ब्रिटेन में भेजती चली जा रही थी। उनके असम शिल्प, वाणिज्य, युद्ध नीति ने भारतीय शिल्प और कारीगरी व्यवस्था को ध्वंस कर दिया था। इसी का फल था दुर्भिक्ष और दारिद्रय।

भारत की सम्पदा को कई तरह से ब्रिटेन में स्थान्तारित किया जाता था। इससे भारत की आर्थिक उन्नति नहीं होती थी। इस तरीके से देश की सम्पदा को विदेश में भेजने को ही 'सम्पद का बहिर्गमन' कहा जाता था। सम्पद का यह बहिर्गमन भारत में ब्रिटिश शासन का एक विशिष्ट लक्षण है। वस्तुतः सुल्तान और मुगल शासन काल में राजस्व की अदायगी होती थी। पर उससे शासन चलाया जाता था उससे देशी कृषि एवं वाणिज्य दूर नहीं गये या बन्द नहीं हो गये। इसका कारण यही था कि सुल्तान और मुगल स्थायी भाव से भारत में निवास करते थे और किसी देश के न थे। ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारत में रहते हुए भी ब्रिटेन को माथे में रख काम करती थी। उनके काम का पूर्ण उद्देश्य था भारत के अर्थ को ब्रिटेन के काम में लाना और इसके लिये भारत के अर्थ और सम्पदा का ब्रिटेन में भेजना आवश्यक था।

अकाल-पीड़ित लोग। मूल चित्र चित्तो प्रसाद भट्टाचार्य द्वारा चित्रित। (1943 ई० में बंगाल के मन्वन्तर के समसामयिक)

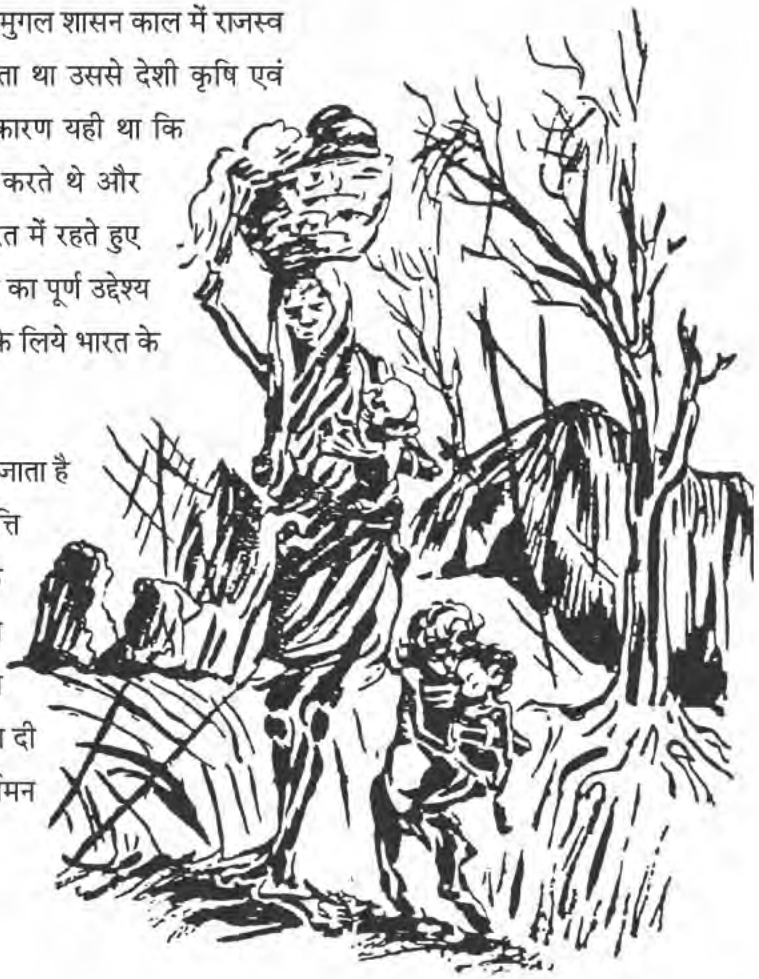

1840 ई० में एक ब्रिटिश अधिकारी के कथन से जाना जाता है कि भारत से वर्ष में 2-3 करोड़ स्टर्लिंग मूल्य की सम्पत्ति ब्रिटेन में भेजी जाती थी। उसके बदले में भारत युद्ध के सामान्य सरंजाम के सिवाय कुछ भी नहीं पाता था। भारत में सम्पद बहिर्गमन के क्षेत्र में ब्रिटिश 'स्पंज' के समान कार्य करते थे। भारत की सम्पत्ति लूटकर ब्रिटेन में भेज दी जाती थी। 19 वीं शताब्दी के द्वितीयार्द्ध में भी यह निर्गमन

चला था। इस शतक के शेष होते समय भारतीय राष्ट्रीय आय का 6 प्रतिशत और राष्ट्रीय संचय का 1/3 प्रतिशत सम्पदा निर्गत हो जाती थी। हिसाब लगाकर देखा गया है कि ब्रिटेन के आय का 2 प्रतिशत भारत की निर्गत सम्पद से था।

भारत में दारिद्रय

दारिद्रय पीड़ित भारतवासी मूल चित्र इलासट्रेटेड लन्दन न्यूज पत्रिका में प्रकाशित (1877 ई०)

सम्पद के बहिर्गमन तथा अवशिल्पायन के कारण भारत के जनों में दरिद्रता बढ़ गयी थी। इस पर यद्यपि मतभेद भी है। भारत के विभिन्न प्रान्तों में होने वाले दुर्भिक्ष को दरिद्रता का द्योतक माना जा सकता है। उन्नीसवीं शताब्दी में (द्वितीय भाग) उपमहादेश के विभिन्न अंचलों में दुर्भिक्ष से अनेकों की मौत हुई थी प्राय: लाखों लोग मारे गये थे। दुर्भिक्ष में सरकारी सहायता भी बहुत कम थी, नगण्य थी। 1854 ई0 से 1901 ई० के बीच प्राय: 2 करोड़ 89 लाख मनुष्य दुर्भिक्ष की भेंट चढ़े थे। भारत के भयावह दारिद्रय की कथा अनेक ब्रिटिश अधिकारियों ने भी मान ली थी। एक प्रतिवेदन में कहा गया था प्राय: 4 करोड़ भारतवासी आधा पेट खाकर रहते है।

इस दरिद्रता के पीछे सरकार की नीति ही है। औपनिवेशिक अर्थनीति के कारण ही दारिद्रय स्थायी भाव से घटकर बैठी थी। अत: राष्ट्रीय आन्दोलन में प्रारंभ में राष्ट्रीयतावादी भारत की दरिद्रता को लेकर आवाज उठाते थे।

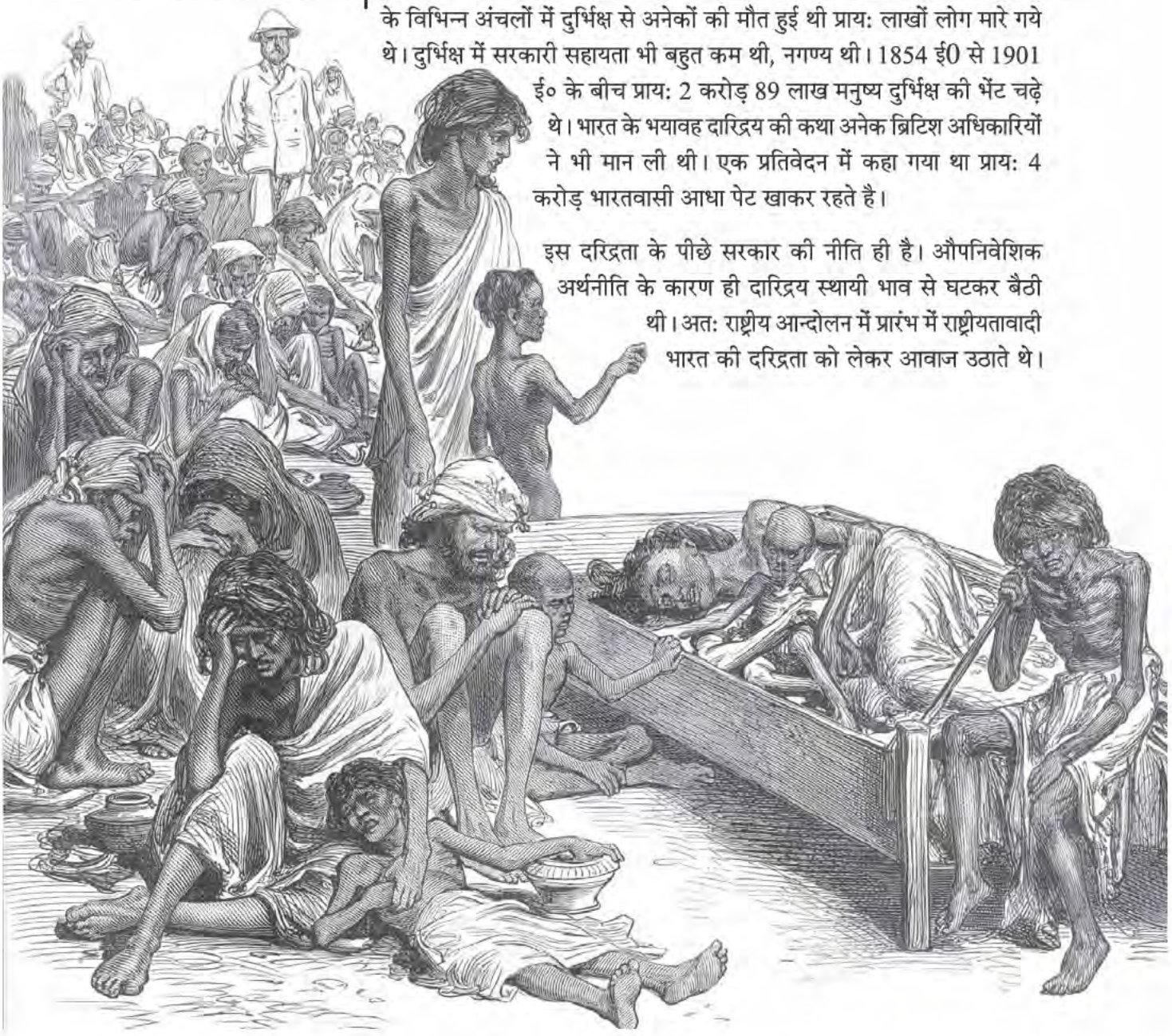

कुछ बातें

औपनिवेशिक शासन में भारत की उन्नति : बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय की दृष्टि में

''आज कल बड़ा शोर सुना जा रहा है कि हमारे देश की बड़ी श्रीवृद्धि हो रही है। इतने दिनों तक हमारा देश बर्बाद था आवारा था अब अंग्रेज शासन कौशल से हम सभ्य हुए हैं। हमारे देश का बड़ा मंगल हो रहा है।

कैसा मंगल, देख नहीं पा रहे हो ? यह देखों लौहतनु का लौहतुरंग— इतने दिनों का रास्ता एक दिन में तय कर रहा है— काशीधाम में तुम्हारे पिता आज बहुत बीमार हैं— विद्युत ने आकाश से उतर कर तुम्हें खबर पहुँचायी और तुम रात तक उनके चरणों के पास बैठ उनकी सुश्रुशा करने लगे।

इस मंगल की लूट के बीच मेरी एक जिज्ञासा है, किसका इतना मंगल ? हासिम शेख, रामा और कैवर्त्त दोपहर में नंगे माथे। नंगे पांव घुटने भर कीचड़ में पांव अटकाये बलिष्ठ बैल पर भोंथर हल रख खेती करने चले है अस्थिचर्म होकर, उनका क्या मंगल हुआ है ? भाद्र मास की धूप में उनका माथा फट रहा है, तृष्णा से उनकी छाती सूख रही है ..... परंतु अभी घर लौटकर भोजन करने का समय नहीं है। यही खेती का समय है। सन्धा बेला वे घर जाकर टूटे फटे पत्तल में मोटा सोटा लाल भात नमक मिर्च से आधा पेट खायेंगे। इसके बाद टूटी चटाई नहीं तो जमीन पर गौशाला के पास सो-जायेंगे। उन्हें मच्छर नहीं काटेंगे। वे दूसरे दिन फिर घुटनों तक कीचड़ में काम करने जायेंगे। जाते समय या तो जमीन्दार या महाजन उन्हें पकड़कर ले जायेगा ऋण देने के लिये बैठाये रखेगा। काम नहीं होगा। नहीं तो खेती के समय जमीन्दार जमीन छीन लेगा तब उस वर्ष क्या करोगें ? उपवास सपरिवार उपवास ? बोलो तो नाक पर चश्मा लगाये बाबू ? इनका क्या मंगल हुआ है ? तुम लिखना पढ़ना सीखकर इनका क्या मंगल करोगे ? और तुम अंग्रेज बहादुर ! ..... तुम बोलो तो देखे तुम्हारे रहते हासिम, शेख, रामा, कैवर्त्त का क्या उपकार हो रहा है ?

..... देश का मंगल ? देश का मंगल, किसका मंगल ? तुम्हारा मेरा मंगल देख रहे हो, लेकिन तुम, हम क्या देश है ? तुम हम देश के कितने जन है ? और यह कृषिजीवी कितने है ? उनको छोड़ दो तो कितने रहेंगे ? देश की अधिकांश जनता ही कृषिजीवी है। जहाँ उनका मंगल नहीं है वहाँ देश का मंगल कैसा ?''

[उद्धत अंश बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय के 'बंगदेश के कृषक' निबंध के प्रथम परिच्छेद से लिया गया है। (मूल शब्द अपरिवर्तित है)]

दरिद्र पीड़ित लोग। मूल चित्र चित्तो प्रसाद भट्टाचार्य द्वारा चित्रित (1943 ई० के समय बंगाल के मन्वन्तर के समय)

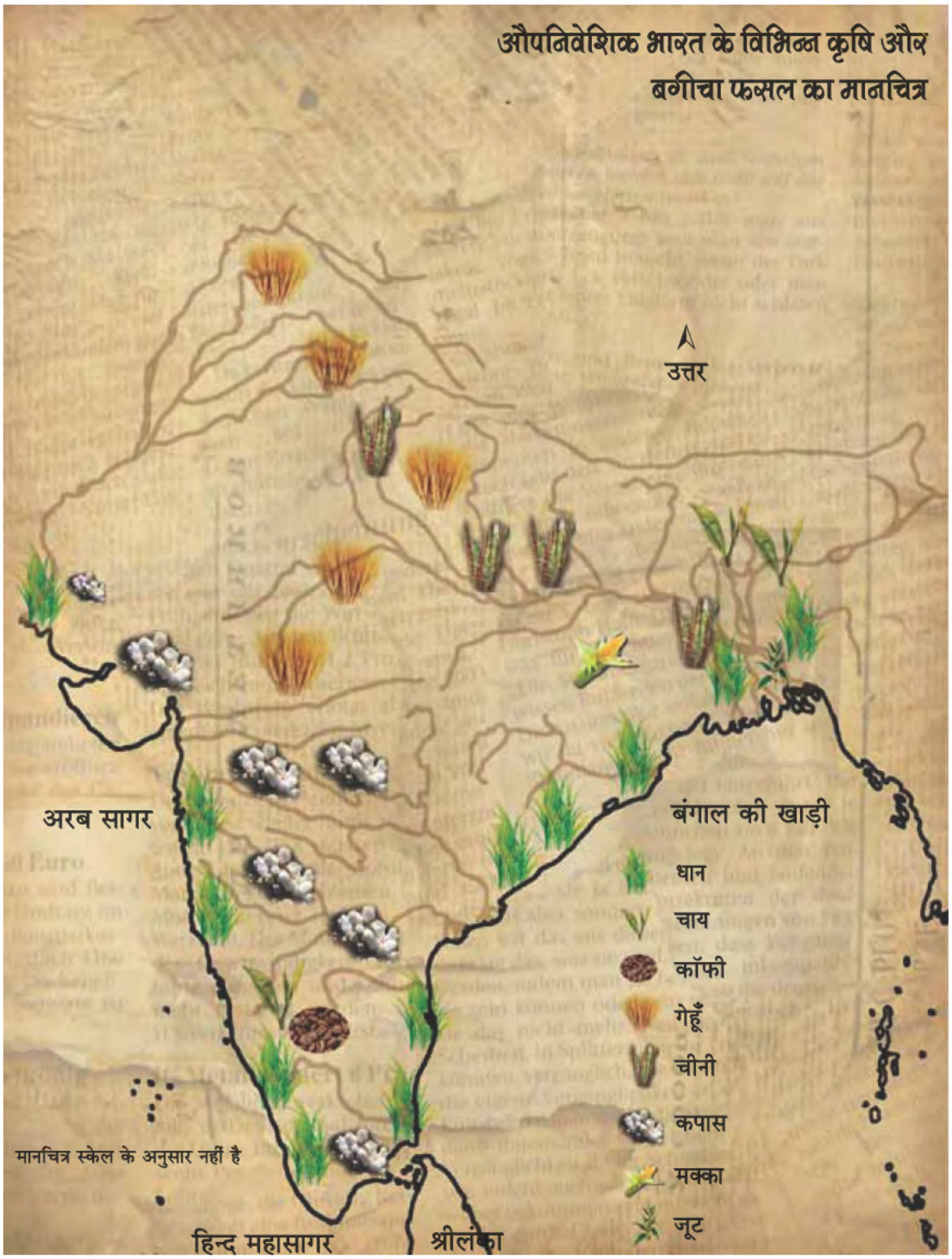
औपनिवेशिक भारत के विभिन्न कृषि और
बगीचा फसल का मानचित्र
उत्तर
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
धान
चाय
कॉफी
गेहूँ
चीनी
कपास
मक्का
जूट
मानचित्र स्केल के अनुसार नहीं है
हिन्द महासागर
श्रीलंका

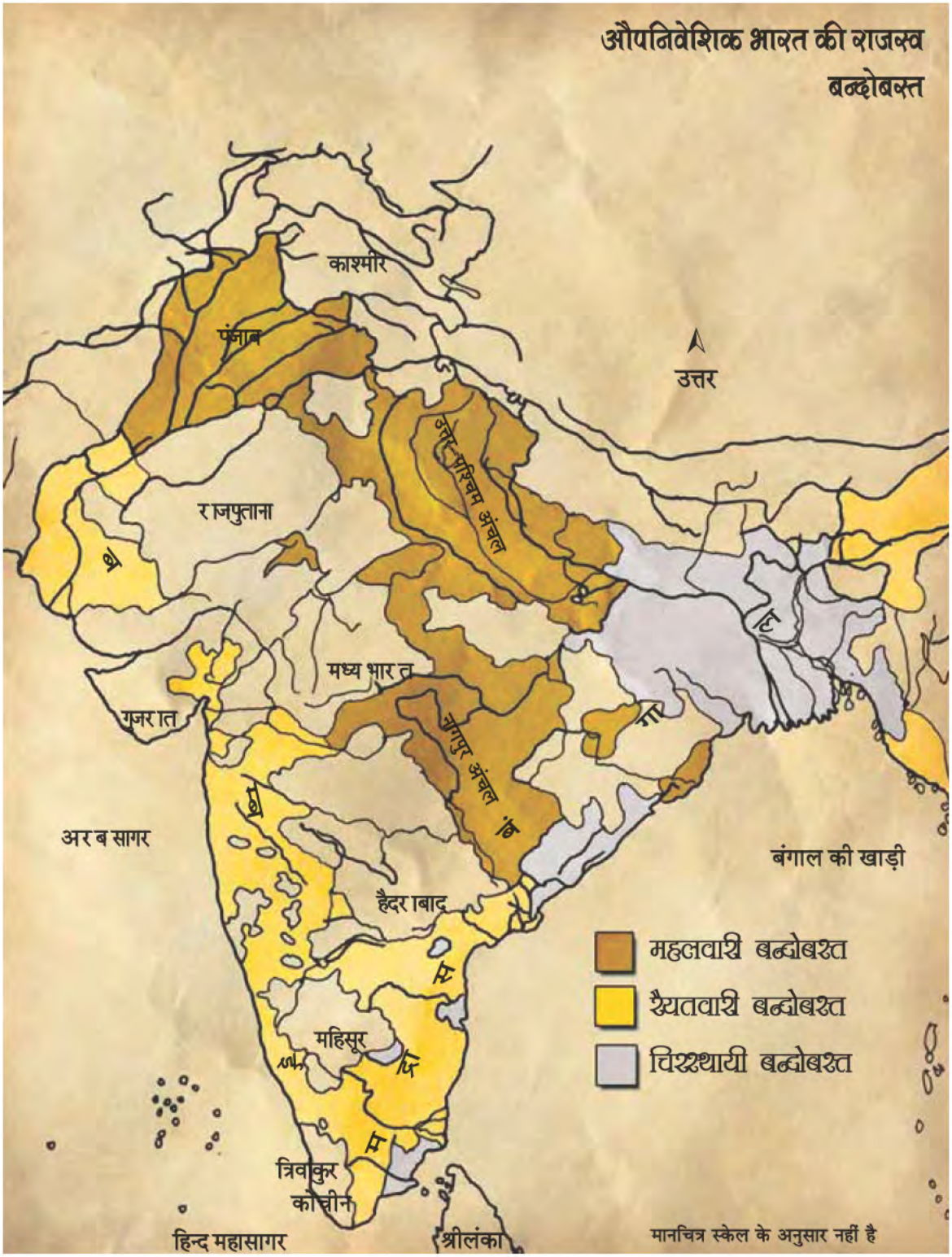
औपनिवेशिक भारत की राजस्व बन्दोबस्त
काश्मीर
पंजाब
उत्तर
उत्तर पश्चिम अंचल
राजपुताना
मध्य भारत
गुजरात
नागपुर अंचल
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
हैदराबाद
महलवारी बन्दोबस्त
रैयतवारी बन्दोबस्त
चिरस्थायी बन्दोबस्त
महिसूर
त्रिवांकुर
कोचीन
हिन्द महासागर
श्रीलंका
मानचित्र स्केल के अनुसार नहीं है

सोचकर देखों

ढूंढकर देखों

1। सटीक शब्द चुनकर रिक्त स्थानों की पूर्ति करों :

क) चिरस्थायी व्यवस्था चालू की थी — (हेस्टिंग्स / कार्नवालिस / डलहौसी)।

ख) महलवारी व्यवस्था चालू हुई थी — (बंगाल में / उत्तर भारत में / दक्षिण भारत में)।

ग) 'दादन' का अर्थ है — (अग्रिम अर्थ / मौसम / बेगार श्रम)।

घ) औपनिवेशिक भारत में पहले पटसन कारखाना चालू हुआ था — (रिषड़ा / कलकत्ता / बम्बई)।

ङ) देश की सम्पद देश से बाहर चले जाने को कहते हैं — (सम्पद का बहिर्गमन / अवशिल्पायन / वर्गादारी व्यवस्था)।

2। नीचे के कथन में से सही-गलत का चुनाव करें :

क) 1794 ई० में चिरस्थायी बन्दोबस्त चालू हुआ।

ख) नील विद्रोह मद्रास में हुआ था।

ग) दक्षिणात्य में कपास की खेती के साथ अमेरिका के गृहयुद्ध का विषय जुड़ा हुआ था।

घ) रेलपथ के माध्यम से देशीय माल से भारत के बाजार छा गये थे।

ङ) कम्पनी-शासन को ध्यान में रखकर टेलीग्राफ व्यवस्था बनायी गयी थी।

3। अति संक्षेप में उत्तर दो (30 - 40 शब्द में):

क) 'सूर्यास्त नियम' किसे कहते हैं?

ख) कृषि के वाणिज्यिकीकरण से क्या समझते हो?

ग) दक्षिणात्य हंगामा क्यों हुआ था?

घ) सम्पद का बहिर्गमन किसे कहते है?

ङ) अवशिल्पायतन से क्या समझते हो?

4। अपनी भाषा में लिखो (120-160 शब्द में) :

क) बंगाल कृषक समाज के ऊपर चिरस्थायी बन्दोबस्त का क्या प्रभाव पड़ा था?

ख) रैयतदारी और महलवारी बन्दोबस्त की तुलना आलोचनात्मक दृष्टि से करें।

ग) कृषि के वाणिज्यीकरण के साथ कृषक असन्तोष और विद्रोह का सीधा सम्पर्क क्या था? इस सन्दर्भ में 'दक्षिणात्य हंगामा' को आप किस रूप में लोगे?

घ) बंगाल के वस्त्र शिल्प के साथ कम्पनी की राजनीति का किस रूप में सम्बन्ध था? भारतीयों ने देशी बैंक और बीमा कम्पनी क्यों खोली?

ङ) भारत में कम्पनी शासन विस्तार के परिप्रेक्ष्य में टेलीग्राफ व्यवस्था के विकास का तुलनात्मक आलोचना प्रस्तुत करें।

5। सोचकर लिखो (200 शब्दों के बीच) :

क) जरा सोचो तुम रेल में चढ़ने जा रहे हो? रेल में चढ़ने से पहले और बाद के अनुभव को अपने मित्र को पत्र में लिख कर बतलायें।

ख) सोचों तुम 1870 दशक के दक्षिणात्य के एक निवासी हो। इस अंचल में कपास की खेती को केन्द्र में रखकर विरोध को अपनी डायरी में लिखो।

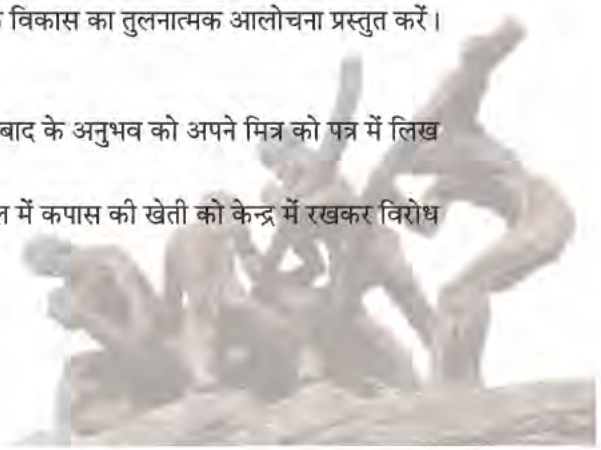

5 औपनिवेशिक शासन का प्रभाव : सहयोग और विद्रोह

ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के समय भारतीय समाज और शिक्षा के सुधार में भारतीय समाज के एक वर्ग के लोगों ने महत्त्वपूर्ण हिस्सा लिया। औपनिवेशिक शासन के सहयोग से बहुत से भारतीय सुधारकों ने समाज और शिक्षा में सुधार होने को लेकर प्रयास करने लगे। इनमें से अधिकांश ने ब्रिटिश कम्पनी के स्थायी-बन्दोबस्त और अंग्रेजी शिक्षा से लाभ प्राप्त किया इतना ही नहीं इनमें से अधिकांश लोगों ने ब्रिटिश कम्पनी की आर्थिक क्रिया-कलापों (विकास) में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। परिणामस्वरूप 19 वीं सदी के भारतीय समाज और शिक्षा में जो सुधार हो रहा था उसे करने वाले मुख्य रूप से ब्रिटिश उपनिवेश के आदर्शों और विचारों के समर्थक थे और उनका यह मानना था कि ब्रिटिश शासन के सहयोग से ही इस देश का सामाजिक और सांस्कृतिक विकास संभव हो सकेगा।

इन लोगों का यह भी मानना था कि अंग्रेजी भाषा सीखने से उनका और उनके बच्चों का भविष्य उज्ज्वल होगा और उन्हें नौकरी प्राप्त करने में सुविधा मिलेगी। दूसरी ओर ब्रिटिश कम्पनी को यह पता था कि शासन-संबंधी काम-काज के लिए हर समय सुदूर इंग्लैंड से कर्मचारी मंगवाने में काफी खर्च आयेगा। अत: क्यों न भारतीय निवासियों में से ही एक ऐसे वर्ग को पढ़ा-लिखाकर शिक्षित कर तैयार किया जाय जो व्यवहार और रूचि से अंग्रेजों के समर्थक हो। परन्तु अंग्रेजी भाषा और पाश्चात्य शिक्षा के प्रभाव के कारण सभी पढ़े-लिखे भारतीय ब्रिटिश उपनिवेश के प्रति समान रूप से आस्थावान नहीं थे। इसमें सामाजिक और धार्मिक सुधार को लेकर अक्सर वितर्क और मतभेद खड़ा हो जाता था। इसके साथ ही साथ भारतीय समाज के विभिन्न वर्गों में ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन को लेकर सीधे-सीधे विक्षोभ होने लगा और धीरे-धीरे ये विक्षोभ छोटे-मोटे विद्रोह का रूप अख्तियार करने लगा। यद्यपि पढ़े-लिखे लोग कभी कभी इन विद्रोहों की आलोचना भी कर रहे थे।

जो लोग आर्थिक रूप से थोड़े सम्पन्न थे, मुख्य रूप से उन्हें मध्यवर्ग माना जाता था। हिन्दू समाज के अन्तर्गत जो उच्चवर्ण के लोग थे उन्हें ब्रिटिश भारत में 'सज्जन' माना जाता था। यह जो नव शिक्षित मध्यवर्ग था, वह पाश्चात्य शिक्षा के संपर्क में आकर सामाजिक सुधारों के लिए प्रयास करने लगा। शुरु में कलकत्ता, बम्बई और मद्रास जैसे शहरों को केन्द्र बनाकर नव शिक्षितों ने सुधारमूलक कार्यों को बढ़ावा दिया।

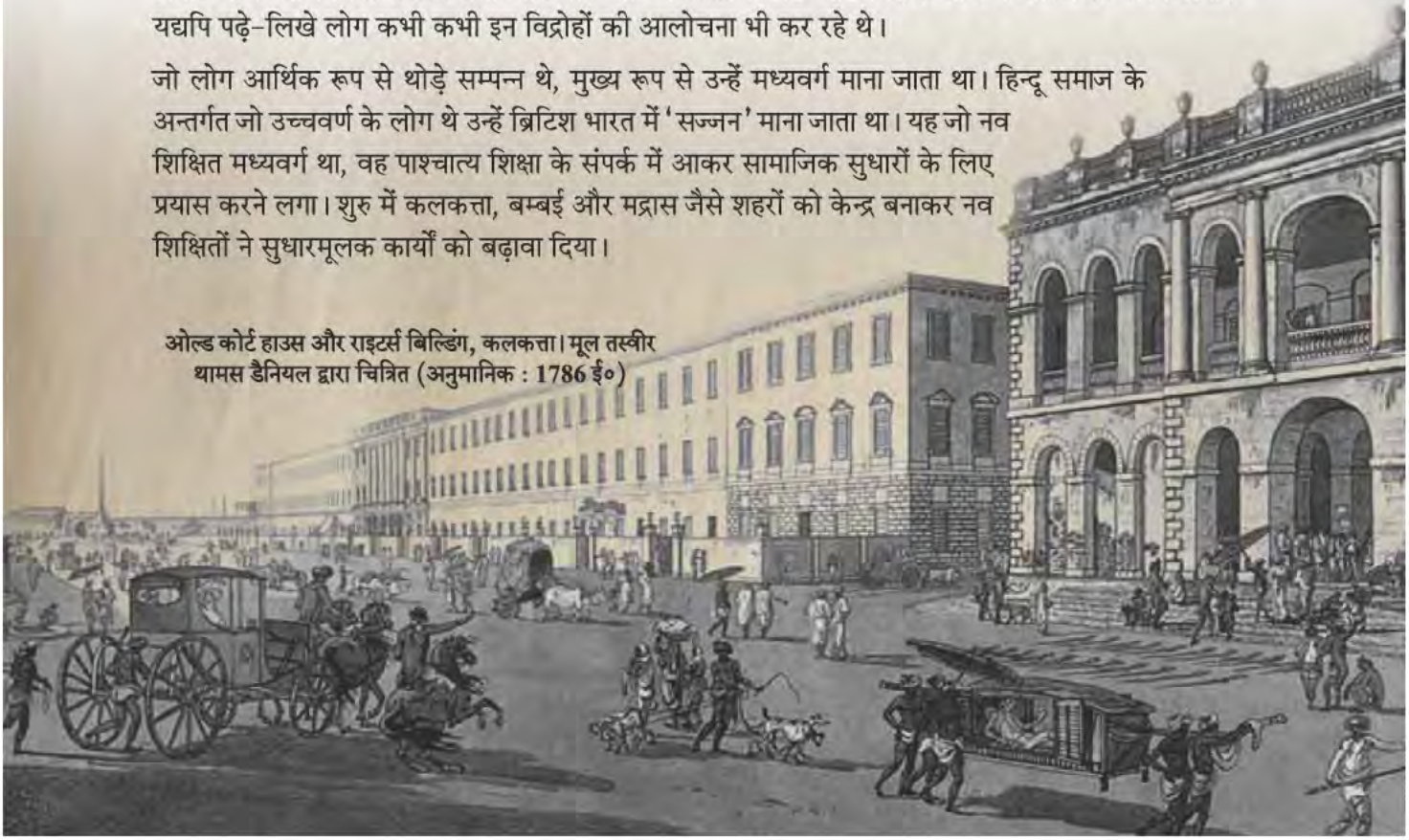

ओल्ड कोर्ट हाउस और राइटर्स बिल्डिंग, कलकत्ता। मूल तस्वीर थामस डैनियल द्वारा चित्रित (अनुमानिक : 1786 ई०)

बंगाल समाज में सुधार आंदोलन : सती प्रथा का बंद होना और विधवा-विवाह का प्रचलन

आरम्भ में कम्पनी के शासक भारतीय समाज के विषय में तटस्थ रहने की नीति अपनाते हैं। परन्तु 19 वीं सदी के प्रारम्भ में सामाजिक सुधार संबंधी कानून को लागू करने की कोशिश की जाने लगी। कुछ बर्बर और अमानवीय कुप्रथाओं को बंद करने के लिए कानून बना। औपनिवेशिक शासन द्वारा कानून जारी करने के बावजूद भी कुप्रथाएं खत्म नहीं हुई। जैसाकि, 1803 ई० में लार्ड वेलेजली ने समुद्र में कन्या शिशुओं को प्रवाहित करने वाली प्रथा को प्रतिबंधित कर दिया परन्तु इसके बाद भी यह प्रथा पूरी तरह से बन्द नहीं हुई।

19 वीं सदी में शिक्षित भारतीयों का एक बड़ा वर्ग सामाजिक सुधार के लिए प्रयास करने लगा। बंगाल के सुधारवादियों में सबसे प्रमुख थे राजा राममोहन राय। जिन्होंने तर्क पूर्ण ढंग से हिन्दू धर्म में सुधार लाने की बात कही। वे मूर्तिपूजा, पुरोहितवाद और बहुईश्वरवाद की निंदा करते हैं। उन्होंने सती प्रथा को बंद करवाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। उस समय 19 वीं सदी में कलकता और उसके आस-पास के इलाकों में सती प्रथा का प्रचलन था। राजा राममोहन राय ने सती-प्रथा को बंद करने के लिए जोरदार आंदोलन चलाया। अन्ततः 1829 ई० में लार्ड बेंटिक ने कानून बनाकर सती प्रथा को बंद कर दिया। यद्यपि कहीं-कहीं सती प्रथा को लेकर समाज के एक वर्ग में गर्व रह गया था। राजा राममोहन राय ने सम्पत्ति के मामले में स्त्रियों के अधिकार की स्वीकृति मिले, जैसे विषय पर कानून बनाने की बात कही।

कुछ बातें

समाचार पत्र और जनमत संग्रह

भारतीय जनमत संग्रह करने में समाचार पत्रों की भूमिका महत्त्वपूर्ण थी। शिक्षा और सामाजिक सुधार में समाचार पत्रों की भूमिका व्यापक है। 1780 ई० में अंग्रेज व्यापारी जेम्स आगस्टस हिकी ने सर्वप्रथम 'बंगाल गजट' नामक एक साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन किया। निर्भीक और निरपेक्ष पत्रिका निकालने के कारण आगस्टस हिकी को अंग्रेजी शासन का कोपभाजन बनना पड़ा। सन् 1818 में श्रीरामपुर मिशनरी के मार्शमैन के संपादन में प्रथम बांग्ला मासिक पत्रिका 'दिग्दर्शन' और साप्ताहिक पत्रिका 'समाचार दर्पण' प्रकाशित हुई। भारतीय समाज सुधारकों में से अधिकांश लोग विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं संपादन के कार्य से जुड़े थे।

सती प्रथा से जुड़ी एक तस्वीर। मुख्य रंगीन तस्वीर 1831 ई० के दौरान चित्रित।

कुछ बातें

सती प्रथा बंद करने के संबंध में राममोहन राय का विचार

प्रवर्तक — स्त्री को अपने पति के साथ क्यों मरना चाहिए सटीक कारण और इसी रूप में उसकी चिता के साथ लेटकर जलने का प्रमुख कारण है ..... जो स्त्रियाँ स्वभावत: कम बुद्धि, अस्थिर, विश्वास पात्र न होना, प्रेम हीना और धर्मज्ञान शून्य हैं। अत: साथ न मरने से उस पर तरह-तरह के दोष लगाते हैं, ... यही कारण है कि बचपन से ही स्त्री को यह उपदेश दिया जाता है कि पति के संग मरने से स्वर्ग की प्राप्ति होगी और तीन वंशों का भी उद्धार होगा। इतना ही नहीं यहाँ यह भी मान्यता है कि जो स्त्रियाँ इस महिमा को समझ लेती हैं, वे पति के मृत्यु के बाद उनकी चिता के साथ जलकर ऊपर कही गई बातों को चरितार्थ करती हैं। अगर किसी को चिता की प्रचंड ताप से भय लगता हो तब चिता बुझाकर उसे शव के साथ बांधकर जला दिया जाए।

निवर्तक — .... परन्तु स्त्री जाति के बारे में जो दोषारोपण की बात आपने कही, वह व्यवहारिक और तर्क सम्पन्न नहीं है। ऐसे में केवल संशय से किसी की हत्या करना लोक धर्म के विरुद्ध है, ...।

सर्वप्रथम बुद्धि के बारे में, स्त्री की बुद्धि की परीक्षा उस युग में की गई और आपने कह दिया कि वे अल्प बुद्धि की होती हैं? जैसा हम जानते है अगर किसी को पुस्तक शिक्षा और सांसारिक ज्ञान दिया जाए और उसके बाद भी वह उसे ग्रहण न करे, तब जाकर हम उसे बुद्धिहीन कह सकते हैं। परन्तु सच यह है कि आप लोग स्त्रियों को न तो पुस्तक की शिक्षा देते हैं और न ज्ञानोपदेश, ऐसे में आप का यह आरोप कि वे बुद्धिहीन है, कैसे तय करेंगे?

[उद्धृत अंश राममोहन राय के प्रवर्तक और निवर्तक द्वितीय संवाद रचना से अवतरित है। (मूल वर्तनी अपरिवर्तित)]

19 वीं सदी के मध्य में ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने विधवा स्त्रियों के पुनर्विवाह के लिए जोरदार आंदोलन किया। राममोहन राय की तरह विद्यासागर ने भी ब्रिटिश शासन के समक्ष विधवा-विवाह शुरु करने के लिए कानून बनाने की मांग की। परिमाणस्वरूप सन् 1856 में हिन्दू विधवा पुनर्विवाह कानून पास हुआ। परन्तु समाज के हर स्तर पर यह विधवा-विवाह कानून सफल नहीं हो पाया। यद्यपि विद्यासागर के व्यक्तिगत प्रयासों के कारण कुछ विधवा-विवाह का आयोजन संपन्न हुआ।

कुछ बातें

विधवा विवाह चालू करने के बारे में विद्यासागर

"विधवा विवाह प्रथा के प्रचलन में न आने के कारण बहुत अनिष्ट हो रहा है, जो इस समय बहुतों के हृदय को व्यथित कर रहा है। परिणामस्वरूप बहुत से लोग स्वयं अपनी कन्या, भगिनी आदि का पुनर्विवाह करने के लिए राजी हो रहे हैं। बहुत लोग यह करने का साहस नहीं जुटा पा रहे हैं, खैर, अब उस प्रथा का प्रचलन समाज में होना अति आवश्यक हो गया है। जिसे हमें स्वीकार करना होगा। .....

.....

....विधवा विवाह को पाप मानना किसी भी रूप में शास्त्र सम्मत अथवा विचारपूर्ण मानना सही नहीं है। अत: कलयुग में विधवा विवाह हर तरह से पुण्य का काम है, इस विषय में किसी को संशय अथवा आपत्ति नहीं होना चाहिए।"

[उद्धृत अंश ईश्वरचन्द्र विद्यासागर के 'विधवा विवाह' प्रकाशन (16 माघ संवत् 1911) से अवतरित है। (मूल वर्तनी अपरिवर्तित)]

बंगाल में शिक्षा-सुधार : डिरोजियो और तरुण बंगाल दल, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर और नारी शिक्षा

हेनरी लुई विवियन डिरोजियो

हेनरी लुई विवियन डिरोजियो कलकत्ता के हिन्दू कॉलेज में शिक्षक थे। उन्होंने छात्रों में स्वतंत्र चिन्तन धारा का भाव उत्पन्न किया। उनके छात्रों और अनुयायियों को तरूण बंगाल या यंग बंगाल दल कहा जाता है। तरूण बंगाल के सदस्यों ने उस समय के विभिन्न सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध अपना विरोध प्रकट किया। इसके अलावा वे समाज में प्रचलित जाति-पाति, बाल-विवाह, बहुविवाह आदि कुप्रथाओं के प्रति जागरुक थे। वे अंग्रेजी शिक्षा और ब्रिटिश शासन के प्रशासक भी थे। आगे चलकर इस दल के बहुत सदस्य अपने मूल विचारधारा और कर्मों से कटते गए।

19 वीं सदी के दूसरे भाग में पंडित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने बंगाल में शिक्षा और सामाजिक सुधार के क्षेत्र में अकेले महत्त्वपूर्ण प्रयास किया। जब वे संस्कृत कॉलेज में अध्यापन कर रहे थे तभी से शिक्षा-संबंधी सुधारों के प्रति सचेष्ट थे। इनके प्रयासों का ही नतीजा था कि संस्कृत कॉलेज में ब्राह्मण और वैद्य परिवारों के बच्चों के साथ कायस्थ के बच्चे भी पठन-पाठन कर सके। विद्यासागर का मानना था कि संस्कृत पढ़ने के साथ-साथ अंग्रेजी पढ़ना भी जरुरी है। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि मातृभाषा और अंग्रेजी के बीच एक जोड़ने वाला माध्यम होना चाहिए। सन् 1850 में उन्होंने कई छात्रोपयोगी पुस्तकें लिखीं। साथ ही साथ उन्होंने अंग्रेजी भाषा में लिखित आधुनिक गणित विषयक पुस्तक को पाठ्यक्रम में शामिल करवाया। जब वे सरकारी स्कूल निरीक्षक के पद पर थे, तब उन्होंने बंगाल के विभिन्न जिले में कई मॉडल स्कूल का निर्माण करवाया। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि सरकार की ओर से जो राशि शिक्षा के लिए खर्च की जा रही है वह पर्याप्त नहीं है और उससे सभी लोगों तक शिक्षा पहुँचाना संभव भी नहीं है। इसलिए वे औपनिवेशिक शासक के शिक्षा संबंधी परिकल्पना को भी अपनाने की बात कहते हैं।

औपनिवेशिक शिक्षा व्यवस्था पर व्यंग्य करती एक तस्वीर। मूल तस्वीर गगनेन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा चित्रित है।

विद्यासागर स्त्री-शिक्षा के विकास के लिए विशेष रूप से सजग थे। बेथून स्कूल में लड़कियाँ पढ़ने जाएं इस दिशा में वे व्यक्तिगत स्तर पर प्रयास कर रहे थे। स्कूल निरीक्षक के पद पर रहते समय उन्होंने अपने खर्च में कटौती कर जो राशि संचित किया था उसे उन्होंने लड़कियों के स्कूल-निर्माण में लगाया। परिणामस्वरूप बंगाल के विभिन्न जिले में निर्मित स्कूलों में लड़कियों ने पढ़ना शुरु किया।

भारत के अन्य भागों में सामाजिक और शिक्षा संबंधी सुधार

सन् 1840 के दशक से ही महाराष्ट्र और पश्चिमी भारत में विधवा-स्त्रियों के पुनर्विवाह के समर्थन में लोगों में जागृति की भावना उत्पन्न होने लगी। इसी कारण से अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त मध्यवर्ग के बीच विधवा-विवाह को लेकर एक सजगता दिखती है। सन् 1866 में विष्णु शास्त्री पंडित के नेतृत्व में विधवा-विवाह के समर्थन में एक सभा का गठन हुआ। आगे चलकर आत्माराम पांडुरंग और महादेव रानाडे के नेतृत्व में बम्बई में प्रार्थना समाज का गठन हुआ और इस समाज के माध्यम से तत्कालीन समाज में व्याप्त कुसंस्कारों को दूर करते हुए सामाजिक सुधार का प्रयत्न किया गया।

पंडिता रमाबाई

कुछ बातें

नारी शिक्षा और पंडिता रमाबाई

19वीं सदी में नारी शिक्षा के क्षेत्र में सुधार के लिए कुछ नारियों ने अपना योगदान दिया। इनमें पश्चिम भारत की पंडिता रमाबाई, मद्रास की शुभलक्ष्मी और बंगाल की बेगम रुकैय्या शेखावत हुसैन आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। 19वीं सदी के उतरार्द्ध में ब्रिटिश सरकार ने लड़कियों को शिक्षा से जोड़ने के लिए तरह-तरह के अनुदान और छात्रवृत्ति को चालू करने का प्रयास किया। परिणामस्वरूप स्त्री-शिक्षा में विकास होने लगा।

पंडिता रमाबाई का जन्म एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उन्होंने प्राचीन भारतीय शास्त्र का विशद् अध्ययन किया था। तमाम सामाजिक विरोधों के बावजूद उन्होंने एक शूद्र जाति के पुरुष से विवाह किया था। बाद में पति के देहान्त के बाद विधवा रमाबाई अपनी पुत्री के साथ इंग्लैण्ड जाकर डॉक्टरी की पढ़ाई करती हैं। उन्होंने विधवा स्त्रियों के लिए एक आश्रम बनवायी। यह और बात है कि कुछ परम्परावादी लोगों ने रमाबाई के इस कार्य की आलोचना की।

मद्रास प्रेसीडेंसी में वीरेशिलिंगम पांतुलु के नेतृत्व में विधवा विवाह आंदोलन प्रारंभ हुआ। पांतुलु पर बंगाल के ब्रह्म आंदोलन का विशेष प्रभाव था। उन्होंने मूर्तिपूजा, अस्पृश्यता, जातिभेद और बाल विवाह जैसी कुप्रथाओं का पुरजोर विरोध किया। इसके साथ ही साथ उन्होंने स्त्री-शिक्षा और विधवा विवाह जैसे विषयों के पक्ष में अपना विचार रखा। उन्होंने दक्षिण भारत में प्रार्थना समाज के समाज-सुधार आंदोलन को फैलाया। परिणामस्वरूप मद्रास के अधिकांश शिक्षित लोग इस आंदोलन के साथ जुड़ गए। बावजूद इसके बहुत कम संख्या में विधवा-विवाह को वास्तविक रूप में संपन्न किया जा सका।

बम्बई में लड़कियों का एक स्कूल। मूल तस्वीर विलियम सिम्पसन द्वारा चित्रित (आनुमानिक: 1867 ई०)

कुछ बातें
ज्योतिराव फूले

महाराष्ट्रीयन समाज के सुधार आन्दोलन में ज्योतिराव फूले और उनकी अर्द्धांगिनी सावित्री बाई का महत्त्वपूर्ण योगदान था। ब्राह्मणों के अत्याचार के विरुद्ध निम्नवर्गीय साधारण मनुष्यों की सामाजिक मर्यादा की प्रतिष्ठा के लिए उन्होंने संघर्ष किया। पूना शहर में सन् 1851 ई० में नारी-शिक्षा के प्रसार के लिए एक विद्यालय की स्थापना की। महाराष्ट्र में विधवा-विवाह को प्रचलित करने में उनकी भूमिका उल्लेखनीय हैं। ज्योतिराव फूले का सत्यशोधक समाज निम्नश्रेणी के मनुष्यों के अधिकार को प्रतिष्ठित करने के लिए सदैव संघर्ष करना। लेकिन ज्योतिराव फूले के प्रयास के बावजूद महाराष्ट्र में विधवा विवाह का प्रचलन नहीं हो सका।

देवेन्द्रनाथ ठाकुर

केशवचन्द्र सेन

धार्मिक सुधार : ब्राह्म आन्दोलन और हिन्दू-धर्म का पुनर्जीवन

1815 ई० में राममोहन राय ने कलकत्ता आत्मीय सभा की स्थापना की। मौलिक रूप से समाज सुधार ही इस प्रतिष्ठान का मुख्य लक्ष्य था। 1828 ई० में आत्मीय सभा ब्रह्म-समाज के रूप में स्थापित हो गया। राममोहन के बाद देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने ब्रह्म आन्दोलन को संगठित किया था। 1860 के दशक में केशवचन्द्र सेन एवं विजय कृष्ण गोस्वामी के प्रयास से कलकत्ता के शिक्षित-समाज की सीमा ब्रह्म आन्दोलन विभिन्न जनपदों (जिलाओं) तक जा पहुँचा था। विजय कृष्ण ने वैष्णव धर्म की लोकप्रिय ऐतिहासिक धारा एवं ब्रह्म अवधारण के बीच सामंजस्य स्थापित किया था। लेकिन स्वाभाविक रूप में ब्रह्म आन्दोलन उच्चवर्गों के बीच ही सीमित रहा। परिणामत: धर्म के बारे में ब्राह्म जनों का उदार दृष्टिकोण उग्र नव्य हिन्दू धर्म प्रचार का साथ नहीं निभा सका।

कुछ बातें
स्वामी दयानन्द सरस्वती और आर्य समाज

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने 1875 ई० में आर्य समाज की स्थापना की। दयानन्द की मान्यता थी कि सभी धर्म ग्रन्थों में वेद ही सर्वोपरि है। उनके मत से वेद ही सभी विज्ञानों का विज्ञान है। (अर्थात् सभी विज्ञानों का आदि स्त्रोत वेद में ही निहित है।) बाद के वर्षों में हिन्दू धर्म में मिश्रित हो गये विभिन्न प्रकार के आचारों एवं संस्कारों की दयानन्द ने समालोचना की। मूर्तिपूजा, पुरोहितवाद और बाल्य विवाह आदि विषयों की आलोचना करना दयानन्द का मुख्य ध्येय था। साथ ही वे विधवा विवाह और नारी शिक्षा के समर्थक थे। पंजाब तथा उत्तर पश्चिम भारत में आर्य समाज लोक प्रिय था। किन्तु दयानन्द की मृत्यु के बाद आर्य समाज आन्दोलन उग्र हिन्दुत्व के रूप में बदलता गया।

बंगाल में ब्रह्म नेता राजनारायण बसु और नवगोपाल मित्र के सुधार आन्दोलन में हिन्दू पुनरुत्थान की झलक देखी जाती है। राजनारायण बसु की जातीय गौरव सम्पादनी सभा और नव गोपाल मित्र की जातीय मेला ने इस क्षेत्र में विशेष भूमिका निभाया था। बाद में जातीय मेला हिन्दू मेला के नाम से विख्यात हुआ। हिन्दू धर्म की मर्यादा की पुन:प्रतिष्ठा स्वाधीनता एवं देशप्रेम के आदर्श द्वारा सभी को उज्जवलित करना हिन्दू मेला का उद्देश्य था।

हिन्दू पुनरुत्थानवादी आन्दोलन के साथ रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानन्द के नाम ओतप्रोत रूप में जुड़े थे। उन्नीसवीं सदी में नौकरी जीविता के कारण शिक्षित मनुष्यों में रामकृष्ण के प्रति एक विशेष आग्रह दीख पड़ा था। 1893 ई० में रामकृष्ण के शिष्य स्वामी विवेकानन्द शिकागो धर्म सम्मेलन में हिस्सा लिया। उन्होंने वहाँ सहज ढंग एवं सरल भाषा में भारतीय दर्शन एवं हिन्दू धर्म का श्रेष्ठत्व प्रमाणित करने की चेष्टा की। विवेकानन्द नारी-स्वातंत्र्य के पक्षपाती थे।

सुधार आन्दोलनों के स्वरूप एवं उनकी सीमायें

उन्नीसवी सदी के ये सभी सामाजिक सुधार प्रारम्भ से ही संकीर्ण सीमाओं में अटके पड़े थे। औपनिवेशिक शासन के कारण आर्थिक एवं शिक्षा संबंधी सुयोग तथा सुविधा मूल रूप से उच्चवर्ग के सम्पन्न लोगों को ही मिले।

इन्हीं सम्पन्न (भद्रजनों) लोगों ने ब्रह्म आन्दोलन जैसे सुधार आन्दलनों का समर्थन किया था। कलकत्ता से बाहर विभिन्न जनपदों (जिलों) तक पहुँचने के बावजूद समाज के साधारण जन के साथ ब्रह्म आन्दोलन का विशेष सम्बन्ध नहीं था। इसके अलावा सुधारकों में भी समाज के सभी स्तरों के लोगों के लिए विशेष चिन्ता नहीं थी। स्वाभावानुसार ये सुधारक अंग्रेजी और संस्कृतनिष्ठ बांग्ला भाषा का प्रयोग करते थे। पश्चिम और दक्षिण भारत में भी प्रार्थना समाज का आधार शिक्षित सम्पन्न लोगों में ही अटका था। साथ ही इन सुधार आन्दोलनों में जातिभेद के प्रति भी सबल विद्रोह स्वर नहीं था। क्योंकि सुधारकों में प्राय: अधिकांश ही सवर्णों (उच्चजाति) के प्रतिनिधि थे।

विजयकृष्ण गोस्वामी

उन्नीसवीं सदी के सुधार आन्दोलनों से जुड़े अनेक लोगों का विश्वास था कि धर्म-शास्त्र में बनायी गयी सभी बातें आचरण अनुकरण योग्य हैं। वे सोचते थे कि कुछ स्वार्थी लोग अपने स्वार्थ के लिए धर्म-शास्त्रों की अपव्याख्या (गलत-वर्णन) करते हैं। देश के बहुत सारे लोगों ने इन सब शास्त्रों को पढ़ा ही नहीं। फलस्वरूप शास्त्र के नाम पर फैलायी गयी कुप्रथाओं के वे सहज ही शिकार होते हैं। ऐसा ही समझ कर समाज सुधारकों ने विभिन्न शास्त्रों की सठीक व्याख्या करने का प्रयास किया। सतीदाह को बन्द करने तथा विधवा-विवाह को प्रारम्भ करने के पक्ष में सभी आन्दोलन प्रारम्भ से ही शास्त्रों पर ही निर्भर थे। राममोहन राय ने विभिन्न शास्त्रों से उदाहरण देकर सतीदाह के विरुद्ध आवाज उठायी थी। विद्यासागर विधवा विवाह को शास्त्र सम्मत बताते हुए इसका जोरदार समर्थन किया था। विभिन्न प्रकार की चल रही प्रथाओं की निष्ठुरता और अमानवीयता को छोड़कर ये प्रथायें शास्त्र सम्मत हैं या नहीं इसी तथ्य पर ज्यादा जोर दिया गया था।

रामकृष्ण परमहंस

स्वामी विवेकानन्द

मुस्लिम समाज में सुधार की प्रक्रिया : अलीगढ़ का आन्दोलन

उन्नीसवीं सदी के द्वितीयार्द्ध काल में मुसलमान समाज में भी विभिन्न सुधार प्रक्रिया प्रारम्भ हुई थी। 1863 ई० में कलकत्ता में मोहम्मडन लिटरेरी सोसायटी की स्थापना इसका प्रमाण है। मुसलमान सुधारकों में सर सैयद अहमद खान का नाम सबसे प्रथम है। नौकरी के कारण सर सैयद अहमद औपनिवेशिक प्रशासन के संग जुड़े हुए थे। अत: मुसलमान समाज के लिये भी अंग्रेजी शिक्षा की आवश्यकता को वे व्यवहारिक मानते थे। 1864 ई० में उन्होंने मुसलमानों में विज्ञान की परिचर्चा को प्रिय बनाने का प्रयास किया। इसके साथ ही विज्ञान की विभिन्न पुस्तकों का उर्दू में अनुवाद भी किया गया। आधुनिक तर्कवाद और वैज्ञानिक दृष्टि से 'कुरान' की व्याख्या करने का प्रयास सैयद अहमद ने किया था। पुरानी प्रथाओं और तर्कहीन अन्ध विश्वासों के विरुद्ध उन्होंने प्रश्न उठाया था। 1875 ई० में सर सैयद ने अलीगढ़ एंग्लों ओरियेण्टल कॉलेज की स्थापना की। मुसलमान छात्रों एवं शिक्षकों के साथ-साथ कुछ हिन्दू छात्र और शिक्षक भी इस कॉलेज में पढ़ाई पर परिचर्चा करते थे।

स्वयं करो

तुम्हारे स्थानीय अंचल में साक्षर ता का प्रतिशत कितना है? क्या-क्या उपाय अपनाने पर अंचल में साक्षर ता का प्रतिशत बढ़ेगा, उसे लेकर स्कूल में एक पोस्टर प्रर्दशनी का आयोजन करो।

लेकिन सर सैयद के सुधारों को मुसलमान समाज के सभी लोगों ने समर्थन नहीं किया। साथ ही सर सैयद के सुधार की प्रक्रियायें भी सीमित स्वभाव की थी। गरीब मुसलमानों की बड़ी संख्या पर इन सुधारों का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। मुख्य रूप से उच्च एवं मध्य वर्ग के मुसलमानों ने ही इन सुधारों को ग्रहण किया था।

किसानों और उपजाति का विद्रोह

अठारहवीं सदी के अन्त में और उन्नीसवीं सदी के प्रारम्भ में ब्रिटिश कम्पनी प्रशासन ने भूमि-राजस्व की प्राप्ति के लिये विभिन्न परिवर्तन किये थे। उन्हीं परिवर्तनों का कृषक और उपजाति समाज पर सीधा-सीधा प्रभाव पड़ा था। इसके परिणाम स्वरूप अठारहवी सदी के अन्त से ही भारतीय उपमहादेश के विभिन्न भागों में किसान और उपजाति के लोगों ने औपनिवेशिक प्रशासन के विरुद्ध विरोध किया।

साथ ही किसान और उपजाति सम्प्रदाय के लोग एकजुट होकर स्थानीय जमींदारों और महाजनों के विरुद्ध भी आन्दोलनों में शामिल हुए। यद्यपि ब्रिटिश प्रशासन के तथा अनेक भद्रजनों की दृष्टि में ये आन्दोलन और विद्रोह केवल कानून सम्बन्धी समस्यायें थे। उपजाति विद्रोहों को 'असभ्य आदिम लोगों का विद्रोह' कहकर छोटा साबित किया जाता था। लेकिन वास्तव में ये सब विद्रोह औपनिवेशिक शासन विरोधी आन्दोलन के उदाहरण हैं।

प्रतिवादी भारतीय।

मूल छवि- चित्तो प्रसाद भट्टाचार्य द्वारा अंकित।

सन्थाल विद्रोह (हूल) (1855-56 ई०)

औपनिवेशिक शासक, जमींदार, इजारेदार और महाजनों के शोषण के विरुद्ध किसानों के साथ-साथ विभिन्न उपजातियों ने भी विद्रोह किया था। 1855-56 ई० में संगठित सन्थाल-विद्रोह इनमें सबसे प्रमुख था। सन्थालों के इलाकों में बाहरी महाजनों, जमींदारों (जिन्हे 'दिकू' के नाम से पुकारा जाता था) ने अपना प्रभाव जमा लिया था। गरीब सन्थाल इन दिकुओं के अत्याचार के शिकार बने। यूरोपीय कर्मचारी इन सन्थालों को जबर्दस्ती रेलपथ बनाने के काम में लगाते थे। और इनपर अत्याचार करते थे। सबसे बड़ी बात थी कि सन्थालों की अपनी संस्कृति विपन्न हो रही थी।

इसी भयावह जीवन और शोषण से मुक्ति पाने के लिए सन्थालों ने विद्रोह की घोषणा की। प्रारम्भ में सन्थालों ने महाजनों, जमींदारों तथा व्यवसायियों के घरों मकानों पर आक्रमण किया था। बाद में सन्थालों ने अपने विद्रोह (हूल) को संगठित किया। इसमें उल्लेखनीय भूमिका सिधू, कानू, चाँद और भैरव की थी।

भागलपुर से राजमहल क्षेत्र में यह विद्रोह तेजी से फैल गया था। स्थिति को नियन्त्रण में लाने के लिये ब्रिटिश प्रशासन ने सन्थालों पर आक्रमण किया। सिधू और कानू सहित हजारों-हजारों सन्थालों की हत्या कर दी गई। लेकिन यह विद्रोह पूर्ण रूप से असफल नहीं हुआ था। ब्रिटिश-प्रशासन में उपजातियों के स्वार्थ और उसकी सुरक्षा के प्रति कुछ चेतना अवश्य आई थी। सन्थालों के लिए सन्थाल परगना का निर्माण किया गया था।

कुछ बातें

सन्थाल विद्रोह और पैट्रियाट

सन्थाल विद्रोह की खबर कलकत्ता में पहुँचने पर शिक्षित हिन्दू बंगालियों में से अनेकों (बहुतों) ने इस विद्रोह का विरोध किया। सन्थालों के विरुद्ध ब्रिटिश प्रशासन द्वारा किये गये दमन और पीड़ा दायक व्यवहारों का भी विरोध इन्होंने नहीं किया। इसके विरल अपवाद थे हिन्दू पैट्रियाट समाचार पत्र के संपादक हरिशचन्द्र मुखोपाध्याय। हरिशचन्द्र समझ रहे थे कि अर्थनीतिक शोषण ने ही सन्थालों का विद्रोह करने को बाध्य किया था। हरिशचन्द्र ने अपनी पत्रिका में लिखा था, शान्त और सद् सन्थाल जाति के विद्रोह करने के कई कारण है। सुना गया है कि सन्थालों को जबर्दस्ती बेगारी करने को बाध्य किया गया। इसके अलावा उन्हें अतिरिक्त (ज्यादा) कर देने को मजबूर किया गया है। हरिशचन्द्र ने कहा - जिन्होंने शान्ति प्रिय सन्थालों पर अत्याचार करके उन्हें विद्रोह करने के लिए बाध्य किया, सजा उन्हें ही मिलनी उचित है। सन्थालों के लिये सजा नहीं। सन्थाल केवल अपने जंगल और उपघाटी में स्वाधीन रूप से जीवन यापन का अधिकार चाहते हैं।

कुछ बातें

मालावार का मोपाला विद्रोह

दक्षिण भारत के मालावार अंचल में किसानों ने औपनिवेशिक प्रशासन के विरोध में आन्दोलन खड़े किए थे। इनमें सबसे प्रमुख मोपाला विद्रोह है। मोपालियों में अनेक कृषि-श्रमिक, छोटे व्यवसायी और मछली पकड़ने वाले थे। ब्रिटिशों ने मालावार को दखल करके वहाँ के गरीब किसानों पर राजस्व का भार और अनेक गैरकानूनी कर जबर्दस्ती लगा दिया। साथ ही जमीन पर किसानों के अधिकार को भी अस्वीकार कर दिया था। इन सब के परिणामस्वरूप में मालावार अंचल में एक के बाद एक विद्रोह हुए थे। विद्रोहों के दमन के लिये औपनिवेशिक प्रशासन ने सशस्त्र वाहिनी का प्रयोग किया था।

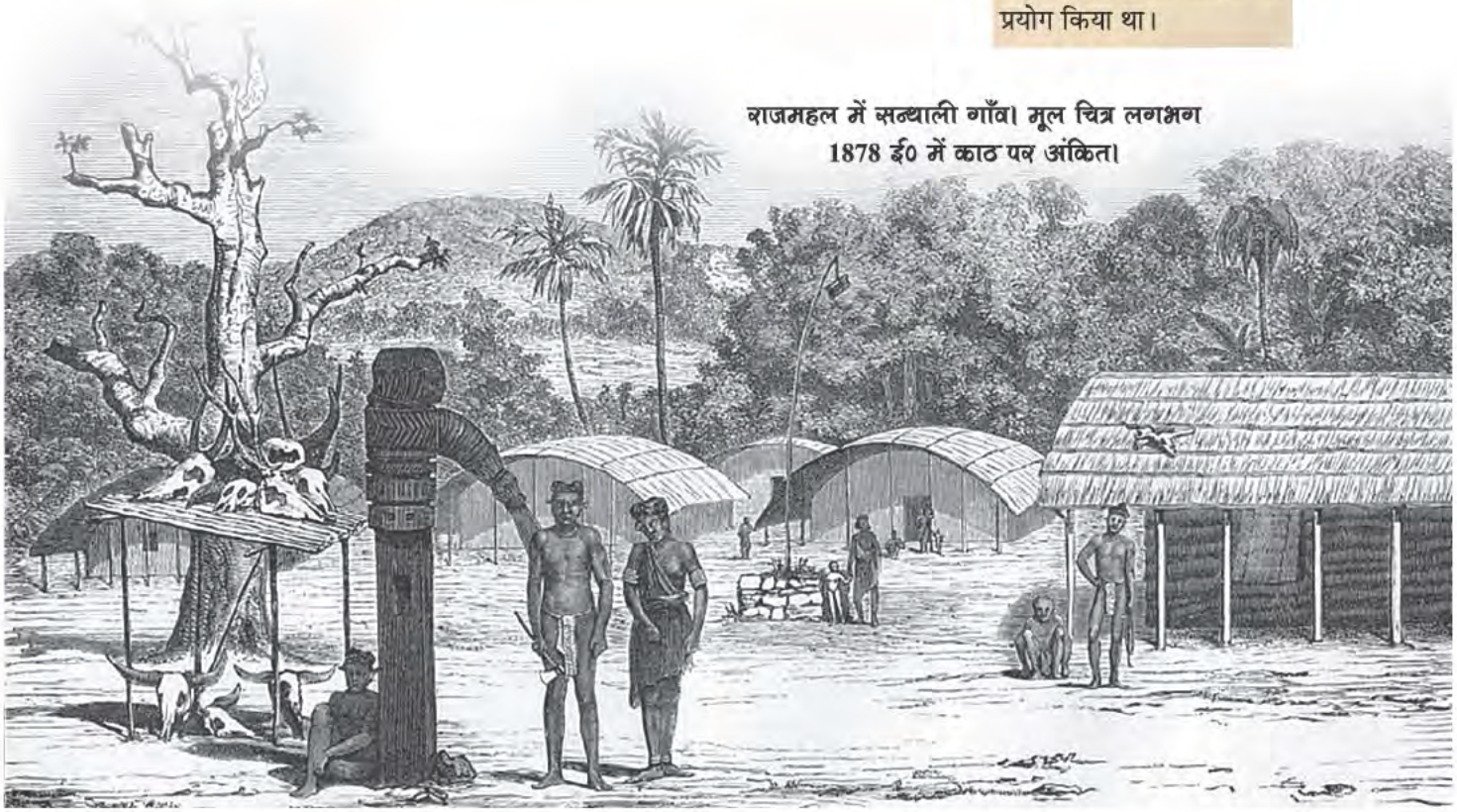

राजमहल में सन्थाली गाँव। मूल चित्र लगभग 1878 ई० में काठ पर अंकित।

वहावी आन्दोलन और बारासात विद्रोह

वहावी आन्दोलन अरब में अब्दुल वहाव के नेतृत्व में प्रारम्भ होता है। भारत वर्ष में वहावी आन्दोलन का परिचालन रायबरैली अंचल के सैयद अहमद नामक एक व्यक्ति ने किया। उन्होंने वहावियों को ब्रिटिश-विरोधी आन्दोलन के लिए एकजुट किया। बारासात अंचल के मीर निसार अली (तितुमीर) वहावी मतादर्श से अनुप्राणित हुए। तितुमीर के नेतृत्व में नारकेलबेड़िया अंचल में वहावी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। नदिया, फरीदपुर आदि अंचलों में भी वहावी आन्दोलन फैल गया।

तितुमीर का आन्दोलन स्थानीय जमींदार, नीलकर एवं ब्रिटिश प्रशासन के विरुद्ध संगठित हुआ। विद्रोह प्रारम्भ होने के कुछ दिनों में ही तितुमीर ने घोषणा की कि कम्पनी सरकार शासन का अन्त आ गया है। बारासात अंचल में बाँस का एक किला बनाकर तितुमीर ने खुद को बादशाह की उपाधि दी। नारकेलबेड़िया अथवा बारासात विद्रोह को दमन करने के लिए ब्रिटिश वाहिनी ने कमान दागकर बाँस का किला ध्वस्त कर दिया। (1831 ई०)

नील विद्रोह

1859-60 ई० में बंगाल में नील की खेती और नीलकर लेनदारों के अत्याचारों को केन्द्र करके नील विद्रोह संगठित हुआ था। इस विद्रोह के नेता विष्णुचरण विश्वास और दिगम्बर विश्वास थे। नील विद्रोह के पक्ष में बंगाल के शिक्षित लोगों में से विभिन्न कारणों से बहुतों ने सहानुभूति दिखायी थी। दीनबन्धु मित्र ने 1860 ई० में नीलदर्पण नाटक में नीलकर लेनदारों के अत्याचारों को दिखाया था। क्रिश्चियन मिशनरी रेमरेण्ड जेम्स लांग नील विद्रोह के प्रति सहानुभूति रखते थे। हिन्दू पैट्रियाट और सोम प्रकाश पत्रिक नील खेतीहरों के समर्थन में थे। इन सब के कारण नीलकर लेनदारों पर दबाव पड़ा था। 1863 ई० में नील विद्रोह समाप्त हो गया। साथ ही बंगाल में नील की खेती का भी प्राय अंत हो गया था।

कुछ बातें

नील विद्रोह और हिन्दू पैट्रियाट

बंगाल के नील विद्रोह के प्रति हिन्दू पैट्रियाट संवादपत्र और इसके संपादक हरिशचन्द्र मुखोपाध्याय ने सहानुभूतिपूर्ण भूमिका अदा की थी। हरिशचन्द्र ने नीलकर लेनदारों के विरुद्ध और किसानों के समर्थन में लिखना प्रारम्भ किया। विभिन्न अंचलों से समाचार संग्रह करने के लिए उन्होंने शिशिरकुमार घोष एवं मनमोहन घोष को नियुक्त किया। 1858 ई० में हरिशचन्द्र ने लिखा, बंगाल में नील की खेती एक संगठित जुआ और निपीड़न व्यवस्था मात्र है। हरिशचन्द्र ने आगे भी लिखा- नील खेती में किसानों को लाभ की तुलना में हानि अधिक है। जिस किसान ने एक बार भी नील की खेती की उसके पास जीवन पर्यन्त मुक्ति पाने का कोई मार्ग नहीं। नीलकर किसी किसान को भी उचित मूल्य नहीं देता। वस्तुत: हरिशचन्द्र के प्रयास से ही नील विद्रोह का समाचार बंगाल के शिक्षित लोगों के बीच पहुँच सका था।

कुछ बातें

फरासी आन्दोलन

पूर्व बंगाल के फरीदपुर अंचल में हाजी शरीयतउल्ला ने गरीब किसानों को लेकर फरासी आन्दोलन प्रारम्भ किया था। फरासी मतादर्श के प्रचार के फलस्वरूप स्थानीय जमींदारों में भय का प्रसार हुआ था। बारासात विद्रोह के समान ही फरासी आन्दोलन में भी जमींदारों, नीलकर और औपनिवेशिक प्रशासन की खिलाफत की गयी थी। फराजी आन्दोलन उन्नीसवीं सदी के अन्त तक चला था।

मुण्डा उलगुलान

उपजातिय कृषक विद्रोहों में अन्यतम बड़ा विद्रोह बिरसा मुण्डा के नेतृत्व में होने वाला ऊलगुलान अथवा मुण्डा विद्रोह (1899-1900 ई0) था। मुण्डाओं की जमीन धीरे-धीरे बाहरी लोगों अथवा दिकूओं के हाथों में चली जाती है। साथ ही महाजन जमींदार, ब्रिटिश मिशनरी एवं औपनिवेशिक सरकार के प्रति मुण्डा कृषक क्षुब्ध हो गये थे। मुण्डा लोगों का विश्वास था कि उनका नेता बिरसा विभिन्न प्रकार के अलौकिक क्षमताओं से सम्पन्न है। बिरसा का आन्दोलन केवल दिकूओं को भगाने तक ही सीमित नहीं था। ब्रिटिश शासन का अन्त करके बिरसा के शासन की प्रतिष्ठा करना मुण्डा उलगुलान का एकमात्र लक्ष्य था। किन्तु औपनिवेशिक प्रशासन के दमन-पीड़न के फलस्वरूप मुण्डा उलगुलान परास्त हो गया था।

सन् 1857 ई० का विद्रोह

अठारहवीं सदी के मध्य तक ब्रिटिश कम्पनी ने किस तरह सेनावाहिनी को तैयार किया था इसकी चर्चा पहले ही की जा चूंकि है (तृतीय अध्याय की पृष्ठ संख्या 41 द्रष्टव्य है)। उसी समय से सेना वाहिनी में अनेक प्रकार के जाति परिचय को ब्रिटिश जानबुझ कर उभार देते थे। लेकिन 1820 के दशक से सेनावाहिनी में क्रमश: अनेक प्रकार के सुधार होते रहे। इसके परिणामस्वरूप जातिगत सुविधा सुयोग के बदले पूरी सेनावाहिनी को एक ही रंग में ढालने के प्रयास होते रहे। फलस्वरूप उसी समय से कम्पनी के निर्णायकों के विरूप सेनावाहिनी में विरोध शुरु हो गया।

इसी असन्तोष के आधार पर 1857 ई० में विद्रोह का आभास पाया गया था। इसी वर्ष के प्रारम्भ में कलकत्ता के दमदम सेना-छावनी के सिपाहियों के बीच बन्दूक की कारतूस को लेकर एक अफवाह फैल गयी थी। कहा जाता था कि नयी एनफिल्ड रायफल के कारतूसों में गाय अथवा सूअर की चर्बी मिली हुई है। इन कारतूसों को रायफल में भरने से पहले दाँत से काटना पड़ता था। इसके फलस्वरूप सिपाहियों में एक विश्वास बन गया कि कम्पनी षड़यन्त्र करके उनके जाति एवं धर्म को नष्ट करने की चेष्टा कर रही है। यद्यपि यह अफवाह थोड़ी ठीक भी थी। शीघ्र ही पूरे देश की सेना छावनियों में यह अफवाह फैल गयी। इसके साथ ही सतर्क होकर ब्रिटिश कम्पनी ने इस कारतूस को बनाना बन्द कर दिया। सैनिकों को अनेक प्रकार के सुयोग देकर कम्पनी-शासन के प्रति आस्था लौटा लाने की चेष्टा की गयी।

मेरठ का सिपाही विद्रोह : मूल छवि इलेस्ट्रेटेड लण्दन न्यूज पत्रिका में प्रकाशित (1857 ई०)

सिपाहियों का विश्वास भंग हो गया था इसका प्रमाण बहुत शीघ्र ही पाया गया। 1857 ई० मार्च माह के अन्त में बैठकर की सैनिक छावनी में सिपाही मंगल पाण्डे ने एक-एक यूरोपीय सेना अधिकारी को गोली मार दी। मंगल के सहकर्मियों ने अपने अधिकारियों की आज्ञा पाकर भी मंगल को गिरफ्तार नहीं किया। शीघ्रता से उन सभी को गिरफ्तार कर फाँसी का इन्तजाम कर दिया गया। किन्तु इसके बाद देश की विभिन्न सैनिक छावनियों में सिपाहियों का असन्तोष उभरकर सामने आता रहा। अम्बाला, लखनऊ, मेरठ आदि अंचल से गोलमाल की खबर मिलती गयी। मई माह के मध्य में मेरठ की सेना ने विद्रोह की घोषणा कर दी। कम्पनी के विरोध में सिपाही विद्रोह प्रारम्भ हो गया।

कुछ बातें

गोरे आये

सन् 1857 ई० 10 मई। संध्या शेष होने को थी। उत्तर प्रदेश मेरठ की सैनिक छावनी के निकट बाजार में बैठकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सिपाहियों ने स्थानीय मनुष्यों के साथ विचार-विमर्श किया था। अगले दिन कर्नल कारमाईकेल स्मिथ ने 85 सिपाहियों को जेल में बन्द कर दिया था। साधारण अपराधियों की तरह उन्हें भी सॉकल से बाँधकर रखा गया। उन सबका एकमात्र अपराध यह था कि उन्होंने एनफिल्ड रायफल में कारतूस व्यवहार करना नहीं चाहा था। इन्हीं बातों में वे सिपाही से व्यस्त थे। इसी समय कम्पनी के सैनिक छावनी के श्वेतांग सैनिक परेड करते हुए सन्धा की प्रार्थना करने चर्च जा रहे थे। कई लोग बताते हैं कि उन्हें देखकर शायद सेना के कैण्टीन का एक कम उम्र के लड़के ने बाजार की ओर ''गोरे आये, गोरे आये'' कहते हुए हाफते हुए दौड़ता हुआ आकर एक गलत खबर दिया था। गलत खबर यह कि ये विदेशी सिपाही देसी सिपाहियों को बन्दी बनाने आ रहे थे। उत्तेजित सिपाही सैनिक छावनी की ओर दौड़ पड़े। सैनिक छावनी के अस्त्रागार को कब्जे में लिया। उनके साथ स्थानीय लोग मिल गये। ऐसे लोग भी सहायता में आ गये जिनका उद्देश्य लूटपाट करना था। एक-एक कर गोरे सैनिकों की हत्या कर दी गयी। मेरठ में सिपाही विद्रोह शुरु हो गया।

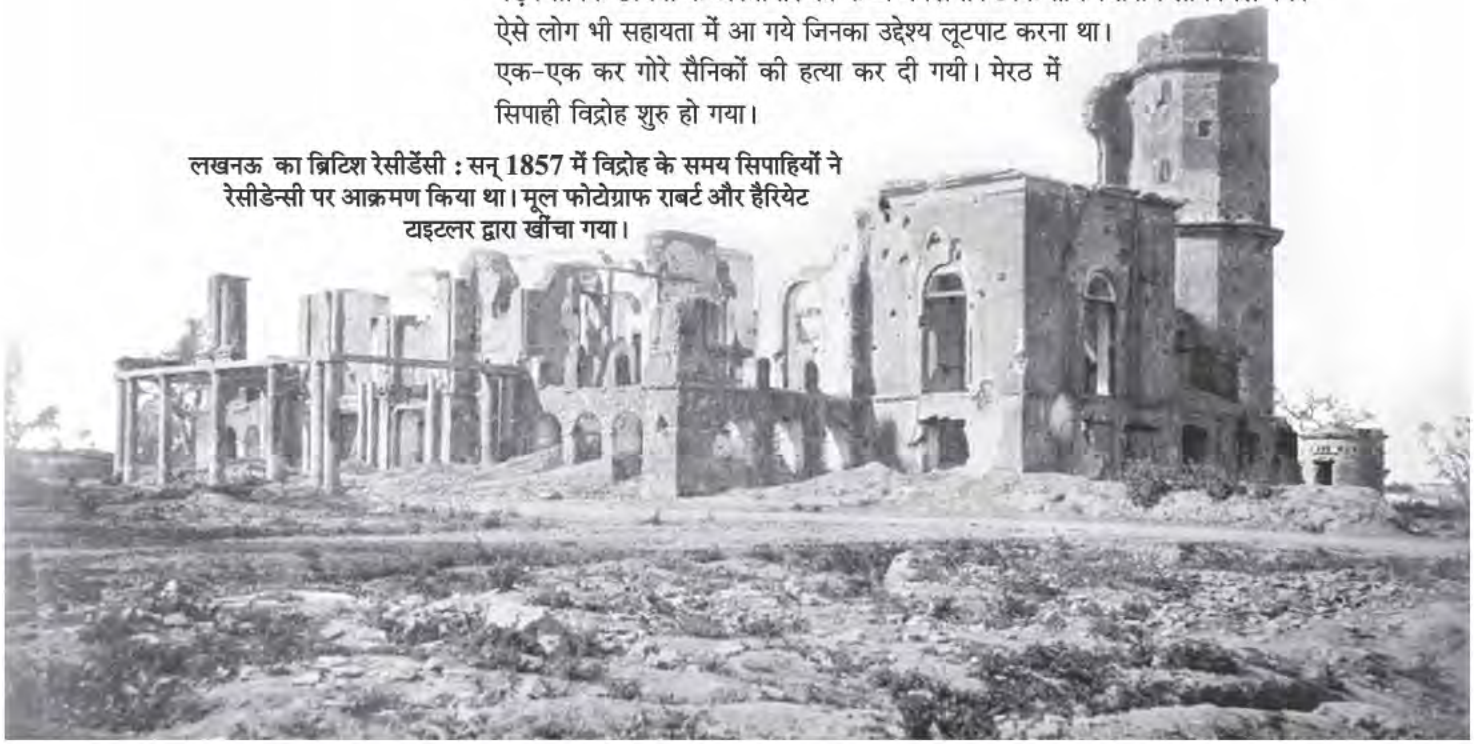

लखनऊ का ब्रिटिश रेसीडेंसी : सन् 1857 में विद्रोह के समय सिपाहियों ने रेसीडेन्सी पर आक्रमण किया था। मूल फोटोग्राफ राबर्ट और हैरियेट टाइटलर द्वारा खींचा गया।

मेरठ के सिपाहियों ने पहले अपने बन्दी सहकर्मियों को मुक्त किया। इसके बाद यूरोपीय सेना के अधिकारियों की हत्या करके एक साथ सभी दिल्ली की ओर रवाना हो गये। दिल्ली पहुँचकर सिपाहियों ने मुगल सम्राट बहादुर शाह जफर को हिन्दुस्तान का सम्राट घोषित किया। धीरे-धीरे उत्तर पश्चिम प्रदेश एवं अयोध्या की विभिन्न सैनिक छावनियों में विद्रोह फैलता गया। बहुत सी जगहों पर विद्रोही सिपाहियों के साथ कुछ स्थानीय अभिजात एवं सामान्य जन भी मिल गये। फलस्वरूप शीघ्र ही सिपाही विद्रोह ने आम विद्रोह का रूप धारण कर लिया।

फिर भी ऐसा समझने का कोई कारण नहीं कि ब्रिटिश कम्पनी की सभी सैनिक वाहिनियों ने इस विद्रोह में हिस्सा लिया था। मद्रास और बम्बई की सेनावाहिनी विद्रोह से दूर थी। दूसरी ओर पंजाबी और गोर्खा सिपाहियों ने व्यवहारिक रूप से इस विद्रोह को दमन करने की भूमिका निभायी थी। मुख्य रूप में बंगाल आर्मी के सिपाहियों ने ही विद्रोह की घोषणा की थी। वास्तव में बंगाल आर्मी में ही अधिक भारतीय सिपाही थे। अर्थात् कम्पनी के अधीन कुल सिपाहियों की संख्या की आधी संख्या बंगाल आर्मी में ही थी। इस तरह से सोचने पर (देखने पर) लगता है कि सिपाहियों की आधी संख्या या अर्द्धांश ने कम्पनी के विरुद्ध विद्रोह किया था।

बंगाल आर्मी के अधिकांश सिपाही स्वाभाविक रूप से अयोध्या वासी थे। अयोध्या के प्राय: प्रत्येक किसान परिवार से कोई न कोई सिपाही के रूप में वाहिनी में भर्ती हुआ था। कम्पनी की तरफ से जितने नियम/ सुधार लागू किये गये थे उन सभी के प्रति अयोध्यावासी सिपाहियों की पक्षपात करने की शिकायत थी। उनके वेतन में कमी होने और अन्य सुयोग-सुविधाओं को न पाने के कारण पक्षपात की शिकायत उठी थी। इसके अलावा 1856 ई० में कम्पनी ने घोषणा किया कि सिपाहियों को अपने-अपने क्षेत्र से बाहर जाकर भी काम करना पड़ेगा। लेकिन इसके लिए वे कोई भत्ता (अतिरिक्त वेतन) नहीं पायेंगे। कम्पनी का शासन भारतीय उपमहादेश में जितना

1857 ई० के विद्रोह में सिपाहियों के हाथों उच्च पदस्थधिकारी की मृत्यु। मूल चित्र 1857 ई० में चित्रित किया गया।

नाना साहब

बढ़ रहा था, उतना ही सैनिकों को विभिन्न क्षेत्रों में भेजने की आवश्यकता हो रही थी। यहाँ तक कि जो सिपाही जाने के लिए राजी नहीं होते उनके विरुद्ध दण्डमूलक पदक्षेप लिया जाता। नौकरी सम्बन्धी इन सब आक्रामक बातों के साथ एनफिल्ड के कारतूस सम्बन्धी अफवाह मिल गयी थी। परिमाणत: भारतीय सिपाहियों ने कम्पनी के बारे में सन्देह और भय की नींव पड़ गयी थी।

विद्रोही सिपाहियों के साथ असामरिक साधारण जनता कई क्षेत्रों में औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध एकजुट होती रही। हालांकि जिन क्षेत्रों के लोग ब्रिटिश शासन का सुफल भोग रहे थे वे इस विद्रोह के साथ नहीं जुड़े। बंगाल और पंजाब ऐसे दो अंचल थे, बंगाली शिक्षित समाज में बहुतों ने इस विद्रोह की निन्दा की थी।

कुछ बातें

सन् 1857 का विद्रोह : एक बंगाली सरकारी नौकर की दृष्टि में

'' ..... दूरस्थित एक सैन्य दल हल्ला कर उठा। खबरदार! भाई! खबरदार!! गोरे आये, गोरे आये।'' इसका अर्थ इस प्रकार है— 'अंग्रेज सैनिक हम लोगों पर आक्रमण करने आ रहे हैं, खूब सावधान (या सतर्क) हो जाओ।''

अब सभी के मुँह से ही यह सुना गया, ''गोरे आये, गोरे आये।'' तब और किसी को आगे-पीछे का ज्ञान नहीं रहा। सभी ने संकट ग्रस्त होकर मानों हाथ पैर खोकर हल्ला मचाना शुरु कर दिया। ''गोरे आये, गोरे आये।'' ''गोरे आये, गोरे आये'' की ध्वनि से मानो आकाश पाताल, पृथ्वी भर उठे। सैनिक गण क्या करें, कहाँ जाँय किस तरह टुकड़ियों में सजे कुछ भी निश्चित विचार नहीं देखा। सिर्फ देखने लगा, रणभेरी की आवाज सुनकर सैनिक गण दलों में बँटकर पैरेड मैदान की ओर दौड़ रहे हैं .....।

गोरा अर्थात् अंग्रेज सैनिक आ गया है, सुनकर मेरे मन में अतुलनीय आनन्द हुआ। ..... अंग्रेज आगमन की शुभ वार्ता सुनकर मन ही मन कितने ही सुखों की बात कल्पना-कामना करने लगा हूँ, ऐसे समय में अचानक खबर पाता हूँ, अंग्रेज नहीं आते हैं— गोरे ने आक्रमण नहीं किया; सिपाहियों का यह मात्र भय है। .....

.....

.... प्रारम्भिक 1857 वर्ष का पहला जून सोमवार बरेली के सिपाही विद्रोह का एक दिन बीत गया .... दूसरा दिन आ गया।''

[उपरोक्त उद्धृत अंश दुर्गादास बन्दोपाध्याय के विद्रोहे बांग्ला पुस्तक से लिया गया। (मूल रचना अपरिवर्तित)]

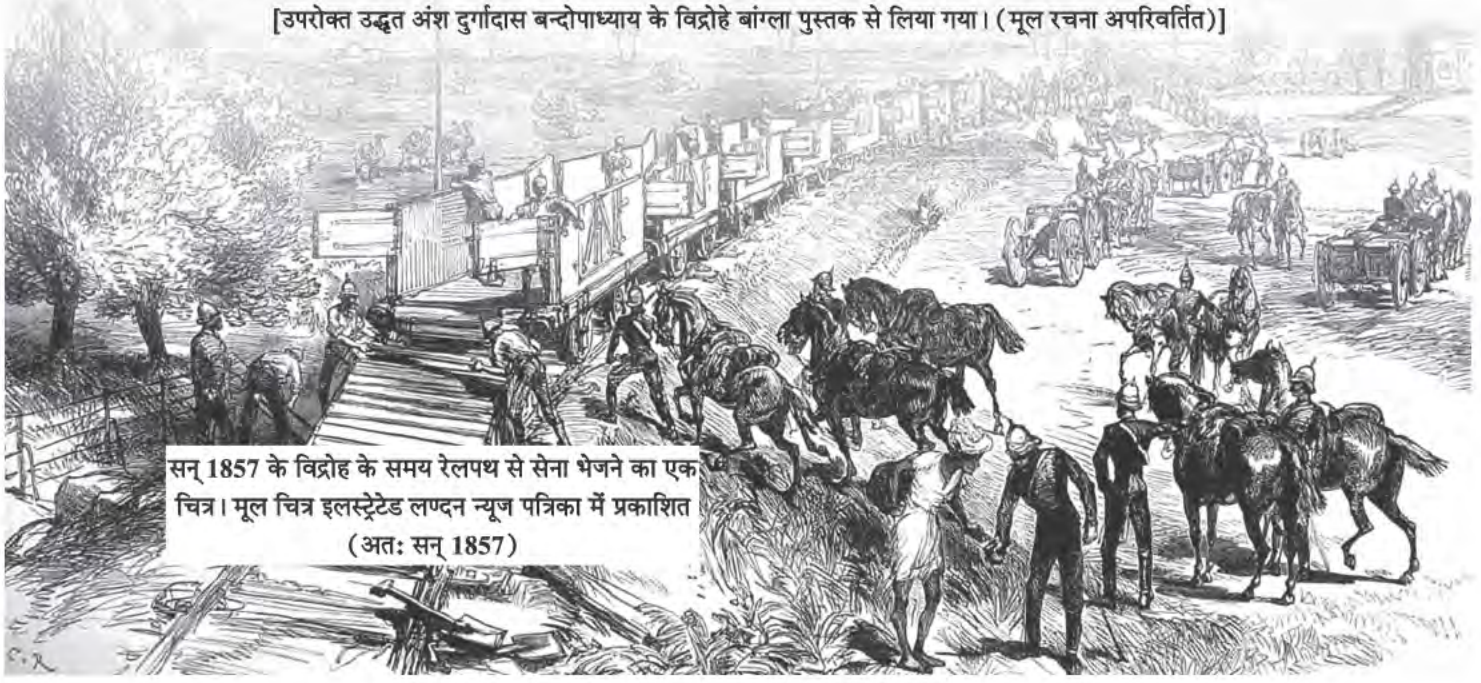

सन् 1857 के विद्रोह के समय रेलपथ से सेना भेजने का एक चित्र। मूल चित्र इलस्ट्रेटेड लण्दन न्यूज पत्रिका में प्रकाशित (अत: सन् 1857)

प्राय: पूरा दक्षिण भारत ही इस विद्रोह के चपेट से बाहर था। असामरिक (गैर लड़ाकू) साधारण मनुष्य जिन्होंने विद्रोह में हिस्सा लिया था। उनमें मूलत: दो प्रकार के मनुष्यों का प्राधान्य था। अधिकांश सामन्त एवं जमींदार ब्रिटिश कम्पनी की विभिन्न नीतियों के कारण अपनी सुविधा सुयोग और अधिकार खो चुके थे। जैसे लार्ड डलहौसी के गोद निषेध प्रथा नियम के फलस्वरूप बहुत सारे आंचलिक राज्य कम्पनी के शासन के अधीन चले गये थे। परिणामत: इन समस्त अंचलों के अभिजात सम्प्रदाय ने कम्पनी विरोधी मानसिकता से विद्रोह का साथ निभाया।

स्वयं करो

औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध विभिन्न विद्रोहों के विषय पर एक चार्ट बनाओं। चार्ट में विद्रोह के छोटे-छोटे इतिहास भी लिखों।

कम्पनी प्रशासन की कर नीति के कारण बहुत दिनों से कृषक भी क्षतिग्रस्त हो रहे थे। अत: कर के बोझ को लादने के विरोध में वे औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध एकजुट हो गये थे। अधिक कर चुकाने में बहुत सारे किसान महाजनों के कर्जदार हो रहे थे, जिसके कारण किसानों के हाथ से उनकी जमीन निकलती आ रही थी। इसी कारण विद्रोही किसान ब्रिटिश कम्पनी के साथ-साथ स्थानीय महाजनों के खिलाफ भी उठ खड़े हुए थे। खोई हुई जमीन को वापस पा लेने की लड़ाई में किसान और जमींदार कम्पनी के विरुद्ध एकजुट हो गये थे। साथ ही विद्रोह के दौरान हिन्दू-मुसलमान के बीच एकता भी अटूट थी। वस्तुत: किसी एक ही कारण से सन् 1857 का विद्रोह नहीं हुआ था। विभिन्न प्रकार के असन्तोषों और विद्रोहों ने मिलकर एक बड़े जन आन्दोलन का रूप ले लिया था।

कुछ बातें
सिपाही विद्रोह न कि राष्ट्रीय विद्रोह

सन् 1857 के विद्रोह की प्रकृति सम्बन्धी एक वितर्क शुरु से ही रहा है। अधिकांश ब्रिटिश भाष्यकारों के मत से यह विद्रोह केवल सिपाहियों के बीच ही सीमाबद्ध था। आम जन ने अपने असन्तोष को प्रकाश में लाने के लिये इस विद्रोह का उपयोग किया था। लेकिन विद्रोह के समय ही ब्रिटिश पार्लियामेण्ट में प्रश्न उठा था कि क्या सन् 1857 का विद्रोह विशुद्ध रूप से सैनिक विद्रोह ही है। न कि वह क्रमश: राष्ट्रीय विद्रोह का रूप ले रहा है? विद्रोह के समय ही एक समाचार पत्र में एक पत्रकार के रूप में कार्ल मार्क्स ने लिखा था, जिसे सैनिक विद्रोह माना जा रहा है, वो वास्तव में राष्ट्रीय विद्रोह है।

धीरे-धीरे राष्ट्रवादी लोगों ने सन् 1857 के विद्रोह को "भारत की आजादी का युद्ध" के रूप में प्रचार करना शुरु किया। इस कथन में थोड़ा अधिक ही आवेग था। क्योंकि 1857 के विद्रोहियों में राष्ट्रवाद की कोई धारणा नहीं थी। बल्कि विद्रोही नेताओं ने एक दूसरे के विरोध में आचरण किया था। इसके अलावा विद्रोहियों ने पुरानी मुगल शासन व्यवस्था को ही वापस लाना चाहा था। फिर भी सिर्फ सिपाही विद्रोह कहने से सन् 1857 के विद्रोह का समग्र रूप सामने नहीं आ पाता।

ब्रिटिश कम्पनी के सैनिकों का लखनऊ पर पुन:दखल। मूल चित्र थामस जोनास बाकर द्वारा बनाया हुआ।

अन्तिम मुगल सम्राट बहादुर शाह जफर। मूलचित्र अगस्त सोयेफ्ट द्वारा अंकित।

एक बात निश्चित रूप से समझी गयी थी कि विद्रोहियों ने ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन को उखाड़ फेंकना (समूल नष्ट कर देना) चाहा था। विद्रोही विश्वास करते थे कि ब्रिटिश शासन में उनके दीन (विश्वास) और घरम (धर्म) दोनों नष्ट हो जायेंगे। परिणामस्वरूप एक दूसरे को न पहचानते हुए भी विदेशी अंग्रेजो के विरोध में वे एकजुट हो गये थे। साथ ही पुरानी मुगल शासन की व्यवस्था को भी पूरे तौर पर वापस लाने का उद्देश्य भी विद्रोहियों का नहीं था। लेकिन विद्रोही मुख्य रूप से मुगल सत्ता को स्वीकार करते थे।

बहुत सी जगहों पर सामन्तों और जमींदारों के विद्रोह में शामिल होने पर भी सभी बातों में उनकी ही राय अन्तिम राय नहीं होती थी। बल्कि बहुत से सामन्त और जमींदार ही परिस्थिति के दबाव में आकर आम विद्रोह में भाग ले रहे थे। यहाँ तक कि बहादुर शाह जफर खुद भी विद्रोहियों की ओर से नेतृत्व देने का प्रस्ताव पाकर आश्चर्यचकित हो गये थे। झांसी की रानी लक्ष्मी बाई तथा नाना साहेब को भी थोड़ा प्रयास करके विद्रोहियों ने ही सिपाही विद्रोह में खींचा था। अत: सामन्तों तथा जमींदारों की भागीदारी पर सन् 1857 का विद्रोह निर्भर नहीं था। प्राय: सभी अंचलों (क्षेत्रों) में ही आपस में विचार-विमर्श कर तथा सभा करके विद्रोही ही कर्त्तव्य का निर्धारण करते थे। इसके बाद एक गाँव से दूसरे गाँव रोटी पहुँचाने के माध्यम से खबरों का आदान-प्रदान किया जाता था।

ब्रिटिश कम्पनी ने अवश्य ही अधिक जोर जबर्दस्ती से दमन पीड़न के द्वारा विद्रोह को दबाया था। सन् 1857 के सितम्बर महिने के अन्त में कम्पनी की सेनावाहिनी ने दिल्ली पर पुन: कब्जा जमा लिया। बहादुर शाह जफर को बन्दी बनाकर रंगून में देश निकाला कर दिया गया।

विद्रोही सिपाहियों को सजा मिलता एक दृश्य

कुछ बातें

बहादुर शाह जफर का विचार (निर्णय)

मुगल बादशाह लाल किले के दीवाने खास में बैठकर शासन का काम सम्हालते थे। सन् 1857 के 27 जनवरी को वही अन्तिम मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर पर फैसले करने के लिए अदालत लगी। फैसले से पहले दिवान-ए-खास के बाहर 82 वर्षीय वृद्ध सम्राट को प्राय: डेढ़ घण्टे तक खड़ा करके रखा गया। इसके बाद उन्हें भीतर बुलाकर साधारण आसन पर बैठाकर फैसले की क्रिया शुरु की गयी। लम्बे समय तक चले इस निर्णय प्रक्रिया में साक्षीयों से जिरह करने का मौका भी बादशाह को नहीं दिया गया। सन् 1858 के 29 मार्च को वृद्ध सम्राट को दोषी सिद्ध करके बर्मा के रंगून में देश निकाला (निर्वासित) कर दिया गया।

स्वयं करों

''वे पुरुषों की भाँति पोशाक पहनते थे। सिर पर पगड़ी। वे पुरुषों की भाँति घोड़े की पीठ पर बैठते थे। मुखमण्डल साधारण— लेकिन सुन्दर चहेरा एवं तिकोना नाक। उनके व्यक्तित्व में वृद्धि का परिचय था। वे काफी गोरे नहीं थे। वे सोने का पायल और.... लेकलेस पहनते थे।''

ऊपर का वर्णन रानी सक्ष्मीबॉई का है। लॉर्ड कैनिंग जो विद्रोह के समय भारत के गवर्नर जनरल थे, उन्होंने ही रानी के इस वर्णन को लिखकर रखा था। वर्णन से आप झाँसी की रानी के ब्रारे में क्या जान सकते हो?

लेकिन सारे दमन-पीड़न के बावजूद विद्रोह नहीं रुका। सन् 1858 के प्रारम्भ में ब्रिटिश सेनाओं ने उत्तर और मध्य भारत के विभिन्न भागों में विद्रोहियों को हरा दिया। वास्तव में ब्रिटिश कम्पनी के विरुद्ध विद्रोहियों ने गैर बराबरी (असमान) का युद्ध छेड़ा था। विद्रोहियों के पास न तो यथेष्ट सम्पत्ति थी और न ही जनशक्ति थी। इसके अलावा उनके पास अस्त्र-शस्त्र तथा परस्पर मिलने-जुलने के साधन भी उन्नत नहीं थे। साथ ही विद्रोही केवल दिल्ली के ही आस-पास एकत्र थे जिसके कारण अधिक दूर तक विद्रोह फैल न सका। फलस्वरूप दिल्ली दखल करने के साथ ही ब्रिटिश कम्पनी ने विद्रोह का अधिक से अधिक दमन कर दिया था।

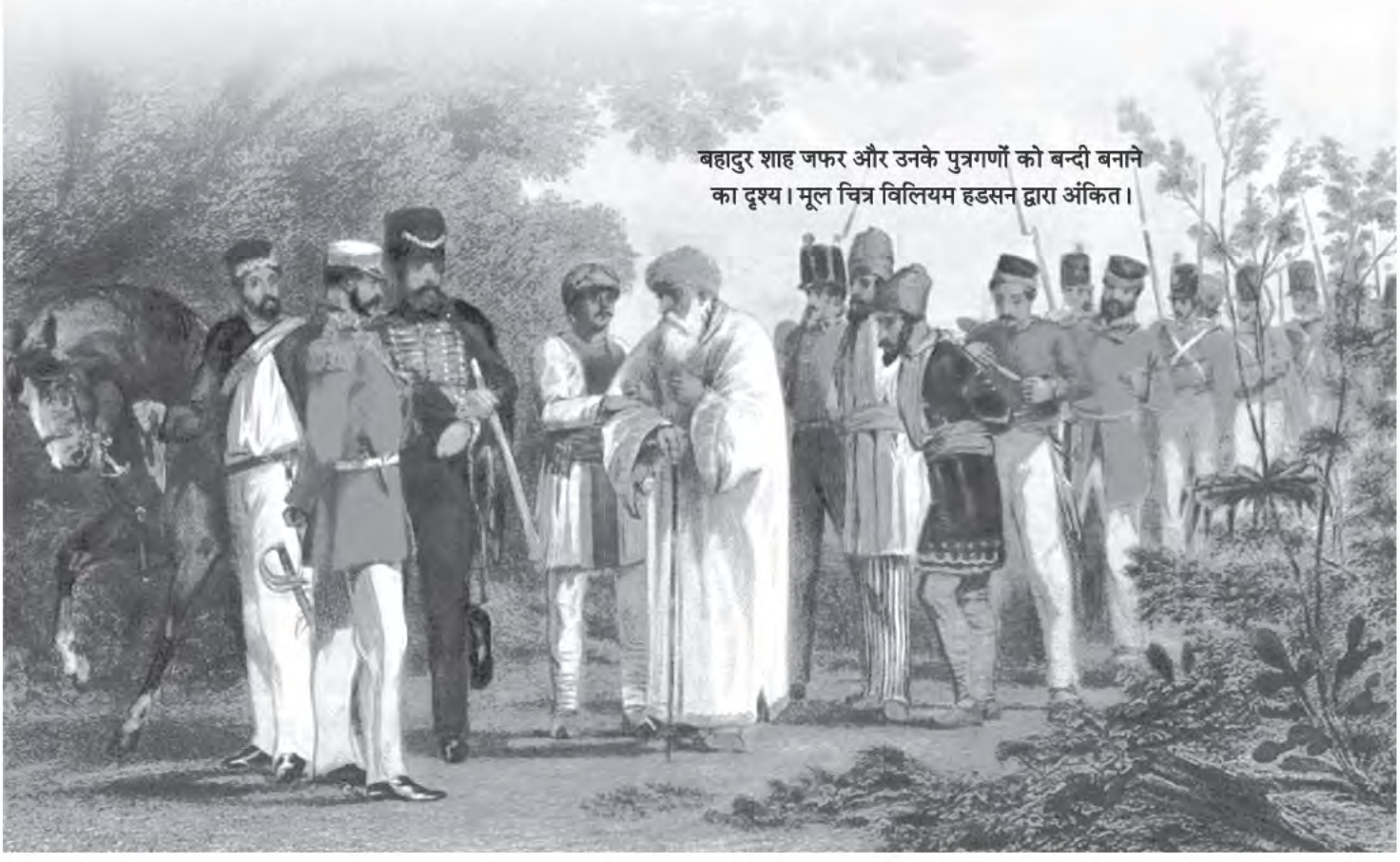

बहादुर शाह जफर और उनके पुत्रगणों को बन्दी बनाने का दृश्य। मूल चित्र विलियम हडसन द्वारा अंकित।

ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया

कुछ बातें

सन् 1857 का विद्रोह : कलकत्ता का अनुभव

"1857 साल के जुलाई माह में कलकत्ता में इस प्रकार आवाज उठी कि विद्रोही सिपाही आ रहे हैं, वे कलकत्ता के समस्त अंग्रेजो की हत्या करेंगे और कलकत्ता शहर को लूट लेंगे। इस अफवाह के कारण कलकत्ता के अधिकांश अंग्रेजों ने किले में शरण ली। सेना के देशीय अंशों में लोगों का क्या होगा इसी शंका में दिन गुजरने लगे। अंग्रेज फिरंगी और देशी क्रिश्चियन हमेशा अपने हाथ अस्त्र-शस्त्र लेकर चलने लगे। बन्दूकों की दुकानों पर दबाव अत्यधिक बढ़ गया। अंग्रेज जन भय से भयभीत होकर गवर्नर जनरल लॉर्ड कैनिंग को अद्‌भुत परामर्श देने लगे— भारतीयों के अस्त्र-शस्त्र को वापस लो कठिन सैनिक कानून जारी करो, आदि; कैनिंग ने इन पर ध्यान नहीं दिया। ..... आज सुना गया कि देशीय समाचार पत्रों की स्वाधीनता छीन ली जायेगी; काली की जाते सामने आई— जो रात के 8 बजे के बाद मैदान के किनारे जायेगा उसी को गोली मारेगा; संध्या होते ही बाजार बन्द होने लगे— किसी एक वस्तु की जरूरत हो तो नहीं मिलती लोग अपने घरों में बैठकर दो-चार जनों के बीच भी बिना संकोच के राज्य की अवस्था के बारे में राजनीति के बारे में अपने-अपने विचार प्रकट करने का साहस नहीं कर पाते थे लगता था जैसे दीवारें भी सुन रही हैं। कुछ और अधिक रात में पास के मैदान के निकट से जाने वाले रास्ता से आने पर पग-पग पर अस्त्रधारी प्रहरी पूछ बैठते दुकानदार अर्थात् (Who comes there?)। ऐसा होने पर कहना पड़ता 'रैयत है' अर्थात् मैं प्रजा अन्यथा पकड़ कर जाँचते तब छोड़ते। इसी प्रकार सभी तरह के लोगों में भय और आतंक ने जन्म लेकर कुछ दिनों तक हम सभी को शान्ति से रहने न दिया।

[उद्‌धृत अंश शिवनाथ शास्त्री के रामतनु लाहिड़ी सं० तत्कालीन बंग समाज ग्रन्थ से लिया गया है।]

सन् 1857 के विद्रोह के आघात से भारत में ब्रिटिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी का शासन लुप्त हुआ था। इसके बदले ब्रिटेन की पार्लियामेण्ट ने सीधे भारत की शासन क्षमता अपने हाथ में ले लिया था। कानून लगाकर ब्रिटेन की रानी विक्टोरिया को ब्रिटिश भारत की साम्राज्ञी घोषित कर दिया गया। साथ ही रानी के मंत्री सभा के एक सदस्य के भारत-शासन के लिये सचिव के रूप में नियुक्त किया गया। इसके अलावा गवर्नर जनरल का पद समाप्त कर दिया गया। इसके स्थान पर राज प्रतिनिधि अथवा वायसराय पद बनाया गया। लॉर्ड कैनिंग जो 1857 में गवर्नर जनरल थे। उनको ही प्रथम वायसराय नियुक्त किया गया। 1858 ई० के नवम्बर से भारत में महारानी विक्टोरिया का शासन शुरू हो गया।

महारानी विक्टोरिया के शासनकाल में भारत में प्रचलित मुहर।

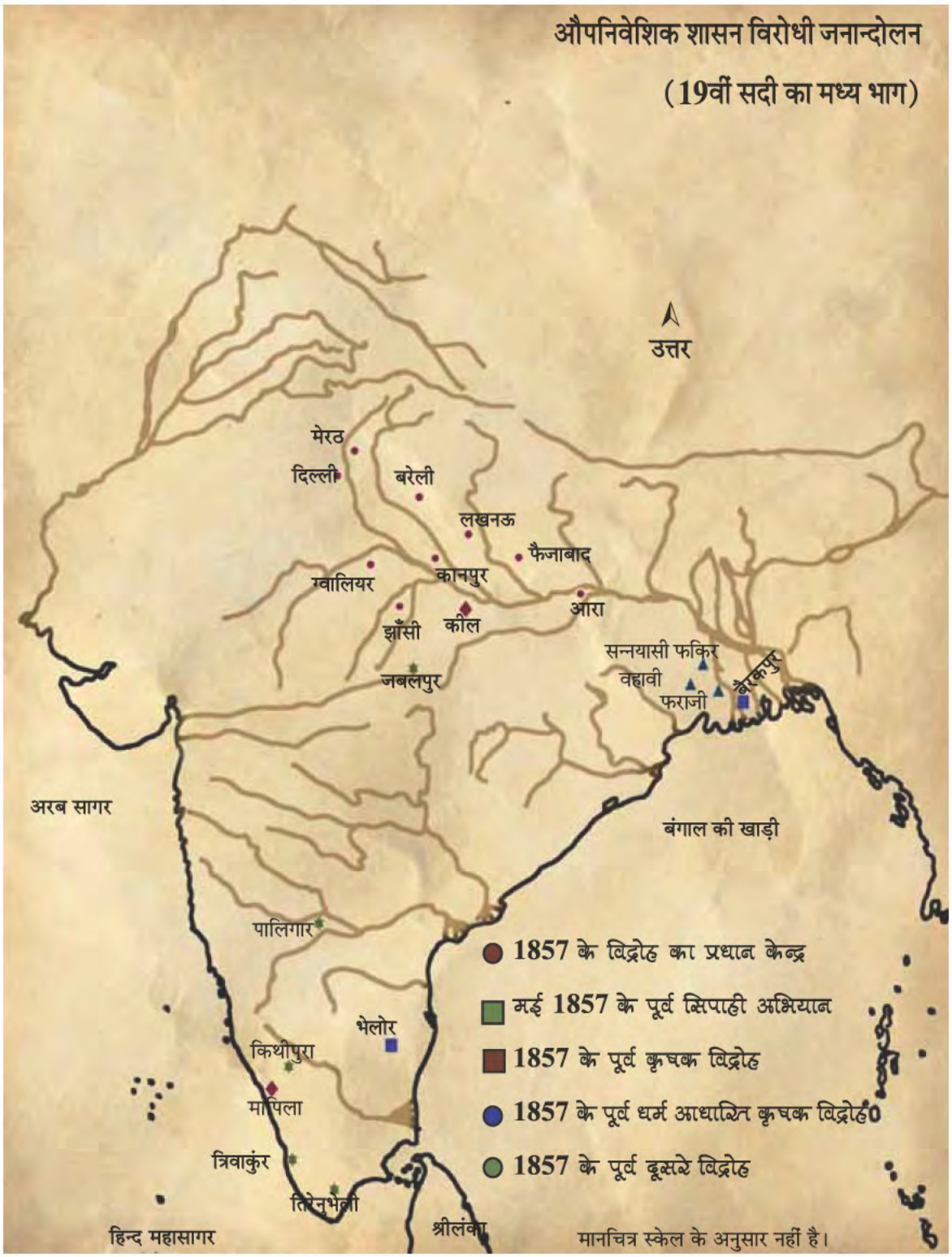

औपनिवेशिक शासन विरोधी जनान्दोलन
(19वीं सदी का मध्य भाग)
उत्तर
मेरठ
दिल्ली
बरेली
लखनऊ
फैजाबाद
ग्वालियर
कानपुर
आरा
झाँसी
कोल
जबलपुर
सन्नयासी फकिर
वहावी
फराजी
अरब सागर
बंगाल की खाड़ी
पालिगार
भेलोर
किथीपुरा
मापिला
त्रिवाकुंर
हिन्द महासागर
श्रीलंका
1857 के विद्रोह का प्रधान केन्द्र
मई 1857 के पूर्व सिपाही अभियान
1857 के पूर्व कृषक विद्रोह
1857 के पूर्व धर्म आधारित कृषक विद्रोह
1857 के पूर्व दूसरे विद्रोह
मानचित्र स्केल के अनुसार नहीं है।

सोचकर देखों
ढूंढकर देखों

1) 'क' — स्तम्भ के साथ 'ख' स्तम्भ के तथ्य को मिलाकर लिखो :

क- सतम्भ	*ख - सतम्भ*
हिन्दू पैट्रियेट	अन्तिम मुगल बादशाह
बहादुर शाह जफर	सतीदाह विरोधी आन्दोलन
राजा राममोहन राय	ब्रह्म समाज
विजय कृष्ण गोस्वामी	सिद्धू और कान्हु
सन्थाल विद्रोह	नील विद्रोह

2) बेमल शब्द खोजें :

(क) पण्डित रमाबाई, बेगम रूकैया, शेखावत हुसैन, शुभलक्ष्मी बाई, रानी लक्ष्मी बाई।

(ख) आत्माराम पाण्डुरंग, महादेव गोविन्द रानाडे, ज्योतिराव फूले, विटेशलिंगम पान्तुडू।

(ग) राममोहन राय, देवेन्द्रनाथ ठाकुर, केशव-चन्द्र-सेन, दयानन्द सरस्वती।

(घ) बहादुर शाह ज़फर, नाना साहेब, तितुमीर, मंगल पाण्डेय।

3) अति संक्षेप में उत्तर लिखें (30-40 शब्दों में) :

(क) औपनिवेशिक समाज में किन्हें 'मध्यवित्त भद्रलोक' कहा जाता था?

(ख) नव्य बंग समूह ने किस प्रथाओं का विरोध किया था?

(ग) सर सैयद अहमद के सुधारों का मुख्य उद्देश्य क्या था?

(घ) तितुमीर ने किसके विरोध में विद्रोह किया था?

4) अपनी भाषा में लिखो (120-160 शब्दों में) :

(क) सतीदाह विरोधी आन्दोलन और विधवा विवाह के समर्थन के आन्दोलन में समानताओं का वर्णन करो। विद्यासागर ने नारी शिक्षा के लिये किस प्रकार का प्रयास किया था?

(ख) ब्रह्म आन्दोलन की मुख्य बातें क्या थी? ब्रह्म आन्दोलन की कमियों का वर्णन करो।

(ग) सन्थाल हूल तथा नील विरोधी विद्रोह की तुलना करो। इन दोनों आन्दोलनों के लिये हिन्दू पैट्रियेट की भूमिका क्या थी?

(घ) क्या तुम मानते हो कि सन् 1857 का विद्रोह केवल सिपाही विद्रोह था? अपने उत्तर के समर्थन में तर्क दो।

5) सोचकर लिखो (200 शब्दों में) :

(क) मान लो कि तुम्हारे साथ राममोहन राय और ईश्वर चन्द्र विद्यासागर की मुलाकात हुई है। उनके साथ क्रम से सतीदाह निषेध और विधवा विवाह प्रवर्तन विषय पर अपनी बात-चीत लिखो।

(ख) कल्पना करो कि तुम एक संवाददाता हो। सन् 1857 के विद्रोह के समय सारे भारत में विभिन्न स्थानों पर भ्रमण करके विद्रोह के सम्बन्ध में तुम्हें क्या अनुभव हुआ है। उसी अनुभव के आधार पर एक समाचार प्रतिवेदन लिखो।

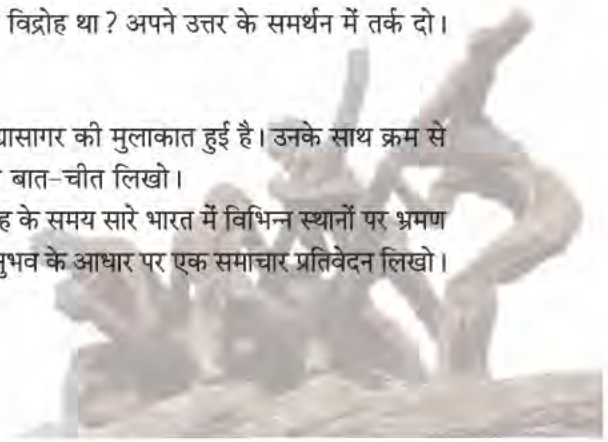

6 राष्ट्रीयतावाद का प्रारम्भिक विकास

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दिनों में भारतीय स्वाधीनता संग्राम के रूप में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस महत्वपूर्ण भूमिका निभा रही थी। सन् 1885 ई० बम्बई (मुंबई) राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन हुआ। दिसम्बर महिने में हुए इस सभा के सभापति उमेशचन्द्र बन्दोपाध्याय थे। इसी सभा के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस पार्टी का प्रारंभ हुआ साथ ही इसके स्थापना के पीछे अवकाश प्राप्त अंग्रेज कार्यकारी आलान आक्टोविन ह्यूम का विशेष योगदान रहा। ह्यूम अपने कार्यकाल में सम्पूर्ण भारतीय उपमहाद्वीप का दौरा किये। इस सूयोग से सभी प्रान्तों के राजनेताओं से उनका परिचय हुआ। वे सभी राजनेताओं को एकत्र कर सभा करने के लिए प्रेरित करते। पूना में एक सभा में यह निर्णय लिया गया लेकिन पूना में कोलरा (बीमारी) फैलने के कारण यह अधिवेशन वहाँ सम्भव नहीं हुआ। तब बम्बई शहर के गोकुलदास तेजपाल संस्कृति कॉलेज में अधिवेशन हुआ। यह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन था।

राष्ट्रीय कांग्रेस से पहले राष्ट्रीयतावादी सभा समिति

भारतीय राष्ट्रीयतावादी आन्दोलन के प्रारम्भ होने तथा जोर पकड़ने के पीछे महत्वपूर्ण भूमिका के रूप में कुछ भारतीय सभा समिति थे। सन् 1835 ई० बंगभाषा प्रकाशिका के सभा प्रथम राष्ट्रीयतावादी संगठन के रूप में चिह्नित किया गया। राजनीतिक दबाव के रूप में राष्ट्रीयवादिता का प्रश्न राजनीतिक रूप में प्रथम जमींदार सभा (1838 ई०) मूलत: कलकत्ता, बम्बई और मद्रास प्रेसीडेन्सी के रूप में तीन आंचलिक संस्थान के रूप प्रधान थी तथा इसके प्रभाव से अन्य समिति, सभाओ की भी संस्थापनाएँ हुई। सन् 1885 ई० से 1857 ई० तक के भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस स्थापना के पूर्व का समय अनेकानेक सभा समिति का युग था। निर्दिष्ट संगोष्ठी समाज संरक्षण के रूप में राष्ट्रीयतावादी चेतना का प्रचार धीरे-धीरे कर रही थी। जिसकी महत्वपूर्ण भूमिका थी। नवगोपाल मित्र राष्ट्रीय मेला या हिन्दू मेला, शिशिर कुमार घोष यूनियन लीग (1875 ई०) कर्नल अलकट और मादामब्लामाटस्किर थियोसाफिकाल सोसाइटी एवं सुरेन्द्रनाथ बनर्जी एवं आनन्दमोहन बसु, भारत सभा का यूनियन एसोसियेसन (1876 ई०) इत्यादि महत्वपूर्ण थे।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में उपस्थित नेतृत्ववृन्द मूल चित्र 1885 ई० में लिया गया।

कुछ बातें

इलबर्ट बिल विवाद

यूरोपियों के किसी मुकदमें का निर्णय केवल यूरोपीय न्यायधीश ही करेंगे तथा भारतीय न्यायधीशों और मजिस्ट्रेटों को उनका मुकदमें देखने का अधिकार नहीं। यह पक्षपात पूर्ण था। इससे मनमानी करने का पूर्ण अधिकार था। वायसराय रिपन (1880–84 ई०) के प्रिय पी०सी० इलबर्ट नें इसमें सुधार किया कि भारतीय इस मुकदमें को देख सकते है जिससे इसका विरोध अंग्रेजों ने किया जबकि भारतीयों ने स्वागत। 1884 ई० में इसपर संसोधन कर अंग्रेजो के जूरी बैठाने के माँग पर इसका निर्णय हुआ जो कि अंग्रेजी पक्षधर था।

कुछ बातें

यूनियन एसोसियेशन एवं राष्ट्रीय सम्मेलन (1883 ई0)

राष्ट्रीय कांग्रेस संस्थान से पहले राष्ट्रवादी संगठन के रूप में कलकत्ता यूनियन एसोसियेशन और भारत सभा बहुत ही महत्वपूर्ण संगठन थे। ब्रिटिश यूनियन के रूप में ये सभाओ में अधिकांश जमींदारों के पक्षधर थे लेकिन इनमें से कई जन जमींदारो का पक्ष छोड़ वृहत्तम आन्दोलन का रूप धारण किया। परिणाम स्वरूप वे युवा सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के नेतृत्व में एकत्र हो ब्रिटिश शासन के लिये खतरा पैदा करने लगे। उनके वृहत्तम आन्दोलनों में ब्रिटिश साम्राज्यवादी के लिये अनको चुनौतियाँ पैदा की।

सन् 1876 ई० सुरेन्द्रनाथ और आनंन्दमोहन बोस के नेतृत्व में यूनियन एसोसियशन और भारत सभा के रूप में संगठित हुए। इस संगठन का मुख्य उद्देश्य भारतीयों में राजनीतिक चेतना को जगाना तथा उसके कर्मक्षेत्रों को राजनीतिक भाव क्षेत्र से जोड़ना, राष्ट्रीयवादी चेतना का प्रचार। भारतीय सभा तथा यूनियन एसोसियशन के प्रयासो ने सन् 1883 ई० में कलकत्ता में अखिल भारतीय राष्ट्रीय सम्मेलन या राष्ट्रीयवादी सम्मेलन का आयोजन किया जिसके सभापति रामतनू लाहिड़ी हुए।

राष्ट्रीयतावादी कांग्रेस के रूप में अखिल भारतीय संस्था के निर्माण के विषय में सोचना संदिग्ध भले न हो, पर रहस्यपूर्ण अवश्य है। 1913 साल में प्राकुन सिविल सारभेन्ट यूनियन लेख ही ह्यूम के जीवनी के रूप में अनेकों तथ्य उपलब्ध हुए। लार्ड रिपन के उत्तराधिकारी लार्ड डफरिन भी एक ऐसी संस्था चाहते थे जिसके माध्यम से जनता अपनी भावनाओं को वैधानिक ढंग से पेश कर सके। 'डफरिन तथा ह्यूम के विचारों के षड्यंत्र' के रूप में यह परिचित है। इस प्रकार से कांग्रेस के माध्यम से देशवासियों के विचारों को एक मंच तथा सभी भाव प्रकट करने का माध्यम बना। इससे अंग्रेजों की पुन: यह अधिकार मिल गया कि वे खास अरजी पर उस भारतीय मजिस्ट्रेट के द्वारा दिये है। फैसले को जूरी के द्वारा बदलवा सकता है। क्योंकि इसमें केवल अंग्रेज मजिस्ट्रेट ही थे।

इलबर्ट बिल के पक्ष में भारतीयों का आन्दोलन। मूल चित्र द ग्राफिक पत्रिका में प्रकाशित (1883 ई0)।

इस प्रकार कांग्रेस प्रतिष्ठान ह्यूम की कोई भूमिका नहीं थी या यह 'षड़यंत्र का ढाँचा' था ऐसा कहना भी अनऐतिहासिक घटना बना सकता है अर्थात् यह मूल या पूर्ण सत्य है ऐसा नहीं इसके साथ ही भारतीयों में ब्रिटिश विरोधी विचार प्रकट हुए। फिर भी राजनीतिक रूप से ह्यूम की यही कोशिश थी कि एक ऐसा राष्ट्रीयवादी संगठन जो देशवासियों के विचारों को एक राजनीतिक मंच दे सके। क्षेत्र और प्रान्तों से आ रहे विभिन्न स्वरो को ठोस आधार मिले।

कलकत्ता, बम्बई और मद्रास प्रेसीडेन्सी से शिक्षा प्राप्त भारतीयता विभिन्न राजनीतिज्ञों का उदभव् हुआ। इन सभी राजनीतिज्ञों को एकजूट करने की चेष्टा चल रही थी। 1867 से 1883 ई० तक विभिन्न प्रतिवादी आंन्दोलन संगठित हुये। ये संगठन ब्रिटिश 'सरकार' का लक्ष्य बनाकर उनके आर्थिक नीति, संगठन आय-व्यय। साथ-साथ स्वदेशी संवाद पत्र-पत्रिकाओं की स्वाधीनता, कृषि, चायबगानों मजदूर श्रमिको समस्याओं, कानून संविधानिक संगठनों के द्वारा आन्दोलन को पोषित कर रहे थे।

इस सभी प्रतिवाद आन्दोलनों की मूलभूत मांगे केवल तीन प्रेसीडेन्सी तक सीमित नहीं थी बल्कि लाहौर, अमृतसर, अलीगढ़ कानपुर, पटना प्रादेशिक शहरों में अंग्रेजी शिक्षित मानवतावादी वर्ग इन आन्दोलन में अपना योगदान दिया। जिसके फलस्वरूप क्षेत्रीयता तथा आंचलिकता से ऊपर उठ एक नवीन भाव बोध लोगों के सम्मुख आया जो भारतीय अनेकता में एकता का प्रतीक के रूप में आया।

कांग्रेस के इस राष्ट्रीयतावादी भावना को प्रकटीकरण क्षेत्रीयता के रूप में हुआ जो अपने आप में भारतीयता को राष्ट्रीयतावादी चेतना के रूप में स्वीकार करने में सक्षम था। जिस किसी क्षेत्र में कांग्रेस के आंचलिक सामर्थ्य होती वहाँ उस क्षेत्र से सभापति नहीं होकर किसी अन्य क्षेत्र के होते थे। यह कंाग्रेस नेताओं की रणनीति के रूप में भारतीय राष्ट्रीय चेतना से क्षेत्रवाद से ऊपर उठकर राष्ट्रीयता को बढ़ावा देता था। सन् 1888 ई० यह निर्णय लिया गया कि किसी क्षेत्र में अधिकांश हिन्दू और मुसलमान समर्थन न हो पाये तो उस प्रस्ताव को स्थगित कर दिया जायेगा। वस्तुत: गणतांत्रिक एवं सर्वएकमतता के द्वारा कांग्रेस के परिचालना का लक्ष्य ही कांग्रेस नेतृत्व था।

अवश्य इस बात पर गौर किया जा सकता है कि कांग्रेस के प्रारम्भ से ही इसमें सांगठनिक कुछ दुर्बल थे। समस्त भारत के लोग कांग्रेस के विचार से पूर्ण रूप से पक्षधर नहीं थे। साथ ही जाति, धर्म, लिंग अधिक विषमताओं से पूर्ण समाज कई

कुछ बातें

ब्रिटिश के शासन में दमनमूलक कुछ कानून

1876 ई०में लार्ड नर्थब्रुक ने नाट्य अभियन नियंत्रण कानून लागू किया। इसका उद्देश्य था- राष्ट्रीयतावादी सोच-विचार के नाटकों को बन्द करना। इसके बाद लार्ड लिटन द्वारा लिए गए कुछ पदक्षेप को लेकर भारतीय समाचार पत्र लिटेन की कठिन आलोचना करने लगे। जिसके प्रतिक्रिया रूप में लार्ड लिटन ने देश मुद्रण कानून जारी किया। (1878 ई०) इस कानून के बल पर सभी स्वदेशी पत्र-पत्रिकाओं पर रोक लगा दिया गया कि ब्रिटिश साम्राज्य के विरूद्ध कोई संवाद न छापे। यह कानून विरोध आन्दोलन के कारण (1881 ई०) में तात्कालीक वायसराय ने इस को रद्द कर डाला। लार्ड लिटन ने भारतीयों के ब्रिटिश विरोधी क्रिया-कलापों को रोकने के लिए यह कानून पास किया था।

लार्ड लिटन

उमेशचन्द्र बन्दोपाध्याय

आलन अक्टोभियन ह्यूम

लॉर्ड डफरिन

बिन्दुओं पर अलग-अलग रूप में बटे थे। समाज में निम्नवर्ग के लोग और उनके समस्याओं कांग्रेसी नेता इसे राजनीति से जोड़ते नहीं थे। वस्तुतः पाश्चात्य शिक्षा प्राप्त आर्थिक श्रमजीवी के भारतीय आन्दोलन में भाग लेने का निर्णय किया।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना को यदि भौगोलिक विचार से देखा जाय तो, कांग्रेस सभा सदस्यों में बम्बई प्रदेश सबसे महत्वपूर्ण था। 1885 ई० पूर्व प्रथम अधिवेशन में योगदान करने वाले 72 सदस्यों में 35 सदस्य केवल प्रेसीडेन्सी से शामिल थे। फलस्वरूप सम्पूर्ण भारतीयों में प्रमुख रूप से बम्बई, मद्रास, और बंगाल प्रेसीडेन्सी के कुछ प्रमुख शिक्षित पेशाजीवी, व्यवसायी, जमींदारो ने कांग्रेस के प्रधान नेतृत्व में अपनी सहयोगिता दी। सम्प्रदायिगत भारत में प्रथम रूप से कांग्रेस के नेतृत्व में उच्चवर्गीय हिन्दूवादी लोगों को अधिक महत्व दिया गया। वे स्वयं ही अपने आप को अपने जाति गौरव को रूप में जानने के लिये अपना प्रचार करते थे। ताकि समाज में एक महत्वपूर्ण नेता के रूप में उनकी छवि बने।

प्रारम्भिक दौर में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की छवि भारतीय राजनीति में कुछ विशेष न थी वे उपनिवेशवादी शासन की नींव के मूलभूत प्रतिनिधि न कर अंग्रेजों के पक्षधर तथा अनुनय विनय कर भारतीयो के हितों की बात करते थे। कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन में उमेशचन्द्र बनर्जी (1885 ई०) सभापति के रूप में स्पष्ट शब्द में कहा कि "यह कांग्रेस किसी ब्रिटिश विरोधी षड़यंत्र में नहीं बल्कि वे अंग्रेजी राज्य के प्रति अपना अनुग्रह सम्मान तथा समर्थन प्रस्तुत करते है। जो आशा व्यक्त करते है कि अंग्रेज सरकार संदेह की दृष्टि से नहीं देखेगा।"

इस प्रकार सन् 1885 ई0 से 1905-1907 ई० तक भारतीय कांग्रेस भारत के उच्च वर्ग के हितों के लिये समर्थन करता तथा उसे अंग्रेजो से मनवाता था। तब सरकार के ऊपर आम जनता के आर्थिक स्थिति का कोई स्वरूप स्पष्ट नहीं था।

राष्ट्रीयतावादी कांग्रेस के प्रथम दो दशक : आर्थिक राष्ट्रीयतावाद

प्रथम दो दशको के कार्यकाल पर विचार किया जाये तो यह कांग्रेस के उदारपंथी विचारो का कार्यकाल था जिसे नरमपंथी के रूप में जाना गया। इस दौर में कांग्रेस का प्रमुख कार्य वार्षिक अधिवेशण को केन्द्र में रखकर किया जाता था। जहाँ विभिन्न प्रकार के सदस्य अपना विचार प्रस्तुत करते। जिसे कहा गया 'तीन दिनों का तमाशा'। तथा नेतागण अपने प्रस्तावों को लेकर अपने क्षेत्रों में आन्दोलन कराते तथा उसके अनुसार अपना कार्य को एक स्वरूप प्रदान करवाते।

पूरे वर्ष संगठन के पास कोई सुनिश्चित कार्यक्रम न होने के कारण वे स्वयं अपने हिसाब से अपने कार्यक्रमों को चुनते थे। साथ ही इन नरमपंथी की विचार धाराओं में भी एकरूपता न होकर विभिन्नताए थी। जो समय-समय पर मुखरित होती कुछ कांग्रेसी नरमपंथी अंग्रेजों को ही सारा विधि विधान मानते उनकी मौलिक सोच शून्य हो गयी। वे ब्रिटिश राज के इतने पक्षधर थे कि वे उनके हर कार्य को ही सुनिश्चित और योग्य समझते थे।

नरमपंर्थियों का यह मानना था कि अंग्रेजों के द्वारा भारतीय आर्थिक विकास के नवीनतम रूपरेखा से भारतीयों का आर्थिक विकास होगा लेकिन नहीं ये कुछ उच्च वर्गीय जमींदारो, व्यवसायी वर्ग तथा पेशावर्ग के हितों को ही महत्व देते जो भारतीय बुनियादी अर्थव्यवस्था तथा शिल्प का धीरे-धीरे तो उसका मूल स्वरूप विदेशी उपनिवेश का हिस्सा बनने लगी। ब्रिटिश उपनिवेश का मूल उद्देश्य भारत का शोषण करना था।

कुछ बातें

औपनिवेशिक स्वशासन : सुरेन्द्रनाथ बनर्जी का मूल्यांकन

हममें से अनेक यह सोचते है कि यह स्वाधीनता प्राप्त करने के लिये सभी सभागत यह मानते कि ब्रिटिश शासन के कार्यों तथा नियमों के पालन करने में आगे आना होगा। लेकिन ऐसी जरूरत अभी भी देखा नहीं गया है। यदि हम यह घोषणा कर दे कि हम अपने को ब्रिटिश शासन से स्वाधीन चाहते है तो कोई हमारे इस विचार को बाधित नहीं कर पायेगा। ब्रिटिश के खिलाफ जनमत भी पायेगे। लेकिन अंग्रेजी नीति के द्वारा उसका दमन किया जायेगा जो कि अंग्रेजी नीतियों को मानकर उसका सहयोग पाया जा सकता है। उसके विचारों के आधार पर ब्रिटिश सहानुभूति प्राप्त किया जा सकता है,

डोमिनियन स्टेटास और औपनिवेशिक स्वशासन प्राप्त प्रयोजन और वाछंनीयता के रूप में क्या करता न करता। उन्नति करने के साधन के रूप में देखे जा सकते है। देश के उन्नति के लिये इस प्रकार उच्च अधिकारियों के निर्माण के रूप में देख सकते है। ब्रिटिश साम्राज्यवाद समर्थन कर देश का कार्य कर सकते है।

[प्रस्तुत अंश सुरेन्द्रनाथ बनर्जी- एक आत्मजीवनी A Nation in Making एवं बांग्ला तरजमा से लिया गया है। बांग्ला तरजमा नलीन दासगुप्त द्वारा किया गया है।]

यदि उपनिवेश शासकों के सम्मुख नरमदल के लोगों को एक भी युक्ति चलती तो उनके योग्यता पर किसी को संदेह न थी। कांग्रेस के गठन तथा नरमपंथियों के विचारधारा का कोई प्रभाव ब्रिटिश उपनिवेशवाद पर नहीं पड़ता। ब्रिटिश शासक नरमपंथी कांग्रेसियों के कोई भी बात को नहीं मानते। केन्द्रीय और प्रादेशिक कानूनी सभा में विशेष सम्प्रसारण घटना हुआ नहीं। चुनाव के स्थान पर मनोनीत किये जाते थे। साथ ही कानूनी सभाओं के किसी निर्णय को लेकर कोई भी चुनाव की प्रक्रिया नहीं थी। नरमपंथियों की किसी बात को न मानना ब्रिटिश साम्राज्यवाद का लक्ष्य था। बिना कानून सभा को बताये ही उस कानून को लागू करने की क्षमता प्रकट हुई।

नरम दल के लोग का एक प्रमुख दबाव यह था कि भारतीयों की सहभागिता प्रशासनिक क्षेत्र में बढ़े तथा सिविल सेवाओं की भर्ती में प्रार्थी के उम्र 19 वर्ष के अपेक्षा 23 वर्ष कर दिया जाये तथा ब्रिटिश तथा भारत में समान सूयोजन नियमों के द्वारा ही भर्ती ली जाये। साथ ही भारत तथा लंदन में परीक्षा के प्रारूप एक समान हो। लेकिन ये सभी शर्तों पर ब्रिटिश शासकों ने ध्यान नहीं दिया वे प्रशासनिक सेवा का भारतीयकरण नहीं करना चाहते थे। जिससे सम्पूर्ण विषयों पर ध्यान नहीं दिया जाता था।

ब्रिटिश भारतीय सेना वाहिनियों को सुदूर विदेश में जाकर युद्ध करने तथा उनके खर्च के लिये कर (टैक्स) भारतीय पर बढ़ाये जाते थे। जिसके प्रतिवाद में नरमपंथी थे। प्रथम विश्व युद्ध में अनेक भारतीय जवानों, अंग्रेजों के पक्ष में लड़ते-लड़ते शहीद हो गये तथा इनके भारतीय धन-जन का ह्रास होता था जिसमें नरमपंथियों के विचार थे इससे भारतीय अर्थव्यवस्था कमजोर हो रही थी। अत: कांग्रेस नरमपंथी इस ब्रिटिश उपनिवेशकों के कार्य में सहयोग न देने की नीति अपनाई।

कुछ बातें

अर्थनीतिक राष्ट्रीयतावाद

एक विशेष प्रकार का निर्णय नरमपंथी राष्ट्रीयतावादियों ने लिया जो बहुत ही महत्वपूर्ण था। भारतीय आर्थिक दुर्व्यवस्था को देखते हुए ब्रिटिश शासनकाल में इन्होंने महत्वपूर्ण समालोचना किये थे। इस प्रक्रिया के द्वारा अर्थनीतिक राष्ट्रीयतावाद (Economic Nationalism) के रूप से जाना जाता है। इस कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका दादा भाई नौरोजी (पेशा से व्यवसायी), महादेव गोविन्द रानाडे (पेशे से विचारक) एवम् रमेशचन्द्र देव (सिविल सर्वेंट) निभायी थी। अर्थनैतिक राष्ट्रीयतावादियों का मूल लक्ष्य था भारतीय दरिद्रता दूर करना और ब्रिटिश-शासकों के बीच सम्पर्क स्थापित करना। इन नरमपंथियों का उद्देश्य था भारतीय उपनिवेशिक शासकों के चरित्र को प्रकट करना।

दादाभाई नौरोजी

भारतीय भूमि उनके लिये एक कच्चा माल की भूमि थी। जहाँ से ब्रिटिश सरकार कच्चा माल उसे तैयार कर पुन: भारतीय वृहत्त बाजार तथा दुनिया के अन्य देशों में

विक्रय करती थी। ताकि भारत की वृहत्तम सम्पति उपनेविशिक सरकार के लिये ब्रिटेन अर्थनीति के रूप में व्यवहार हो। भारत, ब्रिटेन के लिये मूलधन के रूप से प्रस्तुत जिसका अधिकांश लाभ ब्रिटेन चला जाता। फलस्वरूप भारतीय कृषि, उद्योग सभी ध्वंस हो गये। नरमपंथियों के द्वारा इसे 'सम्पदा निर्गमन' कहकर संबोधित किया गया। उनका कहना था कि इस प्रकार सम्पदा निर्गमन से भारतीय अर्थ व्यवस्था (भारतीय धन, कृषि, उद्योग इत्यादि) ध्वंस कर दिया गया।

साथ ही साथ कृषकों से अधिक कर (टैक्स) लेना प्रारम्भ किया । जो उन्हें और भी असहाय बना देते। भारतीय वस्तुओं के निर्यात पर कर बढ़ना तथा विदेशियों के माल पर मुफ्त करना भारतीय शिल्प के लिए हानिकारक था। शिल्प से जुड़े किसान तथा कृषि का भी पतन हुआ। जिससे व्यवसाय छोड़ कृषि तथा वहाँ भी शोषण से भारतीय लोग और भी गरीब हो गये। इन विषयों को रोकने तथा विरोध करने के लिए एक राष्ट्रीय अर्थनीति बनाने की भावना अर्थनैतिक राष्ट्रीयतावाद को मजबुत बनाया था।

रमेशचन्द्र दत्त

सामाजिक और आर्थिक अव्यवस्था के कारण नरमपंथी राजनीति भारतीय वृहत्तम जन-साधारण के समस्याओं से जोड़ तथा तालमेल स्थापित नहीं कर पा सके। इसलिये उनके सामाजिक कार्यक्रम की पद्धति को लेकर समालोचना प्रारम्भ हो गई। प्राय: सभी कांग्रेसो के कार्यालयों के पीछे जमींदारों की सहायता थी। तभी तो नरमपंथी कृषि संबंधी इनके स्वार्थ की अवहेलना नहीं कर पाते। रमेशचन्द्र दत्त के नेतृत्व में काग्रेसियों के अंश छोटा कृषक के हितों की रक्षा के लिए प्रतिबद्ध हुये। एक ही प्रकार से व्यवसायी और महाजन, श्रमिक, श्रेणी हितो की रक्षा के लिये कोई कदम नहीं उठा पाते। इसके अलावा नरमपंथी नेतृत्व के द्वारा दो एक लोगों को बाद देती। जैसे— (बदखूद्दिन तैयाब) के अलावा कोई अन्य मुस्लिम और अन्य सम्प्रदाय के लोग नहीं थे। जिससे कांग्रेस के प्रथम दो दशकों में सामाजिक कल्याण तथा रक्षा के लिये कोई विशेष कार्य नहीं हुए।

अर्थात् मूलरूप से नरमपंथी राजनीति का लक्ष्य और कार्यसूची सीमित विचार ही थे तब समाज के जन-साधारण को इसमें भाग नहीं लेने दिया गया जिसके कारण ब्रिटिश प्रशासन कांग्रेस को विशेष महत्त्व नहीं देते। उच्च शिक्षित भद्र तथा विद्वान होने के कारण ये अपने ही नीतियों को लेकर लड़ते तथा एकमत नहीं हो पाते।

इस प्रकार विचार करे तो सम्पूर्ण कांग्रेसी नरमपंथी राजनीतिक प्रयास को पूर्ण रूप से व्यर्थ कहना उचित और स्वाभाविक होगा।

राष्ट्रीयतावादी नीति नरमपंथियों ने दिये। उच्च शिक्षित होने के फलस्वरूप संविधानिक राजनीति के रूप में उन्होंने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनके द्वारा संचालित आन्दोलन गणतांत्रिक आन्दोलन न थे। जिससे भारतीय जनगण को विशेष सुविधा नहीं मिली। 1857 की क्रांति तथा विशेष रूप से 1885 के राष्ट्रीतावादी कांग्रेस की संस्थापना में विशेष अन्तर है।

स्वयं करो

तुम्हारे कक्षा में मित्रों के दो दल बनाओ तथा नरमपंथी और गरमपंथी के कार्य की समालोचना करो।

गरम दलीय राजनीति का उद्भव

वस्तुत: राष्ट्रीयतावादी कांग्रेस के नरमपंथी विचारधारा के विफल होने के बाद भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कार्य-प्रणाली को लेकर बहुत समालोचना हुई तथा इसके अनुनय विनय के निष्क्रिय होने के बाद एक नवीन उग्र की विचारधारा जन्म लेने लगी जिसने नरमपंथियों की नीति को भिक्षावृत्ति को 'राजनीतिक भिक्षावृत्ति' कहा। बीसवीं सदी के प्रारम्भ के साथ ही देश के लोगों में गहन चेतना का संचार हुआ जो कि कांग्रेस में गरमपंथी विचारधारा के रूप में उभरने लगी। इनका उद्भव मुख्यत: बंगाल, महाराष्ट्र तथा पंजाब को केन्द्र करके होने लगी। इस तीन क्षेत्रों के प्रधान नेता लाल-बाल-पाल के नाम से परिचित हुए तथा अन्य क्षेत्रों में थोड़े बहुत गरमपंथी का प्रभाव बढ़ा।

प्रश्न यह उठता है कि गरमपंथी की विचारधारा नरमपंथियों की विचारधारा क्या एक जैसी थी? एक ओर देखा गया कि नरमपंथियों के निष्क्रिय राजनीति के प्रभाव ने गरमपंथी को उभरने का अवश्य प्रदान किया वही जमींदार लोग भी कांग्रेसियों की आर्थिक मदद बंद कर दिये। फलस्वरूप विभिन्न कर्मक्षेत्रों में नरमपंथी आर्थिक संकट में पड़ने पर उनकी राजनीतिक गतिविधियाँ शिथिल हो गयी। साथ ही वृहत्तम सभा से ये नहीं जुड़े थे। इनका कार्यक्रम केवल जमींदार, पेशा नौकरी, उच्च शिक्षित तक सीमित थी।

लाल-बाल-पाल

साथ ही साथ कांग्रेस में विभिन्न जाति द्वन्द्व उग्रपंथी गरम दल के उद्भव में सहायक थी विभिन्न अंचलों क्षेत्रों के संगठन में मतभेद था। जिसे पंजाब के लाला लाजपत राय, (लाल) बाल गंगाधर तिलक (महाराष्ट्र) तथा बंगाल के विपिन चन्द्र पाल को प्रमुख गरम दल के नेतृत्व के रूप में लिया जा सकता है। (लाल-बाल-पाल)।

सम्पादन को केन्द्र में रखते हुए अरविन्द घोष, विपिनचन्द्र पाल और ब्रह्मबान्धव उपाध्याय के बीच विवाद रहा। महाराष्ट्र पूना सार्वजनिक

सभा में नरमपंथी गोखल तथा गरमपंथियों के बीच कुछ नियम बने। इन सभी सभाओं संगठन के संयुक्त प्रयास से ही राष्ट्रीयतावादी कांग्रेस ऊपर उठा।

लॉर्ड कर्जन ने प्रशासनिक सुधार के रूप में नरमपंथी के सम्मुख कुछ नियम कानून बनाये। सन् 1899 ई० कानून कलकत्ता पौरसभा निर्वाचन के सदस्यों की संख्या कम कर दिये। सन् 1904 ई० समाचार पत्र-पत्रिकाओं को स्वतंत्र किया गया। इस साल सरकारी नियम को विश्वविद्यालयों के लिये और भी कठोर किए गये तथा इस वर्ष बंगाल विभाजन करने की बात लॉर्ड कर्जन ने कहीं। जिसके विरोध में गरमपंथी (उग्रपंथी) कांग्रेस के नेताओं का रूख और भी कठोर हुआ। उपनिवेशिक सरकार भारतीय स्वशासन के सम्मुख 'पौरूषहीनता' का परिचय दे रहे थे। इन सभी के विरोध में गरमपंथी नेताओ ने भारतीय अतीत के गौरवपूर्ण उदाहरण से भारतीय जनता को सहारा दिया। 'जातिय आदर्श' अर्थात् 'राष्ट्रीयतावादी आदर्श' चेतना को जगाया। इसके आधार पर महाराष्ट्र में शिवाजी उत्सव प्रारम्भ हुआ इसके साथ ही भारतीयों में योग्यता का विकास शारीरिक और मानसिक स्तर पर हुआ। बंगाल के विभिन्न स्थानों पर अखाड़ा, व्यायामशाला, कसरत, लाठीखेला, तलवारबाजी चरित्रवान प्रवृति के समाज में फैलाया गया।

कुछ बातें

सरला देवी और प्रतापदित्य उत्सव

सरला देवी

'ये सब उस समय मेरे पास आते उनके बीच से मणिलाल गांगुली नाम का एक लड़का था.....। एक दिन मुझसे (सरला देवी) आग्रह है कि वह उनके सभा का नेतृत्व करें। मैं कुछ सोच कर बोली ..... 'ठीक है, तुम्हारे सभा का नेतृत्व करने जाऊँगी यदि सभा समालोचना करूंगी, तथा उसी दिन तुम्हारे सभा के माध्यम से 'प्रताप उत्सव' कर और दिन पीछे 1 वैशाख के दिन प्रताप का राज्यभिषेक हुआ। सभा में यह निर्णय लिया गया कोई पूरे कलकत्ता में कोई बंगाली कुस्ती जाने, लाठी खेला जाने या प्रदर्शन करे तलवारबाजी जाने, बाक्सींग जाने। इन सभी कलाओं को सीखो इनकी प्रदर्शनी लगा मैं तुम सबको एक-एक मेडल दूँगी।

मणिक तैयार हुआ तलवार चलाने के लिये उस मुहल्ले के कुछ बंगाली तैयार हुये राजपूत युवको को हरदयाल वहाँ ले आया कुस्ती (पहलवानी) मस्जिदबाड़ी से गुरूदेव के बच्चे आये। बाक्सींग के लिये भूपेन्द्र का भतीजा शैलेन दलबल तैयार किया तथा लाठी को लिये कुछ और लोगों को संग्रह लिया गया। मैंने जिस प्रकार कहीं उसी प्रकार सभा का कार्यक्रम संचालित हुआ। ..... अन्त में अपने हाथों से मेडल दिया वही मेडल एकदिन .....।

कुछ बातें

गरमपंथियों की स्वराज्य भावना

आदर्श रुप में गरमपंथियों का मूल उद्देश्य स्वराज प्राप्त करता था। तब विभिन्न प्रकार के नेता अपने-अपने विचारिता के आदर्श पर स्वराज की व्याख्या करते हैं। विपिनचन्द्र पाल के अनुसार 'स्वराज एक सम्पूर्ण स्वाधीनता' है। जो कि ब्रिटिश शासन के अधीन रहकर कभी प्राप्त नहीं किया जा सकता है। अरविन्द घोष की भी धारणा इनसे काफी मिलती या इसी प्रकार के थे। तिलक के मन में स्वराज से तात्पर्य प्रशासनिक नियंत्रण से था। उनमें से कुछ नेताओं का मानना था कि स्वराज का मतलब ही अंग्रेजी राज्य में रहकर स्वशासन फलस्वरूप गरमपंथी अतुन्य विनय के आधार पर गतिरोध-विरोध से अपना कार्य करने का निर्णय लिया। अर्थात् अंग्रेजों के अत्याचारों, शोषण के खिलाफ जनता को एकत्र कर उससे विद्रोह करने का आंहवाहन मात्र है तथा गरमदल ने विदेशी वस्तु का बहिष्कार उनकी शिक्षा संस्कृति आदि के खिलाफ होकर स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने की बात कहीं गयी। जिससे भारतीय अर्थनीति मजबूत हो।

उस मेडल में अंकित थे — ''देवा: दुर्बल घातका:''।

सरला देवी प्रतापदी उत्सव रवीन्द्रनाथ को नहीं भाते थे। रवीन्द्रनाथ प्रतापदित्य आदी को 'जातीय वीर' या 'राष्ट्रीय वीर' कहने के विरोध में थे।

[प्रस्तुत अंश सरलादेवी चौधरानी के जीवनी झावापात ग्रन्थ से लिया गया है (मूल वर्णन अपरिवर्तित)]

नरमपंथी नेता अंग्रेजी शिक्षा से प्राप्त राष्ट्रीयतावादी धारणा से भारतवर्ष को आधुनिक करना चाहते थे। उधर गरमपंथी उपनिवेशवादी शासन का विरोध कर अंग्रेजी शिक्षा राष्ट्रीयतावादी धारणा समालोचना करते हुए समस्त भारतीय इतिहास को गौरवमयी कहकर सब कुछ या तो गरमपंथी उसके पीछे विशेष उदवेग नहीं था। लेकिन कुछ नेता इस हिंदूवादी राष्ट्रीय अवधारणा कहकर संबोधित करते थे।

अरविन्द घोष

1906-07 तक भारत के विभिन्न भाग नरमपंथी और गरमपंथियों के विरोध को देखा गया। लाला लाजपत राय और बाल गंगाधर तिलक के मतों में नरम और गरम पंथी नेताओं के वैचारिक समझौता को देखा गया। कांग्रेस प्रधान विवेचना को सीमा तक गरमपंथी ग्रहण करते। सन् 1906-08 तक के अखिल भारतीय कांग्रेस के अधिवेशन का मुख्य उद्देश्य था कि कितने दूरी तक उग्रपंथी (गरमदल) कांग्रेस के विचारों को ग्रहण करते है। 1906 ई० में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन कुछ नरमपंथी विचारधारा विरोधी उग्रपंथी की सहायता के लिये तैयार हो जाती है। इस अधिवेशन में स्वराज, स्वदेशी बैंक (विदेशी दवा और प्रतिष्ठान की वर्जन) और राष्ट्रीय शिक्षा ये चार प्रस्ताव ग्रहण किये गये। नरमपंथी नेताओं ने ये प्रस्ताव ग्रहण किया। इस समूह के प्रमुख नेता बाल गंगाधर तिलक थे।

कुछ बातें

राष्ट्रीय कांग्रेस का सूरत अधिवेशन

पूना शहर में 1907 ई० में राष्ट्रीय कांग्रेस अधिवेशन होने की बात थी। लेकिन पूना के उग्रपंथी काफी शक्तिशाली हैं, इस तर्क के आधार पर नरमपंथी सूरत में अधिवेशन करने का प्रस्ताव दिया। सूरत अधिवेशन में अध्यक्ष के चुनाव के लिए उग्रपंथी और नरमपंथी में आपसी द्वन्द भयंकर रूप ले लिया। इसी द्वन्द और झमेले के मध्य सूरत अधिवेशन समाप्त हुआ। नरमपंथी सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और उग्रपंथी तिलक ने प्रयास करके कांग्रेस को एकजुट करने का प्रयास किया। लेकिन फिरोज शाह मेहता ने उग्रपंथियों को पूरी तरह से बाद देकर इलाहाबाद अधिवेशन का आयोजन किया। दूसरी तरफ उग्रपंथी नेताओं ने नया संगठन बनाने में असफल हुए। फलस्वरूप अखिल भारतीय राष्ट्रीयतावादी आंदोलन उग्रपंथी और नरमपंथी के बीच में फंस कर रह गया।

कुछ बातें

कांग्रेस का विभाजन : रवीन्द्रनाथ का विश्लेषण

कांग्रेस को यह अवधारण स्पष्ट हो गई कि अब नरमपंथी और उग्रपंथी एक नहीं रह पायेंगे।

इसबार कांग्रेस एक उपद्रव करने की आशंका सभी के मन में जमी जो ठीक रूप से स्पष्ट नहीं होती है कि वह कैसे हो। दोनों दलों अपने-अपने शक्ति और साधनो को विकसित करने के उद्देश्य से संगठित होते गये।

.....

इस प्रकार कांग्रेस अध्यक्ष किसी प्रकार की अप्रिय घटना स्वीकार नहीं करेंगे। मानो ऐसा प्रण लेकर आये हो। इसे स्वीकार करने की आशंका उनमें थी।

उग्रपंथी का एक दल इसी कारणों से जाग उठा है, इस पर टिप्पणी कर सकते है लेकिन आपेक्ष नहीं इनकी सत्य को जानने के लिये हमे कांग्रेसियों की यात्रा में कुछ दूर तक देखना होगा सभापति महोदय के भाषा से उनके विचार व्यक्त होगा। प्रत्येक पात्र के मंतव्य को समझने में आसानी होगी। उनका मंतव्य था कि अंग्रेज साम्राज्य रूपी जहाज को एक किनारे पहुँचा कर उसके विचारों को एक करके अंग्रेजो का लक्ष्य एक हो अर्थात् किनारा मिल जाये भारतीय विद्रोहियों को एक पहचान देना।

परन्तु फिर से उग्रपंथी और गरमपंथी एकबार फिर ब्रिटिश शासकों के विरूद्ध कमर कस लिया और कांग्रेस के कर्मक्षेत्र में सामने आये— ये मध्यपंथियों को एक दिन अपने मूल उद्देश्य को पकड़े चले आयेंगे। अपने वास्तविक उद्देश्य को प्रकट करेंगे। अतः यह इसी बार कहना होगा इस बार जयगान, जय ध्वंजा उठाया नहीं गया। लेकिन कांग्रेस गरमपंथियों से एक नवीन ध्वनि उत्पन्न हुई जो कि एक नवीन चेतना का प्रसार कर रही थी।

.....

विरोधी पक्ष के सत्य के यथेष्ट रूप में स्वीकार न करने के कारण ही कांग्रेस में विभाजन हुआ।

[प्रस्तुत अंश रवीन्द्रनाथ ठाकुर 'यगभंग' प्रबन्ध से लिया गया व्यवहार के अलावा मूल अक्षर अपरिवर्तित]

बंगाल में बंगभंग विरोधी आन्दोलन

बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशकों में बंगाल में बंगभंग विरोधी स्वदेशी आन्दोलन चरमपथ पर था बंगाल विभाजन के कारण सारा देश जल रहा था विशेषकर बंगाल। अन्त तक यह आन्दोलन को केन्द्र करके सर्वभारतीय स्थान नरमपंथी या उग्रपंथी ये अपने वास्तविक रूप में इस आन्दोलन में उपस्थित था। लार्ड कार्जन द्वारा प्रस्तावित बंगाल विभाजन के विरोध में सारा भारतीयों का आन्दोलन एक हो गया। बंगभंग का विरोध करते हुए आगे बढ़े।

इसका मूल कारण था कि बंगाल प्रमुख राज्य था जो अंग्रेजो के खिलाफ विरोध तथा

लार्ड कर्जन

विद्रोह में सक्रिय था। ब्रिटिश सत्ता को केन्द्र करके यह राज्य सर्वाधिक उपद्रव कर रहा था। यहाँ कि जनता इस विद्रोह का मूल केन्द्र बना रखे जिसे तोड़ने के लिये लार्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन किया। प्रशासनिक समस्याओं, कार्यक्रम तथा असुविधाजनक स्थिति के आधार पर बंगाल विभाजन की बात सामने आयी 1874 ई० में असम (असम राज्य) को बंगाल की भूमि से अलग कर दिया गया। सन् 1901 ई० में कर्जन के कार्यकाल में जनगणना में देखा गया कि बंगाल की जनसंख्या 7 करोड़ 80 लाख के लक्ष्य को पार कर गया। जिससे बंगाल विभाजन का निर्णय कर्जन ने किया। सन् 1905 ई० 19 जुलाई बंगाल विभाजन के परिकल्पना की घोषणा किया गया। उसी साल 16 अक्टूबर को यह परिकल्पना को कार्यरत किया गया।

प्रमुख स्थायी प्रश्न यह उठता है कि केवल प्रशासनिक रुप से या फिर बंगाल में चल रहे ब्रिटिश उपनिवेश के विरोध को ढकने के लिये किया गया जन विरोधी निर्णय था लेकिन धर्मभीरू विभाजन में राष्ट्रीयतावादी नेतृत्व उपनिवेशवाद सरकार की भेदभाव की नीति प्रमुख दोष थी। प्रमुख रूप से बंगालियों के राजनीतिक विरोधिता सम्भावना दुर्बल करने की नीति से बंगाल का विभाजन किया गया। उच्च वर्ग हिन्दू-बंगाली सभ्य लोग साथ ही साथ अन्य मनुष्य शिक्षा अच्छी जीविकाएँ दे, सुयोग देने के लिए यह निर्णय लिया गया है ऐसा उपनिवेश शासक मानते है।

प्रमुख रूप से कभी भी बंगाल का विभाजन औद्योगिक उन्नति के लिए नहीं वह केवल मात्र ब्रिटिश साम्राज्यवादियों के विकास के लिए हुआ। 1890 ई० में बंगाल में अकाल पड़ा। जिससे अर्थ व्यवस्था को काफी हानि पहुँची तथा जिसके फलस्वरूप खाद्य पदार्थ के दाम दिन प्रतिदिन बढ़ते गए। उसके बाद दिये गए यह ब्रिटिश निर्णय बंगबासिओं के लिए विद्रोह की बात थी। यह आन्दोलन सामाजिक तथा राजनीतिक स्तर पर काफी जोर पकड़ा हुआ था तथा सम्पूर्ण देशवासी इस आन्दोलन में अपना योगदान दे रहे थे।

कुछ बातें

स्वदेशी युग : अवनीन्द्रनाथ ठाकुर की दृष्टि में

भूमिकम्प के वर्ष में सेरा नाटोर गया सभी मिलकर, प्रोभिंसियाल कॉन्फ्रेंस हुआ। वहाँ रवि चाचा ने प्रस्ताव दिये, बोले यह कार्य बांग्ला भाषा में होगा-सभी समझेंगे। हम सभी लड़के रवि चाचा के दल में थे। चाईरा बोले जैसे कांग्रेसियों का होगा। पंडाल में गया, इस प्रकार का वक्तव्य देकर उठ खड़ा हुआ। अंग्रेजी उसी प्रकार का होगा प्रभिन्सियाल कान्फ्रेंस। अंग्रेजी के अलावा भी बांग्ला के प्रयोग तथा बांग्ला भाषियों के दबाव से कान्फ्रेंस में बांग्ला का प्रयोग प्रारम्भ हुआ। इसलिए हम बांग्ला भाषा के लिये लड़े। .....

मैंने भारतमाता के छवि को अंकित किया। ..... रवि चाचा के गाने तैयार किये, दिनु के ऊपर मार पड़ा, वह दलबल लेकर ध्वजा लेकर उसी गाने को गाता हुआ चोर बगान घूम चंदा उठाने लगा। तब सब स्वदेश के कार्य सभी स्वदेशी तरीके से नहीं होते। अपने समाज को भी बदल डाला। .....

.....

तब स्वदेशी युग में घर में चरखा काटे, ताँत बना, ...। मन में याद आया इस बगान के सूते। छोटी-छोटी गमछा धोती तैयार कर माँ हमलोग को देती ..... वहीं छोटी धोती घुटनों के ऊपर उठाते, उसके बाद हमारा उत्साह और अधिक होता।

.....

रवि चाचा एकदिन बोले राखी बन्धन (रक्षा बन्धन) उत्सव करना होगा हमलोग, सबके हाथों के कलाई राखी बांधना होगा। ..... उसी प्रकार हुआ सुबह सभी गंगा स्नान कर सभी के हाथो में राखी बांधेंगे। उसी सामने के जगन्नाथ घाट के पास सभी प्राय: घाट पैदल पहुँचे तब घोड़ा गाड़ी नहीं थी। ..... रवाना हुए सभी गंगा स्नान किया, सभी बाड़ी घरों के छतों तथा रास्ते के दोनों किनारो तक लोग खड़े होकर देख रहे थे। सभी लड़कियाँ शंख ध्वनि बजाते हुए सभी अपने बंधु-बांधओं के साथ लड़का-लड़की रास्ते में शोभा यात्रा में देशप्रेम के गीत गाते हुए चले। बंगला माटी, बंगला जल, बंगला वायु, बांग्ला फल—/ पूर्ण हो, पूर्ण हो पूर्ण हो हे भगवान।

इस गाने के समय तैयारी हुआ घाट में सुबह से लोग, रवि चाचा को देखने के लिए हमारे चारो ओर जल में प्रवेश करता स्नान पूर्ण हुआ और साथ आयी राखियों का देर से एक-एक सभी ने एक दूसरे के हाथों में बाँधा। दूसरी को भी राखी बाँधी गयी। रास्ते में चलते-चलते ही राखी बंधी गई। कोई-कोई छूटने नहीं पाया। गंगा घाट पर व्यापक भीड़ हुई। वहाँ से चितपूर रोड जाने का आदेश हुआ तथा वहाँ मस्जिद के सभी लोगों को राखी बाँधने का आदेश दिया गया वहीं हुआ सभी को राखी बाँधी गई।

.....

हमलोग का कार्य काफी अच्छा हुआ इस प्रकार यह विचार किया गया कि देश की जनता सभी इसका प्रयोग करेगी। यह सोचा गया के देश में कुछ और नया किया जाये। विदेशी पदार्थो को एकत्र कर उसे बेचना तथा एकत्र धन का जन आन्दोलन में प्रयोग लेकिन रवि चाचा के कहने पर यह कार्य जनसाधारण के इच्छा के अनुसार किया जाना चाहिए नहीं तो यह कार्य जनविरोध, विदेशी कपड़ा जलाये गये विदेशी वस्तुओं का बहिस्कार तथा जनता में एक जनसभा के द्वारा कार्य किये गये।

[उद्धत अंश अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के घरोआ रचना से लिया गया था। ('व्यवहार के अलावा मूल अक्षर अपरिवर्तित' है।]

भारतमाता

बंगभंग के विरोध स्वदेशी आन्दोलन के वास्तविक आन्दोलन के रूप में उठ खड़ा हुआ। कारण आन्दोलन के अधिकांश नेता बड़े शहरो या उच्च शिक्षित, भद्रलोक के सम्मुख के रूप में जाने जाते थे। फलस्वरूप सामाजिक, सांस्कृतिक और अर्थनीतिक रूप से अधिक से अधिक जनसाधारण की भागीदारी की कर्मसूची तैयार किए। स्वदेशी नेतृत्व व्यर्थ हुए थे। इसके अलावा स्वदेशी वस्तुओ के व्यवहार के लिए अनेक क्षेत्र साधारण गरीब मनुष्य के ऊपर जोरजुलुम किया जाता। अर्थ से अधिकांशत: विदेशी वस्तुओ का मूल्य स्वदेशी वस्तुओं के तुलना में कम था। स्वदेशी वस्तुओं का मूल्य अधिक होने के कारण विदेशी वस्तु खरीदने को बाध्य थे गरीब जनता। उपयोगी वस्तुओं की कीमत स्वदेशी वस्तुओं से कम कर अर्थ व्यवस्था को नष्ट कर रही थी। इस प्रकार स्वदेशी नेताओं ने श्रमिक तथा किसान संगठन तैयार कर तथा व्यापारी वर्ग को साथ जोड़ तथा हड़ताल (बन्ध) का आह्वाहन किया जो कि व्यापारिक दृष्टि से हड़ताल करने वाले। उग्रपंथी नेता इसमें शामिल हुए तो कुछ धार्मिक पक्ष का सहारा लेकर लोगों को संगठित किया। जिससे धार्मिक हिन्दूवादी लोग उसमें कूद पड़े फलस्वरूप संगठन मुसलमान और अधिकांश किसान इस उग्रपंथी आन्दोलन से जुट नहीं पाये।

कुछ बातें

स्वदेशी शिल्प

स्वदेशी आन्दोलन के दिनों में कई स्वदेशी उद्योग उत्पन्न हुए देशी-विदेशी बड़े-बड़े कारखानो में तैयार माल के तुलना में स्वदेशी छोटे-छोटे शिल्प के रूप में उत्पन्न हुए कारखानो के माल को अधिक महत्त्व मिलता था छात्रो को जापान से कारीगरी की शिक्षा देने के पाठ्यक्रम तैयार किये गये जिसके लिए एकबिल गठित किया गया। सन् 1306 ई० चालू हुआ बंगलक्ष्मी कार्टन मिल। चीनी मिट्टी बर्तन, साबून देशी तरीको से तैयार देशी मशीन मूलधन के अभाव में स्वदेशी शिल्प अधिक दिनो तक चल नहीं सका। तब प्रफूल्लचन्द्र राय ने बंगाल केमिकल एण्ड फार्मासिउटिकाल वर्कस् कारखाने की स्थापना किये।

कुछ बातें

हिन्दू-मुसलमान के बीच भेदभाव : रवीन्द्रनाथ के विश्लेषण

"आज हमारे सभी यह जानते है कि ये अंग्रेज मुसलमानो को गुप्तरूप से हिन्दुओं के विरुद्ध उत्तेजित करते है। यदि बात सही भी है तो अंग्रेजो के विरुद्ध क्रोध क्यो करना। हमारे देश में अंग्रेजो को ऐसे अनेक सुयोग (सुअवसर) मिल जाते जिससे सांप्रदायिकता फैला सके। ऐसा क्या घटित हुआ कि अंग्रेज हमे निर्बोध कहकर निश्चित होकर रहेगे, ऐसा क्या घटा था।

मुसलमानों का हिन्दू विरोधी भाव हुआ तो यह अन्य विषय के रूप में देखा गया जो कि हमारे सामाजिक सौहार्द के अंश का महत्त्वपूर्ण विषय नहीं।

....

हमलोग वर्षो से एक साथ एक ही देश में रहते आ रहे, एक ही मिट्टी से उपजें अन्नखाने है एक नदियों के पानी पीते है। एक सूर्य की रोशनी ग्रहण करने वाले एक भाषा बोलने वाले लोग है। साथ ही एक दूसरे के सुख-दु:ख में साथ देने वाले लोग है। तब एक विरोधा भाषी विचार धारा का कोई महत्त्व नहीं है।

हमारे जानकारी में बांग्लादेश अनेक स्थान पर एक फर्श पर बैठ हिन्दू-मुसलमान बैठते है घरों में चादर का एक अंश मोड़ देते और पानी फेक देना होता है क्योंकि ऐसा शास्त्रो में कहा गया है।

स्वयं करो

स्वाधीनता संग्राम से संबंधित गीत, गान, लेख, कविता संग्रह करेंगे। तथा उनके प्रकार के बारे में लिखो।

हिन्दू-मुसलमान सम्बन्ध के लिये ऐसा कोई विधान नहीं है। यदि ऐसा होता तो स्वदेशवासियों द्वारा तैयार स्वदेशी चीजे कभी कहीं नहीं लाया जाता।

.....

यदि ऐसा होता तो हम सभी लोग घरों से निकलकर देश के लिये क्यो लड़ते। इस देश के सभी धर्म के लोगों के एकत्र होने स्वराज्य मण्डल को गठित किया तथा उसके विचार को प्रकट करे। हमारे देश में आशंका का कोई कारण नहीं था। हमारे भीतर विभिन्न अवस्था में सुव्यवस्था सम्पूर्ण रूप से प्रदान किया जिससे हमारा हृदय सब कुछ अधिक तेजवान हो गया। .....

अंग्रेजो के समय इस प्रकार से भारतवर्ष पर अपना दबाव बढ़ाकर बैठे थे। ..... लक्ष्य द्वारा बाधित ठीक प्रकार से विरोध नहीं कर पाते। दूसरो के लिये या बन्देमातरम् इसके प्रकार के कार्य करना कोई सहज कार्य नहीं थे।

विदेशी राजा के चले जाने तथा स्वदेशी राज हो जाने से भी ऐसा ही यह नहीं। दशकों पर दशक चलेंगे तथा देश के निर्माण के लिए अन्न, वस्त्र, सूख सुविधा, शिक्षा दीक्षा दान देशवासियों की देश जनसाधारण सर्वप्रधान सम्प्रदाओं के समान के लिये अपने प्राण लेने होंगे। इसके लिये लोगो को भी समझना होगा तथा उनका साथ देना होगा। देश में आज अंग्रेजी पढ़े शिक्षित लोग गाँव जाकर कहते है कि ये 'हमारे भाई है', और यह भी कि ये अशिक्षित है यह कुछ भी नहीं समझते .....। कोई स्वदेशी विख्यात नेता के द्वारा यह सुना गया कि इस बंगलादेश पूर्व बांग्ला मुसलमानी सितारा उनका वक्तव्य सुनकर परस्पर बोले वे बाबुओं की नीति है लोगों को विपत्ति में डाल देते थे। इस प्रकार उन्हें परेशान करते किन्तु चाचा ठीक समझा बाबुओ को संभाषण ठीक सूर को समझने में उसके देर नहीं लगती। उद्देश्य साधारणत: समझना और यही उद्देश्य जब खूब बढ़े हो जाते तो उसको स्वराज का रूप दे दिया जाता अंग्रेजी शिक्षा यदि हमारे बीच मनुष्य कहकर कुछ है तो उसे तोड़ने में नहीं बल्कि जोड़ने में है। यदि हमने कार्य किया तो हमे उनसे दूर होकर नहीं बल्कि उस समाज के साथ मिलकर कार्य करना होगा तथा उनके सहयोग से ही आगे बढ़ना आलस्य तथा लापरवाही से हमारे सामने समस्याए ही उत्पन्न होगी। लेकिन यदि हम उनके साथ कार्यरत होते ही विपत्ति या क्षति के समय वे हमारे साथ होने।''

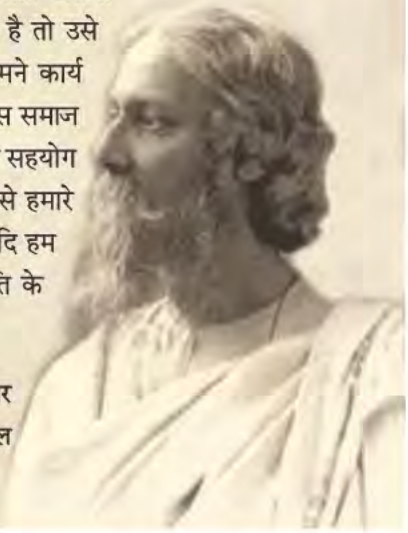

[उद्धृत अंश रवीन्द्रनाथ ठाकुर के बाधि और प्रतिकार निबंध से लिया गया है। व्यवहार के अलावा मूल अक्षर अपरिवर्तित है।]

कुछ बातें

राष्ट्रीय शिक्षा

स्वदेशी आन्दोलनों के फलस्वरूप अंग्रेजी भाषा तथा अंग्रेजी शिक्षा तथा प्रतिष्ठान के प्रति विरोध तैयार हुआ। मातृभाषा समस्त विषय पाठ्यक्रम पढ़ाने के लिए तैयार हुआ। रवीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा स्थापित शांतिनिकेतन इसी का उदाहरण है। 1906 ई० प्रारम्भ हुआ राष्ट्रीय शिक्षा परिषद (नेशनल काउंसिल एण्ड एडुकेशन) बंगाल नेशनल कॉलेज/ बंगाल टेकनिकल इंजीनियरिंग एवं कुछ राष्ट्रीय विद्यालय तैयार हुआ। अनेक छात्र राष्ट्रीय विद्यालयों में भर्ती हुए पूर्व बंगाल में अनेक राष्ट्रीय विद्यालय बने। छात्र-छात्राओं के विद्रोही आन्दोलन में कार्य करने लगे। पैसो की कमी से यह राष्ट्रीय विद्यालय के कार्यों में बाँधा पहुँचाते थे।

विद्रोही विचारधारा

सतीशचन्द्र बसु

स्वदेशी आन्दोलन के अन्तिम दिनो में क्रांतिकारी विचार का विकास देखा गया। इसकी विद्रोही विचारधारा का मूल स्थान विभिन्न क्रांतिकारी गुप्त समिति थी। आपातकलीन स्थितियों में ये समितियों का संचालन अत्यन्त गुप्त रूप से होता था। जिसके माध्यम से स्वदेशी विचारधारा का प्रचार किया जाता था। सन् 1908 में मूलरूप से स्वदेशी आन्दोलन के शिथिल होते ही उग्रवादी, क्रांतिकारी आन्दोलन अपने गति से और अधिक तीव्रतर होकर विद्रोही चेतना का प्रचार करने लगा। ब्रिटिश हुकुमत तथा उसके सहयोगियो को चिन्हित कर उनके विरोध में अपनी गति विधि प्रारम्भ कर दिया गया। जनसाधारण से जुड़े होने के कारण व्यक्ति विशेष को अपने कर्मसूची में शामिल करना पड़ा जिससे ब्रिटिश और भी मुश्किल में पड़ गये।

अनुशीलन समिति का प्रतीक

राजनैतिक प्रतिवाद और प्रतिरोध के रूप में व्यवहार 1857 ई० विद्रोह को ध्यान में रखकर 1876-1877 ई० तक महाराष्ट्र के वासुदेव बलवन्त फडके साधारण मनुष्यों को लेकर एक संगठन बनाया। ब्रिटिश विरोधी कार्यो को करने के लिये आवश्यकता पड़ी धन की। पैसो के लिए वे डकैती करवाने तथा उससे विरोधियों के खिलाफ प्रयोग करते थे। इनके पकड़े जाने पर भी यह विरोधी धारा कई भागों में चल रहे थे तथा विभिन्न कार्यो के माध्यम से धन की आवश्यकता पूरी कर क्रांति को आगे चलाते। बंगाल के शरीर चर्चा के प्रतिष्ठान को केन्द्र में रखते हुए विभिन्न क्रांतिकारी दलो का गठन हुआ। 1902 ई० कलकत्ता में तीन तथा मेदिनीपुर में एक दल तैयार हुआ। इनमें से एक सतीन्द्रनाथ बसु द्वारा संगठित 'अनुशीलन समिति' एक विख्यात संगठन के रूप में सामने आया जहाँ विद्रोहों को काफी गोपनीय रूप से चलाये जाते थे।

जतीन्द्रनाथ मुखोपाध्याय
बाघा जतीन

सन् 1905 ई० बंगाल विभाजन विरोधी आन्दोलन के समय बंगाल के विभिन्न क्षेत्रों में नवीन समितियाँ स्थापित होने लगी। सन् 1906 ई० 'पुलनबिहारी दास' के नेतृत्व में ढाका अनुशीलन समिति तैयार हुआ। सारा बंगलावासी विद्रोहियों का सम्मेलन आयोजित हुआ। युगान्तर पत्रिका का सम्पादन प्रारम्भ हुआ। अर्थ इकट्ठा हुआ। कलकत्ता के मानिकतल्ला में 'बम' बनाने का कारखाना तैयार किया गया। 1908 ई० 30 अप्रैल को खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी ने बंगाल प्रेसीडेन्सी के मैजिस्ट्रेट किंग्सफोर्ड को मारने का निर्णय किया।

किंग्सफोर्ड को मारने का प्रयास विफल होने पर वे बंगाल क्रांतिकारी समिति को चलने के लिए उनको सरकारी दमन का सामना करना पड़ा। कलकत्ता के मानिक तल्ला का बम कारखाना पकड़ा गया। विभिन्न विद्रोही नेताओ की गिरफ्तारी हुई अथवा उन्हें कारावास दिया गया। तब बंगाल के क्रांतिकारी दल को बहुत बड़ा धक्का लगा।

उपनिवेशवादी के विरोध में किया गया आन्दोलन एवं प्रयास स्वाधीनता प्राप्ति को अधिक सफलता नहीं मिली। विद्रोहियों का कार्य-कलापों में शिथिलता देखी गयी। क्योंकि क्रांतिकारियों को गिरफ्तारी से उनके अन्य सहयोगी पकड़े गये। उनके कार्य कलाप गुप्त होने के कारण उनकों अधिक जन समर्थन नहीं मिल पाया। लेकिन उनको कार्यक्रम करने के लिए वे लोग प्रयास करते थे। उनके इन क्रिया कलापो में उग्रवादी विचारधारा थी लेकिन कुछ नरमपंथियों की भिक्षावृत्ति से कही अच्छे होने का सम्मान दिया इसके विरोध में सन् 1909 ई० मार्ले-मिन्टो सुधार के माध्यम विभिन्न क्रांतिकारियों के कार्यक्रम को एक निर्यात करने का विचार पास किया।

जन मार्ले

कुछ बातें

मार्ले-मिन्टो सुधार कानून

उन्नीसवीं शताब्दी में भारतीय प्रतिनिधि मूलक स्वशासन के विचारों दबाव का सामना अंग्रेजो को करना पड़ा। बंगभंग के समय उग्रपंथियों के द्वारा किया गया क्रिया-कलाप ब्रिटिश शासकों को चिंता में डाल दिया। इस समय बंगाल महाराष्ट्र के क्रांतिकारी एक होगा।

ऐसे परिवेश में भारत पहुँचे लार्ड मिन्टो और भारत सचिव मार्ले 1909 ई० यूनियन काउन्सिल एक्ट पास किये इसके अन्तर्गत कार्यक्रम आयोजित किया इस कानून में कार्यनिर्वाहक परिषद और प्रादेशिक कानून परिषद के सदस्यों की संख्या बढ़ायी गयी। इस प्रकार अंग्रेजो ने उग्रपंथी के विरोध में नरम पंथी को सामने किया ये सभी आन्दोलन नरमपंथियो के विचार में दुर्बल था। अन्य मुसलमानों को अलग निर्वाचन का अधिकार दिया इस प्रकार हिन्दू मुसलमान के साम्प्रदायिक भावनाओ को उकसाया और लड़ाने की पूरी कोशिश की।

आर्ल अभ मिन्टो

सन् 1911 ई० में बंगाल विभाजन रद्द किया गया और भारत की राजधानी कलकत्ता से दिल्ली कर दिया गया। बंगाल विभाजन रद्द होने के बाद भी उग्रपंथी क्रांतिकारी का विद्रोह शान्त नहीं हुआ उत्तर भारत में विद्रोह का संग्राम चल रहा था। बंगाल के यतीन्द्रनाथ मुखर्जी (बाघा जतीन) जर्मनी से अस्त्र शस्त्रों से प्राप्त कर अंग्रेज सरकार के विरोध लड़ाई जारी रखने की बात करते तथा यह युग जारी रखा। उड़ीसा के बालाशोर तट पर नौकाओं से हथियार उतारते समय अंग्रेजो को इसकी खबर लग गयी और वही लड़ाई लग गयी। इससे बुदीकलम या कोपादपेदा का युद्ध कहते है जिसमें यतीन्द्रनाछ मुखर्जी शहीद हुए।

कुछ बातें

किंग्सफोर्ड हत्या का प्रयास

विचारक रूप से किंग्सफोर्ड मारा गया यह माना था बंगाल के क्रांतिकारियो ने। सन् 1908 ई० 30 अप्रैल मुजफ्फरपुर में किंग्सफोर्ड को लक्ष्य करके बम फेका खुदीराम बोस और प्रफूल्ल चाकी ने लेकिन अंधकार में उनका ध्यान नहीं दिया। किंग्सफोर्ड के गाड़ी में वह खुद नहीं था वहाँ मिस्टर एण्ड मिसेस कैनेडी थे। बम के कारण वे मारे गये। दूसरे दिन खुदीराम रिवाल्वर समेत पकड़ा गया। प्रफूल्ल चाकी स्वंय को गोली मार दिये लेकिन अंग्रेजो के हाथ नहीं आया। अदालत में खुदीराम बोस को फाँसी देने का आदेश दिया गया। उनके याद में गीत लिखा गया 'एकबार विदाय दे माँ घूरे आसि।'
[एकबार विदाई दे दो माँ, मैं लौटकर आता हूँ।]

खुदीराम बोस

सोचकर देखों
ढूंढकर देखों

1। उचित शब्दों को खाली स्थानो में भरो :

क) राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशण कहाँ हुआ— (बम्बई / गोवा / मद्रास)

ख) नरमदल सिविल सेवा परीक्षा की उम्र कितना करने को कहती थी— (21 / 23 / 20) वर्ष।

ग) बंगाल विभाजन किसने किया— (डाफरिन / कर्जन / मिन्टो)

घ) बंगाल विद्रोही आन्दोलन संघ किसने बनाया— (युगान्तर / हिन्दू पैट्रियाट / सोमप्रकाश) पत्रिका।

2। निम्नलिखित प्रश्नों में कौन सही कौन गलत है, उन्हें चुनिये :

क) कांग्रेस के सबसे पहला सभापति उमेश चन्द्र बन्दोपाध्याय थे।

ख) नरमपंथी उग्रपंथियों के क्रिया-कलापो को 'तीन दिनों का तमाशा' कहते थे।

ग) आर्थिक राष्ट्रीयतावादी के प्रवर्तक अरविन्द घोष थे।

घ) खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी किंग्सफोर्ड को मारने गये थे।

3। अति संक्षिप्त में उत्तर दो (30-40 शब्दों में) :

क) सभासमिति युग किसे कहते है?

ख) कांग्रेस के नरमपंथी और उग्रपंथी के बीच के दो अन्तर को लिखो।

ग) सन् 1907 ई० कांग्रेस के सूरत के अधिवेशण का क्या महत्त्व है?

घ) 20 वीं शताब्दी के प्रारम्भ में बंगाल में गुप्त समितियाँ क्यों बनने लगी?

4। अपने शब्दो में उत्तर दो (120-150 शब्दों में) :

क) राष्ट्रीयतावादी कांग्रेस के स्थापना में ह्यूम के भूमिका की समालोचना विश्लेषण करो। तुम्हारे मत में क्या ह्यूम के ना होने पर राष्ट्रीयतावादी कांग्रेस की प्रतिष्ठा होती? अपने उत्तर तर्क पूर्ण दीजिए।

ख) अर्थनीति राष्ट्रीयतावाद मूल तथ्य क्या था? इसके प्रति तुम स्वदेशी आन्दोलन कौन सा युक्त पाते हो? तर्क पूर्ण उत्तर दें।

ग) उग्रपंथी आन्दोलन का मूल वक्तव्य क्या था? उनके आन्दोलन धर्मीय प्रतीक को तुम क्या समर्थन करते हो? तर्कपूर्ण उत्तर दो।

घ) क्रांतिकारी स्वदेशी आन्दोलन पृष्ठभूमि किस प्रकार तैयार हुई? विद्रोही किन कारणों से व्यर्थ हुए तुम्हारे विचार क्या है?

5। सोचकर लिखो (200 शब्दों में)।

क) मान लो कि तुम एक उग्रपंथी नेता हो। बंगाल के विभिन्न भागो में तुम्हे आंदोलन करना है। अपने आंदोलन के मूल उद्देश्य को जनता के सामने रखकर उसकी एक रचना तैयार करो।

ख) मान लो कि तुम रवीन्द्रनाथ ठाकुर के नेतृत्व में एक स्वदेशी आन्दोलन में भाग ले रहे हो। राखी बंधन के महत्त्व बताते हुए अपने मित्र को एक पत्र लिखो।

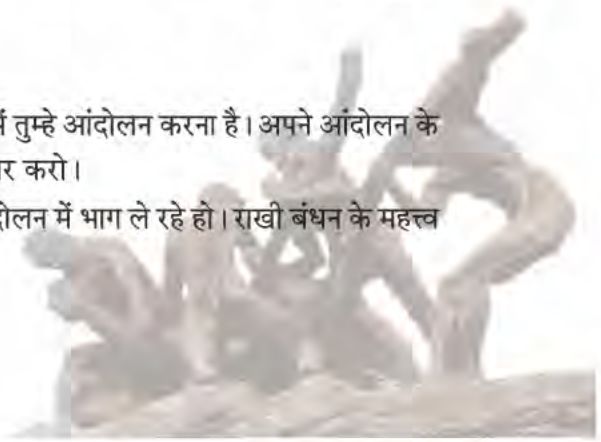

7 भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का आदर्श और परिवर्तन

भारत में उपनिवेश-विरोधी और स्वाधीनता के लिए आन्दोलन 1919 ई० एवं उसके बाद एक नई ऊँचाई तक पहुँचा था। इसी समय मोहनदास करमचन्द गांधी के नेतृत्व में राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा परिचालित आन्दोलन क्रमश: जन आन्दोलन का रूप लेता रहा। इसके साथ ही किसान, श्रमिकों के आन्दोलन भी चल रहे थे। वहीं वामपंथी विचारधारा से प्रभावित राजनीतिक कर्मी और संगठन भी उपनिवेश विरोधी संग्राम में हिस्सा ले रहे थे। मगर 1919 ई० से मोहनदास करमचन्द गांधी ही भारत में ब्रिटिश विरोधी आन्दोलन के प्रधान नेतृत्वकर्त्ता बने।

बीसवीं शताब्दी के शुरूआत में भारत में चल रहे उपनिवेश विरोधी आन्दोलन के साथ-साथ दो विश्वयुद्ध भी हुए। इनमें से पहले विश्वयुद्ध (1914-1919 ई०) के दौरान महात्मा गांधी भारत लौट आए थे। प्रथम विश्वयुद्ध का प्रभाव भारतीय समाज, राजनीति और अर्थनीति पर पड़ा था।

महात्मा गांधी : अहिंसा सत्याग्रह और स्वराज

गांधी द्वारा परिचालित संगठन में कई नए सोच और परिकल्पना की छाप पड़ी थी। कुछ आदर्शपूर्ण भावनाएँ भी गांधी के आन्दोलन की विशिष्टताएँ थीं। भारत में चल रहे आन्दोलन को नेतृत्व देने से पहले गांधी दक्षिण अफ्रीका में वर्ण विरोधी आन्दोलन कर चुके थे। उसी आन्दोलन से धीरे-धीरे गांधीवादी सत्याग्रह की धारणा तैयार हुई थी। दक्षिण-अफ्रीका में गांधीजी ने विभिन्न धर्म भाषा अंचलों के लोगों को साथ लेकर लड़ाई किया था। उस आन्दोलन के व्यापक स्तर पर प्रचार-प्रसार ने गांधी को विख्यात कर दिया। उस समय भारत के राजनैतिक नेता मूलत: एक-एक अंचल के नेता हुआ करते थे। लेकिन दक्षिण अफ्रीका के आन्दोलन के फलस्वरूप कोई भी विशेष आंचलिक भावमूर्ति (छवि) गांधी जी की नहीं बनी।

दक्षिण अफ्रीका में वर्ण विरोधी आन्दोलन में मोहनदास करमचन्द गांधी और उनके सहयोगी।

कुछ बातें

भारत पर प्रथम विश्वयुद्ध का प्रभाव

एशिया एवं यूरोप के छोटे-बड़े कई देश प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से प्रथम विश्वयुद्ध में शामिल हो गये थे। भारत भी इसका अपवाद नहीं था। ब्रिटिश सरकार द्वारा दिए गए आश्वासनों को मानकर भारत के नरम पंथियों ने ब्रिटिश सरकार का साथ दिया था। बहुत से भारतीय सैनिकों ने प्रथम विश्वयुद्ध में अपने प्राण गँवाए। रक्षा क्षेत्र का खर्च काफी बढ़ गया था। इसके परिणामस्वरूप जरुरी चीजों की कीमत भी काफी बढ़ गई थी। उस दौरान फसलों की पैदावर भी कम हो गई थी। 1918-1919 ई० के बीच हुए भयानक अकाल के कारण व्यापक स्तर पर फैल गए संक्रमण रोग से लाखों लोगों की मृत्यु हुई थी। भारत में मजदूर आन्दोलन पहले की तुलना में काफी मजबूती से आगे बढ़ा। आर्थिक संकट ने सामाजिक जीवन में विश्रृंखला की सृष्टि की। ब्रिटिश शासन के विरुद्ध भारतीयों का मोहभंग हुआ था।

गांधी के सत्याग्रह और 'अंहिसा' के आदर्श को पारस्परिक संबंध है। इन दोनों को एक साथ 'अंहिसा सत्याग्रह' भी कहा जाता है। गांधी का मानना था कि सत्य की खोज ही जीवन का परम लक्ष्य है। फलस्वरूप सत्य के प्रति आग्रह अथवा सत्य के प्रति निष्ठा राजनीतिक आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य होना चाहिए। साथ ही साथ हिंसा के द्वारा राजनीतिक प्रतिवाद प्रतिरोध प्रदर्शन करने वालों के गांधी कटु आलोचक थे। गांधी के आन्दोलन का चरित्र एक प्रकार से मानवधर्मी था। अर्थात् अधिकांश लोगों को आन्दोलन में शामिल करना ही अहिंसा सत्याग्रह की सफलता थी। लेकिन इसके साथ ही गांधी मानते थे कि अहिंसा और सत्याग्रह के आदर्श को आमजनों को कठोर रूप से पालन करना ही होगा। यद्यपि, गांधी द्वारा परिचालित आन्दोलन हमेशा ही अंहिसा के आदर्श को पूरी तरह माना हो, ऐसा भी नहीं था। स्वाभाविक रूप से इससे व्यथित होकर गांधी ने हिंसात्मक हो चुके आन्दोलन को रद्द करने का उदाहरण भी रखा था।

कुछ बातें

मॉन्टेग्यू सुधार संस्कार

प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों को दिए जाने वाले जिन अधिकारों की घोषणा की थी, उनमें से एक भी व्यवहार में नहीं लाया गया था। ऐसी स्थिति में भारत में स्वशासन आन्दोलन या *Home Rule Movement* तेज हो उठा था। उसी परिप्रेक्ष्य में भारत शासन कानून पास किया। इस कानून के अन्तर्गत केन्द्रीय और प्रादेशिक सरकारों के बीच विभिन्न अधिकारों का बँटवारा कर दिया गया। यद्यपि इनमें अधिकारों से भारतीय संतुष्ट नहीं थे। कारण यह था कि भारतीयों द्वारा प्रस्तावित माँगों को मॉन्टेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार में माना नहीं गया था।

कुछ बातें

गांधी जी का स्वराज चिन्तन

1909 ई० प्रकाशित में गांधी नें हिन्द-स्वराज नामक एक पुस्तक में अपने स्वराज संबंधी सामाजिक आदर्शों को स्पष्ट रूप से विश्लेषण किया था। उनका विचार था कि केवल उपनिवेशिक शासन या ब्रिटिश सरकार ही नहीं पाश्चात्य आदर्शों पर निर्मित सभी आधुनिक उद्योग ही भारत के आम लोगों के शत्रु हैं। गांधी का विचार था कि केवल राजनीतिक स्वराज की माँग आधी आजादी की माँग है। इसका कारण यह था कि भले ही व्यक्तिगत रूप से ब्रिटिश न रहे, मगर ब्रिटिश की मानसिकता रह जाएगी। फलस्वरुप केवल उपनिवेशिक शासन को हटा देने से ही काम नहीं चलने वाला। इसके साथ ही औपनिवेशिक शासकों द्वारा जिस तरह का समाज तैयार कर दिया गया है उसे भी विसर्जित करना होगा। गांधी का मानना था कि सबको ही किसानों की तरह सहज सरल जीवन यापन करना चाहिए। सहज-सरल इस जीवन में आदर्शों के साथ खादी की पोशाक पहनना और चरखा चलाना भी शामिल था। मशीनों पर निर्भर आधुनिक सभ्यता के प्रति गांधी की विरोधिता हिन्द स्वराज का मूल विषय है।

चरखा काटने में व्यस्त गांधी

स्वाभाविक था कि गांधी का पाश्चात्य और यंत्र निर्भर सभ्यता विरोधी बातें सबने पसन्द नहीं किया। गौर करने लायक बात यह है कि स्वयं गांधी ने अपने विचार को प्रचारित करने के लिए समाचार पत्र का सहारा किया था। जबकि समाचार पत्र स्वयं

आधुनिक यंत्र निर्भर सभ्यता का एक प्रमुख उदाहरण था। साथ ही साथ गांधी ने देश के विभिन्न हिस्सों में यातायात करने के लिए रेलवे की सुविधा ली थी।

कुछ बातें

चरखा और रवीन्द्रनाथ

".... स्वराज क्या चीज है। हमारे देश के नायकों ने स्वराज की कोई स्पष्ट व्याख्या नहीं की। स्वाधीनता का अर्थ बहुत व्यापक है। अपने चरखा पर अपना सूत काटने की स्वाधीनता तो हमे है। पर काटना नहीं क्योंकि मिल के सूत के साथ साधारण चरखे का सूत कोई मुकाबला नहीं कर सकता। यदि भारत के करोड़ों लोग अपना अमूल्य समय सूत काटने में व्यय करके चरखे के सूत की कीमत कम कर दे। यह ..... सम्भव नहीं..... । ..... दूसरी बात यह कि देश के सारे लोग अगर चरखा चलाए तो इससे भले ही कुछ आर्थिक संकट दूर हो, मगर यह भी स्वराज नहीं है। ....

.....

चरखा काटना स्वराज साधना का प्रधान अंग है, इस बात को यदि सर्वसाधारण स्वीकार कर ले तो मानना ही होगा, आम जनों की राय में स्वराज एक वाह्य रूप से फल की प्राप्ति है। इसीलिए देश की मंगलकामना के लिए आत्म प्रभाव का जो सारे चारित्रिक और सामाजिक प्रथाओं की बाधा है, उस मुख्य विषय से हमें अपने मन को हटाकर चरखा चलाने के ऊपर उसे निर्भरशील करने से लोग विस्मित नहीं होंगे, वरन् आराम महसूस करेंगे। ....

.....

स्वराज को यदि हम पहले केवल चरखे के सूत के रूप में ही देखें तो हमारा वही हाल होगा। इस प्रकार की अन्ध भक्ति के प्रति महात्मा जैसे लोग कुछ दिनों के लिए हमारे देश के कुछ लोगों के समूह को प्रभावित कर भी सकते हैं, क्योंकि उनका व्यक्तिगत महानता पर लोगों की अपार श्रद्धा है। यही कारण है कि उनके आदेश का पालन करना ही बहुत से लोग फल की प्राप्ति समझ लेते हैं। मेरा मानना है इस प्रकार की मानसिकता स्वराज अर्जन के लिए अनुकूल नहीं है। ....

उद्धृत अंश रवीन्द्रनाथ ठाकुर के निबन्ध स्वराज साधना से लिया गया है। (शब्दों को मूल रूप में ज्यों का त्यों रखा गया है।)

विभिन्न नियमावलियों के साथ-साथ गांधी ने अपने व्यक्तित्व को भी एक साँचे में ढाल लिया था। घुटने के ऊपर तक अति साधारण कपड़े पहनना, सहज भाषा में बातें करना। साथ ही गांधी ने ग्राम्य जीवन से संबंधित विभिन्न प्रकार के लोकधर्म का प्रतीक, धारणा करना शुरू कर दिया था। इसका परिणाम यह हुआ कि देश के अनगिनत लोगों के लिए मोहनदास करमचन्द गांधी 'अपना आदमी' बन गए।

लेकिन लोकप्रिय एवं लोकधर्म का एक साथ व्यवहार करना भी कभी-कभी उल्टा प्रतीत होता है। तुलसीदास कृत रामायण या रामायण इत्यादि प्रतीक और अवधारणा वास्तव में उत्तर और मध्य भारत के हिन्दू समाज के लिए ग्रहण योग्य था। लेकिन देश के अधिकांश संख्या में दूसरे धर्मावलम्बी समूह के सामने यह इन प्रतीकों का उतना महत्त्व नहीं था। इसलिए हिन्दू धर्म के धार्मिक प्रतीक के व्यवहार के फलस्वरूप गांधी के आदर्शों के मध्य का एक भाग सवेजनीयता नष्ट हो गया

महात्मा गांधी के नेतृत्व में तीन आंचलिक आन्दोलन

1915 ई० में गांधी दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटे। इसके बाद तीन सालों में तीन अंचलों के आन्दोलन के साथ युक्त हुए थे। अतीत में राष्ट्रीय कांग्रेस एक अखिल भारतीय कर्मसूची तैयार करते थे। उसके बाद अंचलों के अनुसार उन कर्मसूचियों को वास्तविक रूप देते। दूसरी तरफ महात्मा गांधी ने स्थानीय तीन विषयों को लेकर आंचलिक आधार पर आन्दोलन शुरू किया था। बिहार के चम्पारन में नील की खेती करने वालों किसानों को लेकर बहुत दिनों से नील की खेती के विरूद्ध में असंतुष्टि की सृष्टि हो रही थी। स्थानीय कुछ व्यापारियों शिक्षकों आदि ने किसानों के इसे प्रतिरोध आन्दोलन का नेतृत्व देना शुरू किया था। इस अर्थ में कहा जाए तो चम्पारन के आन्दोलन में गांधी की भूमिका कुछ सीमित थी। लेकिन स्थानीय किसानों के लिए गांधी रामायण के राम के स्वरूप थे। वे मानते थे कि गांधी के आ जाने से ठेका - किसान राक्षसी सौदागरों से डरना छोड़ देंगे। मगर चम्पारन का आन्दोलन कुछ विषयों में अहिंसात्मक सत्याग्रह की नीति का अतिक्रमण कर गया था।

गुजरात के खेड़ा जिले में गांधीवादी सत्याग्रह आन्दोलन शुरू हुआ था। वहाँ राजस्व की बढ़ी हुई आय के विरूद्ध किसानों की एकजुटता तैयार हुई थी। मगर राजस्व में नाममात्र की छूट दी गई थी। फलस्वरूप खेड़ा जिले का आन्दोलन विशेष सफल नहीं हो पाया था। इसके बाद गांधी ने अहमदाबाद के मिल मालिकों और श्रमिकों के बीच हो रही लड़ाई में हस्तक्षेप किया था। वहाँ श्रमिकों की माँग के अनुसार मजदूरी वृद्धि के आन्दोलन के पक्ष में गांधी ने अनशन शुरू किया। अन्ततः माँग से कुछ कम ही सही मगर मजदूरी में कुछ वृद्धि की गई थी। इस प्रकार 1919 ई० की शुरूआत तक भी अखिल भारतीय राजनीति में गांधी की भूमिका स्पष्ट नहीं थी। मगर रॉलेट कानून लागू करने को केन्द्र में रखकर गांधी ने अखिल भारतीय स्तर पर आन्दोलन की परिकल्पना की।

कुछ बातें

रॉलेट सत्याग्रह और जालियांवाला बाग की घटना

1919 ई० के मार्च में एस.ए.टी. रॉलेट के नेतृत्व में एक कमेटी ने दो बिल कानून सभा में पेश किया। इन दोनों बिलों में क्रान्तिकारी आन्दोलनों को रोकने के लिए ब्रिटिश सरकार के हाथों में और भी अधिक दमनात्मक क्षमता देने की बातें कहीं गई थी। इन दोनों बिलों के विरोध में महात्मा गांधी ने सत्याग्रह आन्दोलन किया था। इसी साल 6 अप्रैल को आम हड़ताल के माध्यम से राष्ट्रीय स्तर पर आन्दोलन शुरू हो गया था। तीन दिन के भीतर ही गांधी को जेल जाना पड़ा उसके बाद इस आन्दोलन ने हिंसात्मक रूप ले लिया था।

पंजाब राज्य में रॉलेट सत्याग्रह के विरूद्ध ब्रिटिश सरकार ने अत्यन्त ही दमनात्मक नीति अख्तियार कर ली थी। 13 अप्रैल 1919 को अमृतसर के जालियाँवाला

कुछ बातें

गांधी और अफवाह

महात्मा गांधी के नेतृत्व में चल रहे आन्दोलनों के एकजुट होने के पीछे अफवाह और जनश्रुतियों की भी बड़ी भूमिका थी। वस्तुतः अफवाह या जनश्रुति ही जनता को स्वतः स्फूर्त रूप से कई आन्दोलनों में खींच लाते थे। बहुत से लोग विश्वास करते थे कि गांधी एक क्षमतावान साधु की तरह हैं।

जैसे किसानों को विश्वास था कि गांधी जमींदारी प्रथा को रोक देंगे। वैसे ही असम के चाय-बगान के श्रमिक अपना काम छोड़कर चले आते और माँग करते कि उन्होंने गांधी के आदेशानुसार काम किया है। कहीं-कहीं गांधी देवता स्वरूप थे। बंगाल में भी उपजाति समूह के लोग मानने लगे थे गांधी का नाम लेते ही ब्रिटिश सरकार की गोली भी उन्हें कोई क्षति नहीं पहुँचा सकती। हालाँकि कई-कई बार ये आन्दोलन गांधी द्वारा घोषित मत और पंथ से अलग होकर विरोधी हो गये थे।

बाग में काफी संख्या में लोग निरस्त्र प्रतिवाद करने के लिए शामिल हुए थे और उन्हीं निरस्त्र लोगों पर भयंकर अत्याचार, सैन्यवाहिनी के कमाण्डर माइकल ओ डायर के नेतृत्व में चलाया गया। जालियाँवाला बाग से बाहर निकलने का केवल एक मात्र रास्ता था। उस रास्ते को रोककर प्रतिवाद कर रहे लोगों के ऊपर लगातार गोलीबारी होती रही। अंसख्य लोग मारे गए। इस अत्याचार के विरूद्ध कड़ा प्रतिवाद भारतीयों ने दिखाया था। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस बर्बर हत्याकाण्ड के विरोध में 'सर' की उपाधि का त्याग किया था।

अहिंसात्मक असहयोग से भारत छोड़ो आन्दोलन : महात्मा गांधी द्वारा किए जा रहे आन्दोलन का विकास

रॉलेट सत्याग्रह के बाद और भी तीन तरह से राष्ट्रीय आन्दोलनों का नेतृत्व गांधी ने किया था। क्रमश: वे थे— अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन, कानून तोड़ो आन्दोलन और भारत छोड़ो आन्दोलन। अवश्य ही गांधी ने असहयोग आन्दोलन से पहले खिलाफत आन्दोलन में योगदान दिया था। इस आन्दोलन का सूत्र पकड़कर भारतवर्ष के हिन्दू और मुसलमानों को एकजूट करके ब्रिटिश विरोधी आन्दोलन को आगे बढ़ाना ही गांधी का उद्देश्य था।

खिलाफत आन्दोलन का सूत्र पकड़कर ही 1921 ई० के जनवरी महीने में अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन का आह्वान किया गया। शुरू-शुरू में छात्रों ने स्कूल कॉलेज छोड़कर आन्दोलन में हिस्सा लिया था। बहुत से वकीलों ने अदालत से और मध्यवर्गीय लोगों ने सरकारी नौकरी से त्याग पत्र दे दिया। धीरे-धीरे यह आन्दोलन अहिंसा से निकलकर उग्र रूप धारण करता रहा। विदेशी वस्तुओं के बॉयकट के साथ-साथ खुलेआम विदेशी वस्त्रों को जलाया जाने लगा। असहयोग आन्दोलन के हिंसक रूप को देखकर अन्तत: गांधी ने आन्दोलन को स्थागित कर दिया।

कुछ बातें

चौराचौरी काण्ड

असहयोग आन्दोलन हर जगह अंहिसा पूर्ण नहीं था। गांधी कोशिश करके भी जनता को हमेशा संयम में नहीं रख पाए थे। हिंसा का चरम रूप प्रकट हुआ था उत्तर प्रदेश के गोरखपुर जिले के चौराचौरी ग्राम में। 1922 ई० के 4 फरवरी को इस गाँव के लोग प्रतिरोध करने के लिए इकट्ठा हुए थे। धीरे-धीरे पुलिस और जनता के बीच संघर्ष शुरू हो गया। जनता की ललकार पर सारे पुलिस वाले थाना के भीतर घुस गए। लोगों ने थाने का दरवाजा बाहर से बन्द करके आग लगा दिया। इस घटना को देखकर गांधी जी ने असहयोग आन्दोलन को स्थागित कर दिया था। उन्हें लगा कि देशवासी अभी भी अहिंसा आन्दोलन के काबिल नहीं हुए हैं। राष्ट्रीय कांग्रेस के कई नेता ने गांधी के इस सिद्धान्त की काफी आलोचना भी की।

कुछ बातें

खिलाफत आन्दोलन

प्रथम विश्वयुद्ध के समय ग्रेट ब्रिटेन ने तुरस्क के विरूद्ध युद्ध की घोषणा की। भारतीय मुसलमानों में इस घटना को लेकर तीव्र प्रतिक्रिया शुरू हुई। कारण यह था कि तुरस्क के सुल्तान इस्लाम जगत के खलिफा थे। 1918 ई० में तुरस्क के सुल्तान को गद्दी से हटा दिया गया। तुर्की के प्रति सहानुभूति रखने वाले मुस्लिम लीग के कुछ नेता ने खलिफा की मर्यादा और सम्मान की पुर्नस्थापना के लिए खिलाफत आन्दोलन शुरू कर दिया। 1919 ई० के मार्च महीने में खिलाफत कमेटी का गठन हुआ। इस कमेटी के महत्त्वपूर्ण नेता महात्मा गांधी थे।

स्वयं करें

तुम अपने स्थानीय अंचल में ऐसे किसी बुजुर्ग व्यक्ति की खोज करो जो स्वाधीनता संग्रामी थे। मिल जाए तो उनका उनलोगों के अनुभव का एक साक्षात्कार तैयार करो। साथ ही साथ स्थानीय अंचल में तुम्हारे हमउम्र लड़के-लड़कियाँ आजादी की लड़ाई के बारे में क्या जानते हैं। इसकी एक समीक्षा तैयार करो।

महात्मा गांधी के नेतृत्व में अहिंसात्मक आन्दोलन में भारतवासी। मूल चित्र- चित्तोप्रसाद भट्टाचार्य द्वारा चित्रित (1947 ई०)

असहयोग आन्दोलन के फलस्वरूप भारत में कपड़े आयात का प्रतिशत बहुत कम हो गया था। साथ ही साथ मजदूर और किसानों ने इस आन्दोलन में बढ़कर हिस्सा लिया था। यद्यपि शहरी शिक्षित मध्यवर्गीय व्यक्तियों ने इस आन्दोलन में अधिक साथ नहीं दिया था और खिलाफत आन्दोलन धीरे-धीरे थम भी गया था। राष्ट्रीय विद्यालय और देशी कपड़ों की लोकप्रियता भी क्रमशः कम हो गई थी। अंहिसात्मक असहयोग आन्दोलन पूरे भारत में नहीं फैल पाया था। अलग-अलग अंचलों में यह आन्दोलन अलग-अलग तरह से चल रहा था। मगर इस असहयोग आन्दोलन में उन लोगों ने भी साथ दिया जो पहले कभी कांग्रेस द्वारा परिचालित आन्दोलन में साथ नहीं दिया था। छात्र-युवक और नारियों ने असहयोग आन्दोलन में काफी बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया था।

अहिंसात्मक आन्दोलन के बाद कुछ सालों तक कोई नया आन्दोलन तैयार करने की स्थिति नहीं बन पा रही थी। गांधी स्वयं भी कई सालों तक जेल में रहे। जेल से निकलकर फिर वे अपना मन आदर्श सत्याग्रही तैयार करने में ध्यान लगाते रहे। दूसरी तरफ कांग्रेस संगठन के बीच भी नया विवाद उठ खड़ा हुआ था। कांग्रेस के बीच स्वराज पंथी नामक एक नया दल तैयार हो गया था।

चित्तरंजन दास

कुछ बातें

स्वराज दल

कांग्रेस के बीच से ही चित्तरंजन दास और मोतीलाल नेहरू आदि प्रमुख नेताओं ने गांधी के रास्ते से बाहर निकल आने की बात की थी। उनका मानना था कि सरकारी कानून व्यवस्था का बॉयकट न करके उसे मानना ही उचित है। अन्यथा सरकारी नीति और काम में बाधा उत्पन्न होगी। दूसरी तरफ गांधी पंथी पुराने रास्ते पर ही चलने में उत्साही दिख रहे थे। फलस्वरूप 1922 ई० के अन्त में चित्तरंजन दास और मोतीलाल नेहरू ने मिलकर 'कांग्रेस-खिलाफत-स्वराज दल' तैयार किया। यह दल कांग्रेस के बीच ही एक अलग दल के रूप में काम करता रहा। मगर कुछ नीतियों में अलग होकर भी गांधी के परामर्श पर दोनों दल कांग्रेस के साथ ही रह गए थे। चित्तरंजन दास की मृत्यु (1925 ई०) के बाद दोनों दल एक साथ मिल गए।

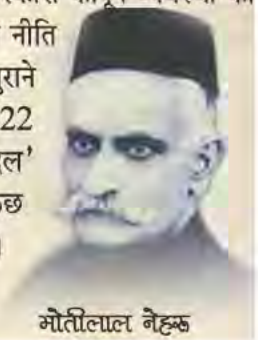

मोतीलाल नेहरू

साइमन कमीशन विरोधी जन आन्दोलन

1927 ई० के नवम्बर महीने में औपनिवेशिक सरकार ने भारतीयों को दिए जाने वाले संवैधानिक अधिकार पर नजर रखने के लिए एक कमीशन का गठन किया। सर जॉन साइमन के नेतृत्व में गठित इस कमीशन में एक भी भारतीय सदस्य नहीं था। इस कारण भारत के सारे राजनीतिक दलों ने साइमन कमीशन का विरोध किया। साथ ही साथ साइमन कमीशन के विरुद्ध में विभिन्न प्रकार से जन आन्दोलन शुरू हो गया। देशव्यापी हड़ताल में कमीशन को काला झण्डा दिखाकर आवाज उठती रही साइमन वापस जाओ। साइमन कमीशन-विरोधी आन्दोलनों के फलस्वरूप 1929 ई० में गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस ने पूर्ण स्वराज अर्जन करने की घोषणा की। गांधी को सामने रखकर सविनय अवज्ञा आन्दोलन का आह्वान किया गया। 6 अप्रैल 1930 ई० को गांधी ने गुजरात में डाण्डी मार्च करके नमक कानून भंग किया। समुद्र तट से एक मुट्ठी नमक उठाकर गांधी ने प्रतीकात्मक ढंग से भारत में औपनिवेशिक शासन को अस्वीकार किया।

इसके बाद ही बहुत तेजी से पूरे देश में सविनय अवज्ञा आन्दोलन फैल गया। आम जनता हड़ताल और जुलूस में हिस्सा लेने लगी। सरकार को कर देना बन्द करने के साथ ही विदेशी वस्तुओं का बॉयकाट करना शुरू कर दिया। किसानों ने जब राजस्व देना बन्द कर दिया तो सरकार द्वारा उनकी जमीन जब्त कर ली गई। व्यापक स्तर पर महिलाओं ने अवज्ञा आन्दोलन में हिस्सा लिया था।

खान अब्दुल गफ्फर खान। मूल चित्र नन्दलाल बसु द्वारा चित्रित है।

कुछ बातें

भारत के उत्तर-पश्चिम और पूर्वांचल सविनय अवज्ञा आन्दोलन

भारत के उत्तर-पश्चिम प्रान्त में अब्दुल गफ्फर खान के नेतृत्व में पठानों ने अवज्ञा आन्दोलन में हिस्सा लिया था। वे लोग अहिंसा गांधीवादी संग्रामी थे। उनके संगठन का नाम 'खुदाई-खिद्मतगार' था। लाल रंग के कुर्ता पहनने के कारण उन्हें लाल कुर्ता वाहिनी भी कहा जाता। गांधी जी के अनुसरण करने के कारण वे 'सीमान्त गांधी' के नाम से परिचित हुए। पेशावर में ब्रिटिश सेना सिपाहियों ने अहिंसा आन्दोलनकारियों के ऊपर गोली चलाने से इंकार कर दिया था। मणिपुरी और नगाओं में भी इस आन्दोलन की पहुँच हो चूंकि थी। नागा अंचल से युवा रानी गिदालो ब्रिटिश शासन विरोधी अभियान में शामिल हुई थी। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया था। 1930 के दशक में मौलाना अब्दुल गफ्फर

खान वासानी के नेतृत्व में सिलेट, मैमनसिंग आदि अंचलों में आन्दोलन संगठित हुआ था।

अवज्ञा आन्दोलन के विरूद्ध ब्रिटिश सरकार ने प्रचलित दमन नीति का सहारा लिया था। राजनीतिक संगठन के तौर पर कांग्रेस पर निषेध लगा दिया गया। साथ ही साथ राष्ट्रीय स्तर पर निकलने वाले समाचार-पत्रों पर कठोर विधि-विधान लागू कर दिया गया। इसी समय 1930 ई० में ब्रिटिश सरकार ने एक बैठक बुलाई। इस बैठक का उद्देश्य था साइमन कमीशन रिपोर्ट पर विचार करना। कांग्रेस ने इस बैठक का बहिष्कार किया था। फलस्वरूप दूसरी बार बैठक करने का निर्णय लिया गया। कांग्रेस की ओर से गांधी को भी इस बैठक में उपस्थित होने के लिए ब्रिटिश सरकार ने राजी कर लिया। इसके साथ ही लॉर्ड ईरविन के साथ गांधी के बीच एक सहमति हुई।

1932 ई० की शुरूआत से ही फिर से अवज्ञा आन्दोलन शुरू हो गया। विरोध जुलूस के साथ ही विदेशी वस्त्रों का त्याग या भूराजस्व कर न देने आदि का निर्णय लिया गया। 1932 से 1933 ई० तक इस आन्दोलन के कारण लाखों लोग जेल चले गये। मगर दूसरी तरफ किया गया यह अवज्ञा आन्दोलन उतना प्रभावी नहीं रहा। 1934 ई० के मई महीने में अवज्ञा आन्दोलन को नि:शर्त हटा लिया गया। असहयोग आन्दोलन की तुलना में अवज्ञा आन्दोलन में अवश्य ही कुछ विशेषताएं नजर आई थीं। जिस प्रकार असहयोग आन्दोलन के समय हिन्दू मुस्लिम एकता थी वैसी 1930 में नहीं दिखी। साथ ही इस सविनय अवज्ञा आन्दोलन में शहरी पढ़े लिखे लोग और मध्यवर्गीय लोगों का योगदान कम दिखा। उसी प्रकार 1930 ई० के आन्दोलन में मजूदरों का योगदान भी कम था। मगर किसान और व्यापारी वर्ग ने इस आन्दोलन में बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया था। इसके अलावा राजनीतिक दल के तौर पर कांग्रेस भी धीरे-धीरे सांविधानिक अधिकार पाने की लड़ाई में ज्यादा उत्साही हो चला था। इस तरह देखें तो राष्ट्रीय कांग्रेस गांधी द्वारा बताए स्वराज के आदर्श से धीरे-धीरे दूर होने लगा था।

कुछ बातें

गांधी ईरविन समझौता

4 मार्च 1931 ई० को गांधी और लॉर्ड ईरविन के बीच जो समझौता हुई उसे दिल्ली समझौता कहते हैं। इस समझौते में यह तय हुआ कि ब्रिटिश सरकार अहिंसक सत्याग्रहियों को छोड़ देंगे। ब्रिटिश वस्तुओं का बहिष्कार नहीं किया जा सकता। दमनात्मक कानून सरकार द्वारा भंग किया जाएगा। इसके बदले में कांग्रेस भी अवज्ञा आन्दोलन को खत्म कर देगा। साथ ही गांधी को लन्दन की बैठक में हिस्सा लेना होगा। मगर दूसरी बार हुई गोलमेज बैठक में गांधी हताश हुए। फलस्वरूप पुन: सविनय अवज्ञा आन्दोलन की शुरुआत हो गई।

लन्दन में दूसरी गोलमेज बैठक के दौरान विभिन्न प्रतिनिधियों के साथ महात्मा गांधी। मूल तस्वीर द सैन फ्रांसिसको एक्सामिनर पत्रिका में प्रकाशित (1931 ई० में)

कुछ बातें

1930 के दशक में कुछ क्रान्तिकारी उत्थान

मास्टर दा सूर्य सेन और जलालाबाद की लड़ाई

1930 ई० में चट्टग्राम (चटगाँव) में सूर्य सेन के नेतृत्व में क्रान्तिकारियों का उत्थान हुआ था। तय हुआ कि एक साथ ही चट्टगाँव, मैमनसिंह और बारिशाल में आक्रमण करना होगा। इसी योजना के अन्तर्गत सूर्य सेन के नेतृत्व में 1930 ई० के 18 अप्रैल को चटगाँव अस्त्रागार लूटा गया।

विनय

अस्त्रागार लूटने के बाद 22 अप्रैल को क्रान्तिकारियों ने जलालाबाद पहाड़ों पर आश्रय लिया। वहीं पर ब्रिटिश सेना के साथ क्रान्तिकारियों की लड़ाई हुई। इस लड़ाई में क्रान्तिकारियों के पक्ष से 11 लोग मारे गये। इसके बाद गुरिल्ला कायदे से युद्ध करने का फैसला लेकर क्रान्तिकारी जलालाबाद से चारों तरफ फैल गये। सूर्य सेन के साथ गणेश घोष, अनन्त सिंह, लोकनाथ बल, निर्मल सेन, हिमांशु सेन, विनोद दत्त आदि थे। सूर्य सेन 1933 ई० में पुलिस के हाथों पकड़े गये। 12 जनवरी, 1934 को उन्हें फाँसी दे दी गयी।

विनय-बादल-दिनेश और अलिन्द अभियान

बादल

8 दिसम्बर 1930 को विनय बसु, बादल गुप्त और दिनेश गुप्त ने रायटर्स बिल्डिंग पर आक्रमण किया। उनकी मदद की थी रसमय सुर और निकुंज सेन ने। विनय, बादल, दिनेश ने रायटर्स बिल्डिंग के अलिन्द में घुसकर कारा विभाग के इंस्पेक्टर जेनरल सिम्पसन सहित और दो लोगो की हत्या की। पुलिस वाहिनी के साथ क्रान्तिकारियों का लम्बे समय तक लड़ाई चली। अन्ततः पकड़े जाने के भय से बादल ने विष खाकर आत्महत्या कर ली। कुछ दिनों बाद घायल विनय की भी मृत्यु हुई। दिनेश के स्वस्थ हो जाने के बाद उसे भी फाँसी दे दी गई।

भगत सिंह

दीनेश

पंजाब में चन्द्रशेखर आजाद की प्रतिवादी हिन्दुस्तान रिपब्लिकन पाार्टी की सदस्यता भगत सिंह ने ली थी। उसके बाद भगत सिंह ने स्वयं भी नौजवान भारत सभा संगठन तैयार किया। भगत सिंह के अनुसरण करने वालों में रामप्रसाद बिस्मिल, असफाक उल्लाह थे। काकोरी स्टेशन पर रेल की सम्पति लूटने के जुर्म में ब्रिटिश सरकार ने भगत सिंह एवं उनके सहयोगियों के विरुद्ध काकोरी षड़यंत्र मुकदमा (1925 ई०) चलाया। इस मुकदमें में राम प्रसाद बिस्मिल, असफाक उल्लाह सहित चार लोगों को फाँसी दी गई।

ब्रिटिश पुलिस के हाथों मारे गये लाला लाजपत राय का बदला लेने के लिए भगत सिंह ने लाहौर पुलिस सुपर सैन्डर्स की हत्या की।

8 अप्रैल 1929 ई० को केन्द्रीय विधान सभा में भगत सिंह एवं बटुकेश्वर दत्त ने बम फेंका और स्वेच्छा से अपनी गिरफ्तारी दी। उस घटना में क्रान्तिकारी राजगुरू और सुखदेव सहित बहुतों को पकड़ा गया। ब्रिटिश सरकार ने इसी मामले में 1929 में लाहौर षड़यंत्र मुकदमा शुरु किया। 1931 ई० में इस मुकदमे के फैसले में भगत सिंह, बटुकेश्वर दत्त, सुखदेव और राजगुरु को फाँसी की सजा सुनाई गई। 'इन्कलाब जिन्दाबाद' शब्द को भगत सिंह और उनके सहयोगियों ने लोकप्रिय बना दिया।

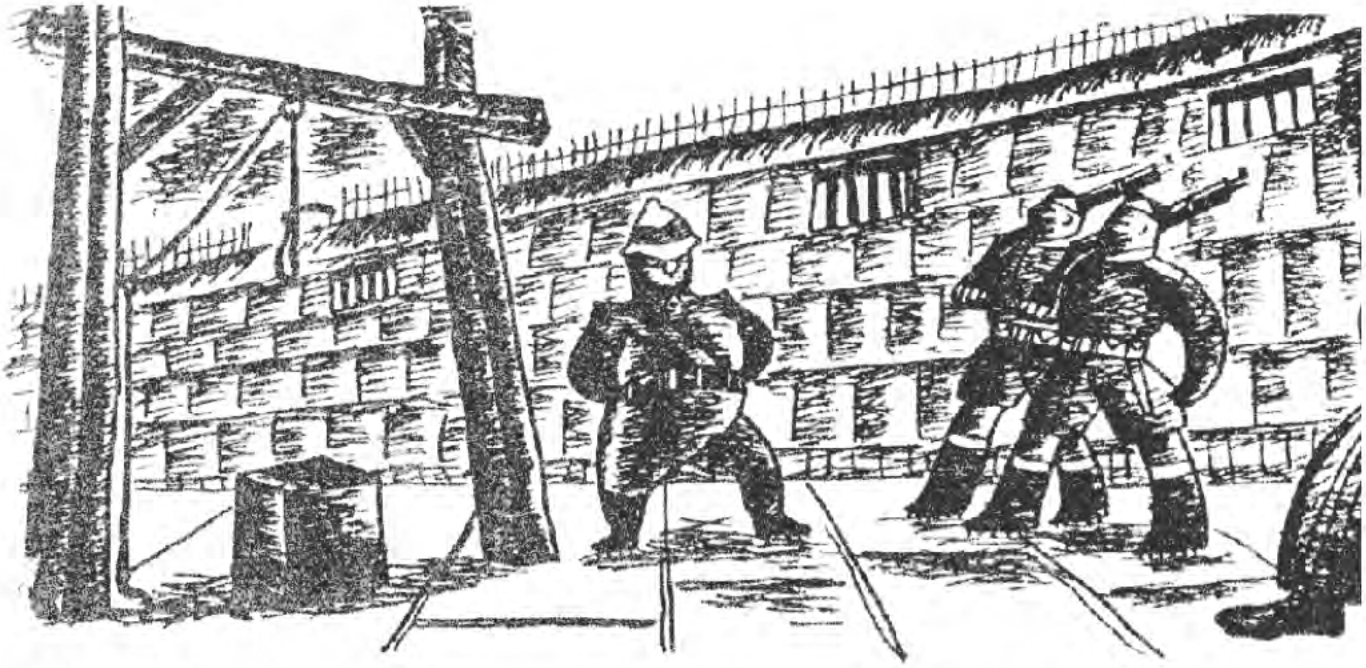

1942 ई० में भारत छोड़ो आन्दोलन के समय गांधी ने जिस अहिंसा सत्याग्रह की बात की थी वह आदर्श हमेशा नहीं टिका रहा। गांधी ने स्वयं करेंगे या मरेंगे की आवाज लगाकर इस आन्दोलन का मिजाज ही बदल दिया। ब्रिटिश शासकों के प्रति उनका यह विचार था कि ब्रिटिश भारत छोड़कर चले जाएँ, उसके बाद जो भी परिस्थिति होगी उसका दायित्व गांधी स्वयं लेंगे। इससे ही भारत छोड़ो आन्दोलन में भी विभिन्न प्रान्तों के लोगों ने हिस्सा लिया था। इसी साल वे अगस्त को ब्रिटिश सरकार ने आन्दोलन के प्रधान-प्रधान नेताओं को गिरफ्तार कर लिया। उस समय नेतृत्वहीन हो पड़े इस आन्दोलन को साधारण लोगों ने ही भारत के विभिन्न प्रान्तों में स्वत: स्फूत ढंग से आगे बढ़ाया। वस्तुत: नेताहीन आन्दोलन इतनी दूर तक आगे बढ़ेगा। इसे कांग्रेस के अगुवा भी नहीं सोच सके थे।

भारत छोड़ो आन्दोलन सबसे पहले मूल रूप से शहरों तक ही सीमित था। हड़ताल और विरोधी जुलूस के साथ-साथ विभिन्न जगहों पर जनता के साथ पुलिस और सेनाओं का संघर्ष होता रहता था। शहरों में इस आन्दोलन में सबसे आगे विद्यार्थी ही होते थे। अगस्त महीने के बीचो-बीच इस आन्दोलन का केन्द्र बिन्दु शहर से निकलकर गाँव की ओर होने

भगत सिंह की फाँसी। मूल चित्र
चित्तोप्रसाद भट्टाचार्य द्वारा चित्रित (1947 ई०)

लगा। व्यापक स्तर पर किसानों ने इस आन्दोलन में हिस्सा लिया। विभिन्न अंचलों में सम्पर्क व्यवस्था को पूरी तरह से अचल कर दिया गया। यहाँ तक कि कई अंचलों में आन्दोलनकारियों ने 'राष्ट्रीय सरकार' का गठन कर लिया था।

कुछ बातें

ताम्रलिप्त राष्ट्रीय सरकार

मेदिनीपुर के तमलुक महकमें में सतीशचन्द्र सामन्त के नेतृत्व में राष्ट्रीय सरकार का गठन हुआ था। 8 सितम्बर 1942 को किसी मिल मालिक ने जब खाद्य द्रव्य की आपूर्ति करनी चाही, तो गाँव वालों के साथ उसका संघर्ष युद्ध हो गया। उसके बाद से ही तमलुक, महिषादल, नन्दीग्राम, भगवानपुर आदि अंचलों से सम्पर्क पूरी तरह विछिन्न कर दिया गया। 29 सितम्बर को जब काफी लोगों ने जुलूस बनाकर थाने में विरोध दर्ज कराने गये तो पुलिस ने उनपर गोली चलाई। तमलुक की वृद्धा विद्रोहिनी मातंगिनी हाजरा आन्दोलन का नेतृत्व करती हुई पुलिस की गोली से मारी गई। कुछ दिन बाद आंधी तूफान से मेदिनीपुर की कृषि व्यवस्था पूरी तरह टूट गई। सरकारी मदद अधिक नहीं मिली। फलतः ताम्रलिप्त राष्ट्रीय सरकार की मदद से ही असहाय लोगों की सहायता स्वेच्छा सेवकगण करते रहे। साथ ही साथ धनी व्यक्तियों का अतिरिक्त धन गरीबों में बाँट दिया गया। 1944 ई० सितम्बर महीने तक ताम्रलिप्त राष्ट्रीय सरकार टिकी हुई थी।

जालालाबाद के पहाड़ों पर सूर्य सेन और उनके सहयोगियों के साथ ब्रिटिश सरकार की लड़ाई। मूल चित्र चित्तोप्रसाद भट्टाचार्य द्वारा चित्रित (1947 ई०)।

महात्मा गाँधी का मूल चित्र बापूजी नाम से नन्दलाल बसु द्वारा चित्रित (1930 ई०)

भारत छोड़ो आन्दोलन को दमन करने के लिए सरकार की तरफ से बड़ी संख्या में पुलिस और सेना वाहिनी का व्यवहार किया गया था। वास्तव में 1857 ई० के विद्रोह के बाद इतना बड़ा विद्रोह भारत में और नहीं हुआ था, इसे ब्रिटिश सरकार ने भी स्वीकार कर लिया था। मजदूरों ने सबसे पहले इस आन्दोलन में हिस्सा लिया था। मगर व्यापक स्तर पर छात्र-छात्रा एवं किसान ही भारत छोड़ो आन्दोलन की मूल शक्ति थे। वस्तुतः कांग्रेसी संगठन की नियमावली से अलग जाकर आन्दोलनकारियों ने अपने स्तर पर कर्मसूची तैयार कर ली थी। इसके उपरान्त भी औपनिवेशिक सरकार ने इस आन्दोलन को दमन करने में सफल हुई थी। मगर औपनिवेशिक शासक को समझ आ गया था कि दमन पीड़न के बल पर भारत वर्ष में अधिक दिनों तक शासन नहीं किया जा सकता।

कुछ बातें

भारतीय राजनीति और अर्थनीति पर दूसरे विश्वयुद्ध का प्रभाव

1942 ई० में जब एक ओर भारत में भारत छोड़ो आन्दोलन अपने चरम पर था तब दूसरी ओर पूरे विश्व में दूसरा विश्वयुद्ध चल रहा था। उस युद्ध में एक तरफ जर्मनी, इटली और जापान थे। दूसरी तरफ इंग्लैण्ड, फ्रांस और सोवियत रुस थे। वायसराय, लार्ड लिनलिथयों ने भारत की एक तरफा युद्ध देश कहकर घोषणा की थी।

1940 ई०के लगभग फ्रांस एवं इंग्लैण्ड जर्मन आक्रमण से त्रस्त हो गये। 1941 ई० में जापान ने इस युद्ध में जोरदार ढंग से दस्तक दी, दूसरे विश्वयुद्ध में भारत के भी लिप्त हो जाने की सम्भावना तैयार हो गई थी। तब ब्रिटिश सरकार भारतीयों से मदद पाने के लिए बहुत आग्रही हो गये थे। 1942 ई० में अमेरिका एवं सोवियत रुस ने भारतीयों की मांग के साथ सहानुभूति प्रकट की। परिणाम यह हुआ कि सर स्लैफोर्ड क्रिप्स के नेतृत्व में एक दल भारत आया। क्रिप्स ने प्रतिज्ञा की कि युद्ध के बाद भारत को आत्म नियंत्रण का अधिकार दिया जाएगा। इधर युद्ध के कारण खाध-संकट और मुद्रा स्फीति अपने चरम पर था। गांधी ने भी इसी समय अंग्रेजों भारत छोड़ो का आह्वान किया। इसी परिस्थिति में सुभाषचन्द्र बोस ने यह सिद्धान्त लिया कि विश्वयुद्ध की परिस्थिति को भारत में ब्रिटिश शक्ति के विरूद्ध काम में लगाना होगा।

सुभाषचन्द्र बोस और आजाद हिन्द फौज का संग्राम

राजनीतिक जीवन के शुरुआत से ही सुभाषचन्द्र बोस हमेशा ही पूर्ण - स्वराज के पक्ष में थे। वे मानते थे कि राष्ट्रीयतावाद के बिना भारतीय समाज का विकास सम्भव नहीं है। उनका राजनीतिक आदर्श विभिन्न आदर्शों का समन्वय था। वे एक ओर बीसवीं शताब्दी के जर्मन राष्ट्रवाद से प्रभावित थे तो दूसरी ओर सोवियत रूस की अर्थनीतिक समानता के आदर्श से भी कुछ ग्रहण करना चाहते थे सुभाषचन्द्र। इसके साथ ही सुभाषचन्द्र स्वामी विवेकानन्द के सांगठनिक चिन्ता से भी प्रेरित हुए थे।

सुभाषचन्द्र ने जब राजनीति में अपना कदम रखा तब भारतीय आम जनता गांधी के नेतृत्व में आन्दोलन कर रहे थे। उच्चवर्ग की चिन्तन धारा से अलग साधारण लोगों की भी राजनीतिक भूमिका है, यह भारतीय राजनीति में प्रतिष्ठित थी। सुभाषचन्द्र गांधी

के आदर्श पर पूरा विश्वास करने वाले नहीं थे फिर भी उन्होंने गांधी के आदर्श को स्वीकार कर किया था।

मगर बीसवीं दशक में भारतीय राजनीति में एक नई हलचल पैदा हुई थी। उस समय बंगाल के नेता देशबन्धु चित्तरंजन दास के साथ सुभाषचन्द्र बोस का कुछ दिनों तक पत्रों का आदान-प्रदान हुआ था। सिविल सर्विस में न जाकर चित्तरंजन के नेतृत्व में बंगाल की राजनीति से सुभाषचन्द्र जुड़ गये थे। वे बंगाल कांग्रेस के प्रचार विभाग के सम्पादक एवं राष्ट्रीय कॉलेज के अध्यक्ष नियुक्त हुए। असहयोग आन्दोलन में सक्रिय रहने के कारण उन्हें अवश्य ही जेल जाना पड़ा।

एक ही जेल में रहने के कारण चित्तरंजन दास के राजनीतिक चिन्तन से सुभाषचन्द्र परिचित हुए इसीलिए सुभाषचन्द्र के चिन्तन और कार्य में चित्तरंजन का प्रभाव था। चित्तरंजन और मोतीलाल नेहरू के स्वराज दल सचिव सुभाष चन्द्र थे। स्वराज दल की ओर से सुभाष चन्द्र ने फॉरवार्ड पत्रिका का महत्त्वपूर्ण दायित्व लिया। 1924 ई० में कोलकाता कार्पोरेशन के निर्वाचन में स्वराज दल की जीत हुई। चित्तरंजन दास कार्पोरेशन के मेयर बने। सुभाषचन्द्र प्रधान कार्य निर्वाहक बने। इसी वक्त कार्पोरेशन के सहयोग से बहुत से अवैतनिक विद्यालय, दंतव्य चिकित्सालय स्थापित हुए। हिन्दू-मुस्लिम समाज के बीच दूरी कम करने के लिए चित्तरंजन के उधम से मुसलमान समाज की उन्नति के लिए विभिन्न प्रकार की योजनाएँ बनी। इसी बीच सुभाष को अवश्य ही बार-बार जेल भी जाना पड़ता था।

1925 ई० में चित्तरंजन दास की मृत्यु हो गई। तब से ही सुभाषचन्द्र को अपने स्वयं के दायित्व में पूर्ण स्वराज के पक्ष में वक्तव्य देना पड़ता था। ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रस्तावित युक्तराष्ट्रीय शासन व्यवस्था को उन्होंने अस्वीकार कर दिया। इस विषय को ही केन्द्र में रखकर 1928 ई० में कोलकाता अधिवेशन के दौरान गांधी के साथ सुभाष का एक अन्तरविरोध शुरु हो गया।

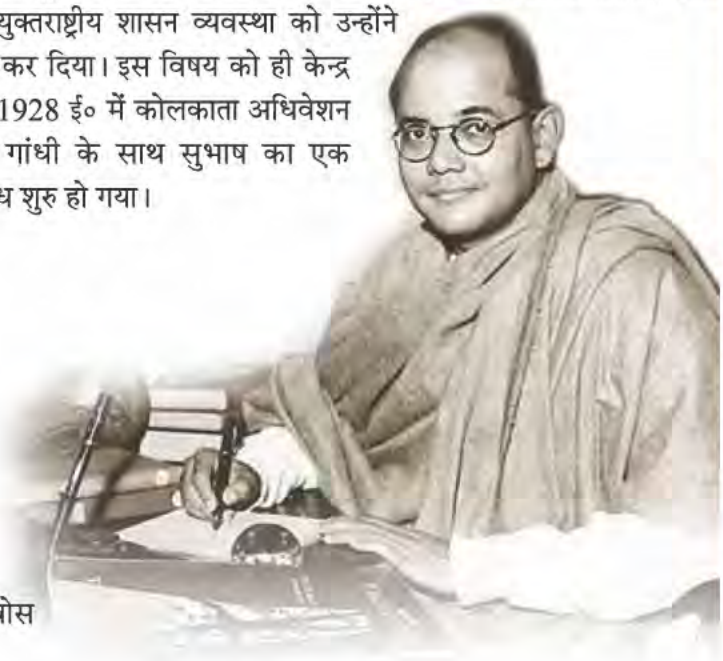

सुभाषचन्द्र बोस

कुछ बातें

सुभाषचन्द्र का छात्र-जीवन

सुभाषचन्द्र प्रेसीडेन्सी कॉलेज में अपनी पड़ाई पूरी नहीं कर पाए थे। इतिहास के प्राध्यापक ई०एफ०वेटन के विरुद्ध वहाँ विद्यार्थियों का विरोध शुरु हुआ। इसके कारण ही सुभाष और भी कई सहपाठियों को प्रेसीडेन्सी कॉलेज से निकाल दिया गया। अन्ततः सुभाषचन्द्र ने स्कॉटिशचर्च कॉलेज से बी०ए० की पढ़ाई पूरी की। छात्र जीवन के दौरान ही कोलकाता विश्वविद्यलय में टेरिटोरियल आर्मी की शाखा में चार महीने के लिए योगदान किया था। उस अनुभव ने ही उन्हें सैन्य प्रशिक्षण और साधारण जीवन की अवधारणा को समझने में मदद किया था। 1919 ई० में सुभाषचन्द्र कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में दाखिला लिया। इसके साथ ही उन्होंने सिविल सर्विस परीक्षा देने की प्रस्तुति भी शुरु की। इंग्लैण्ड के छात्र-छात्राओं का स्वतंत्र मनोभाव और तर्क-वितर्क करने की इच्छा ने सुभाष को वेहद मुग्ध किया। प्रवासी भारतीय छात्रों में सुभाष की काफी प्रसिद्धि थी। 1920 ई० में आई०सी०एस० की परीक्षा में सुभाष ने चतुर्थ स्थान प्राप्त किया था।

कुछ बातें
कांग्रेस का हरिपुरा और त्रिपुरी सम्मेलन

1938 ई० में हरिपुरा कांग्रेस में गांधी मानोनीत पट्टाभी सीतारम्मैया को हराकर सुभाषचन्द्र बसु सभापति चुने गए। गांधी एवं उनके अनुगामियों के साथ नवीन नेतृत्वकारियों की तिक्तता चरम पर पहुँच गई। फलस्वरुप यह हुआ कि अगले साल त्रिपुरी कांग्रेस में सभापति का पद त्यागकर दल के बीच ही सुभाषचन्द्र ने फॉरवार्ड ब्लाक तैयार क्या। पारस्परिक मतभेद बहुत अधिक बढ़ जाने के बाद कांग्रेस ने सुभाषचन्द्र और शरतचन्द्र बसु को अनुशासन भंग करने का अरोप लगाकर सस्पेण्ड कर दिया। सुभाष पर कांग्रेस के किसी भी निर्वाचित पद पर लड़ने के लिए तीन साल का प्रतिबन्ध लगा दिया।

1930 में कानून अवज्ञा आन्दोलन लगभग होने के कुछ दिन बाद ही सुभाषचन्द्र को फिर गिरफ्तार कर लिया गया। लगभग अस्वस्थ हो जाने के कारण चिकित्सा कराने के लिए सुभाष को यूरोप जाना पड़ा। 1933 ई० में इटली राष्ट्रध्यक्ष वेनितो मुसोलिनी के साथ सुभाष की मुलाकात हुई। मुसोलिनी द्वारा किये जा रहे दुर्नीति दूरीकरण और सामाजिक सेवा परियोजना ने सुभाषचन्द्र को बेहद उत्साहित किया। 1933 ई० में कानून अवज्ञा आन्दोलन वापस ले लेने के बाद सुभाषचन्द्र ने कांग्रेस की नीति की तीव्र आलोचना की।

1930 के दशक में कांग्रेस में मतभेद तैयार हो गया। नई पीढ़ी और पुरानी रुढ़िवादी पीढ़ी के बीच आन्दोलन के रास्ते और सामाजिक-अर्थनैतिक सोच-विचार के बीच बेहद मतभेद नजर आया। सुभाषचन्द्र, जवाहरलाल नेहरू आदि युवा नेताओं ने स्वाधीनता संग्राम और भविष्य में स्वतंत्र राष्ट्र के निर्माण में युवा सम्प्रदायों की हिस्सेदारी निश्चित करने के लिए कान्तिकारी योजना की माँग की थी। फलत: स्वाधीनता संग्राम और प्रादेशिक सरकार चलाने के लिए कांग्रेस की क्या भूमिका होगी, इसे लेकर कांग्रेस के बीच बड़ी दरार नजर आई थी।

इस घटना के फलस्वरुप कांग्रेस के उच्च पदों पर रुढ़िवादियों के प्रभाव बढ़ने के बावजूद साधारण लोगों में कांग्रेस के प्रति हताशा दिखी। कांग्रेस की सदस्यों के संख्या कम होने लगी। चरम असंतोष ने ही देशव्यापी जन जागरण का रास्ता तैयार कर दिया था। 1942 ई० में भारत छोड़ो आन्दोलन इस जन जागरण का उदाहरण है।

राष्ट्रीय कांग्रेस हरिपुरा अधिवेशन में महात्मा गांधी और सुभाषचन्द्र बसु विचार-विमर्श करते हुए।

कुछ बातें

हॉलवेल मोनुमेन्ट हटाने का आन्दोलन

1939 ई० में सुभाषचन्द्र ने पूरे भारत में आन्दोलन को संगठित करने का मन बनाया। भारत के विभिन्न अंचलों में घुम-घुम कर जनसंयोग बढ़ाने की चेष्टा उन्होंने की। मगर हर जगह उन्हें अपने पक्ष में समर्थन नहीं मिला। ऐसी स्थिति में बंगाल लौटकर सुभाष चन्द्र ने हॉलवेल मोनुमेन्ट हटाने का आन्दोलन शुरु किया। बहुत दिनों से ही हॉलवेल-वर्णित अन्धकूप हत्या की सत्यता पर प्रश्न उठ रहे थे। बहुतों का मानना था कि सिराज उद-दौला के नाम से अफवाह फैलाने के लिए ही हॉलवेल ने ऐसी बात कही थी। फलस्वरुप हॉलवेल मोनुमेन्ट भी साम्राज्यवादी ब्रिटिश शासन का प्रतीक बन गया था। हॉलवेल मोनुमेन्ट को हटाने के मुद्दे पर बंगाल के हिन्दू और मुसलमान एकजुट थे। मगर यह आन्दोलन जब तक वास्तविक रुप लेता तब तक सुभाषचन्द्र को गिरफ्तार कर लिया गया। बाद में अवश्य ही हॉलवेल मोनुमेन्ट को तोड़कर हटा दिया गया था।

इसी बीच दूसरा विश्व युद्ध शुरु हो गया। सुभाषचन्द्र का मानना था कि जर्मनी के हाथों ब्रिटिश ताकत की हार होगी ही है। इस परिस्थिति में भारत के ब्रिटिश ताकत की हार होगी ही है। इस परिस्थिति में भारत के ब्रिटिश सरकार पर सुभाषचन्द्र ने दवाब बना शुरु कर दिया।

1942 ई० कैप्टन मोहन सिंह और में रासबिहारी बसु ने जापान के जेल में बन्द ब्रिटिश सेना के भारतीय जवानों को लेकर सिंगापुर में आजाद हिन्द फौज की स्थापना की। रासबिहारी बसु के अनुरोध पर सुभाषचन्द्र जापान गए और वहीं पर आजाद हिन्द फौज का दायित्व लिया। 40 हजार भारतीय युद्धबन्दी एवं दक्षिण-पूर्व एशिया में बसे हुए भारतीयों में बहुत से लोगों ने आजाद हिन्द फौज में भर्ती हो गए। 21 अक्टूबर सन् 1943 को सुभाषचन्द्र बसु ने सिंगापुर में आजाद हिन्द और भारत के युद्धकालीन सरकार की प्रतिष्ठा की घोषणा कर दी। वे ही इसके प्रधानमंत्री और फौज के प्रमुख नायक थे।

कुछ बातें

आजाद हिन्द फौज के लिए सुभाषचन्द्र बसु का अभियान

"भारत के स्वाधीनता आन्दोलन एवं आजाद हिन्द फौज के पक्ष में मैं आज से हमारी सैन्यवाहिनी का सारा दायित्व ग्रहण करता हूँ।

हमारे लिए यह आनन्द और गर्व का विषय है, क्योंकि एक भारतीय के लिए भारत मुक्ति फौज (Army of Liberation) के सेनापति होने के अपेक्षा और कोई बड़े सम्मान की बात नहीं हो सकती। मैं जो कार्यभार ग्रहण करता हूँ उसका दायित्व कितना बड़ा है उसके प्रति मैं सचेत एवं गम्भीर हूँ।

मैं स्वयं को विभिन्न धर्मावलम्बी अड़तीस करोड़ देशवासियों का सेवक समझता हूँ। मैं अपना कर्त्तव्य कुछ यूँ पालन करने के प्रति दृढ़ प्रतिज्ञ हूँ कि जिससे अड़तीस करोड़ भारतवासियों का स्वार्थ हमारे हाथों में सुरक्षित रहे एवं प्रत्येक भारतवासी हमारे

कुछ बातें

मोहम्मद जियाउद्दीन अन्तर्धान

16 जनवरी 1941 ई० की आधी रात थी। कलकत्ता 38/2 एलगिन रोड के 'बसुबाड़ी' से दो लोग एक गाड़ी में बैठकर निकल गये। उनमें से एक मोहम्मद जियाउद्दीन थे। असल में वे छद्मवेशी सुभाषचन्द्र बोस थे। कुछ दिनों तक वे अपने ही घर में नजरबन्द थे। दूसरा व्यक्ति गाड़ी का चालक सुभाष के भतीजा शिशिरकुमार बसु थे। मोहम्मद जियाउद्दीन ने लम्बे और ऊँचे गले का कोट, ढीला सलवार पहन रखा था। सिर पर काली टोपी थी। आँखों पर सुनहरे फ्रेम वाला चश्मा था।

गोमो स्टेशन से सुभाषचन्द्र दिल्ली-कालका मेल पर चढ़कर निकल गये। पेशावर, काबुल, इटली और मास्को होते हुए सुभाषचन्द्र जर्मनी की राजधानी बर्लिन पहुँचे। तब दूसरा विश्वयुद्ध अपने चरम पर था। मगर बर्लिन में हिटलर की ओर से सुभाषचन्द्र को विशेष कोई सहायता नहीं मिली।

ऊपर पूर्ण आस्था रख सके। राष्ट्रवाद, न्याय विचार एवं निरपेक्षता पर निर्भर करके ही भारत मुक्ति फौज का गठन हो सकता है।

मातृभूमि की मुक्ति के लिए आगम संग्राम, अड़तीस करोड़ भारतवासियों के शुभेच्छा पर ही स्वाधीन भारत की सरकार गठन एवं भारत की स्वाधीनता हमेशा सुरक्षित रहे इसलिए आजाद हिन्द फौज एक महत्वपूर्ण भूमिका पालन करेगी। इसके लिए हमें एक सैन्यवाहिनी का गठन करना होगा। इस सैन्यवाहिनी का एक मात्र लक्ष्य होगा—भारत को स्वाधीन करना एवं एक ही इच्छा भी है— भारत के स्वतंत्रता के लिए काम करना या मृत्यु का वरण करना।...

....

सहकर्मी ऑफिसार एवं सेना आपकी पूरी सहायता एवं अटल अनुसरण के फलस्वरूप आजाद हिन्द फौज भारत की मुक्ति ला सकेगा। मैं आपलोगों को आश्वासन देना चाहता हूँ कि हमारी जीत ही अन्तिम जीत होगी।

हमलोगों का कार्य अभी शुरु ही हुआ हुआ है। आइए ''दिल्ली चलो'' का नारा लगाते हुए संग्राम करते रहें। जब तक नई दिल्ली के बायसराय के महल के शीर्ष पर हमारा राष्ट्रीय ध्वज न फहराए एवं भारत की राजधानी में पुराने किले के भीतर आजाद हिन्द फौज द्वारा विजय सूचक परेड न हो तब तक हमारा संग्राम चलता रहेगा।''

25 अगस्त 1943 को सुभाषचन्द्र बोस आजाद हिन्द फौज के सर्वप्रमुख के रूप में इस निर्देशनामा की घोषणा की थी। प्रमुख अंश उसी घोषणा से लिया गया है।

कुछ बातें

रानी झाँसी वाहिनी (सेना)

भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में नारियों के योगदान का अन्यतम उदाहरण है आजाद हिन्द फौज की रानी झाँसी वाहिनी। कांग्रेस में रहने के दौरान ही सुभाषचन्द्र बोस ने सेवा के काम में महिलाओं की हिस्सेदारी की बात भी सोची थी। बाद में वे आजाद हिन्द फौज में महिला सैनिक तैयार करने के प्रति आग्रही हुए। 1857 ई० के विद्रोह में प्रमुख विद्रोहिनी रानी लक्ष्मीबाई के नाम से इस वाहिनी का नामकरण हुआ रानी झाँसी वाहिनी। दक्षिण-पूर्व एशिया के विभिन्न भागों से लगभग 1500 महिलाओं ने इस वाहिनी में योगदान दिया था। 1945 ई० में इम्फाल अभियान में रानी झाँसी वाहिनी प्रत्यक्ष रुप से युद्ध में उतरी थी। भारतीय नारियो की आत्ममर्यादा और स्वलम्ब्न की धारणा को प्रतिष्ठित करने में रानी झाँसी वाहिनी ने प्रेरणा का काम किया था।

सहयोगियों के साथ सैनिक पोशाक में आजाद हिन्द फौज के सर्वप्रमुख नायक सुभाषचन्द्र बोस

नवम्बर के महीने में जापान के प्रधानमंत्री तोजो ने आजाद हिन्द सरकार के हाथ में जापान अधिकृत अन्दमान और निकोबार द्वीप समूहों को सौंप दिया। 4 फरवरी, 1944 ई० में आजाद हिन्द फौज की पहली बटालियन ने रंगून से भारत की ओर अभियान किया। 19 मार्च 1944 ई० को भारतीय जमीन पर राष्ट्रीय ध्वज उनलोगों ने फहराया। अप्रैल के महीने में आजाद हिन्द फौज ने कोहिमा अवरोध किया। लेकिन आजाद हिन्द के दोनो रेजिमेन्ट सहित जापान की सेना भी इम्फाल अभियान के दौरान छत्र भंग हो गए। इसी बीच दूसरे विश्वयुद्ध में जापान बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो गया था। फलस्वरूप वर्मा सीमान्त से जापान अपने युद्ध विमान को हटाकर युद्धरत इलाके में भेजने के लिए बाध्य हुआ। बारिश के शुरु हो जाने से सम्पर्क व्यवस्था और खाध पूर्ति अनियमित हो गया। ऊपर से रोग, ठण्ड, मलेरिया अदि के कारण बहुत से सैनिक मारे गए। विभिन्न प्रकार की समस्याओं और बाधाओं के कारण आजाद हिन्द फौज का अभियान सफल नहीं हुआ।

फिर भी सुभाषचन्द्र बोस आजाद हिन्द फौज को पुनर्जीवित करने में विश्वासी थे। सोवियत रूस से सहायता की उम्मीद भी उन्हें थी। जापान सरकार ने सुभाष को रसिया चले जाने के लिए मन्चुरिया तक की व्यवस्था भी कर दी थी। यात्रा के दौरान ताइवान में 18 अगस्त 1945 को ताइहोकु हवाई अड्डे पर एक विमान दुर्घटना हुई। कहा जाता है कि उसी दुर्घटना में सुभाषचन्द्र बोस मारे गये। मगर इस खबर की सत्यता के प्रति शंका प्रकट की गई।

आजाद हिन्द फौज का अभियान खत्म हो जाने के बावजूद भी भारत की राजनीति पर इसका प्रभाव पड़ा था। इस फौज के बहुत सैनिकों के आत्मसमर्पण के पश्चात् पूछताछ के लिए भारत लाया गया था। उनका फैसला दिल्ली के लाल किले में शुरु हुआ था। उनमें से पी.के. सहगल, जी.एस. हिल्लो और शाहनवाज खान – तीनों को 'देशद्रोही' कहकर ब्रिटिश सरकार ने दोषारोपण किया।

स्वयं करो

ऊपर के चित्र देखकर आजाद हिन्द फौज के अभियान पथ का एक विवरण तैयार करो।

कुछ बातें

आजाद हिन्द फौज का विचार और जन संघर्ष

आजाद हिन्द फौज पर मुकदमा चलने के दौरान भारतीय जनमानस में तीव्र प्रतिक्रिया देखी गई। सरकार के लिए वे लोग, 'देशद्रोही' भले हो, भारतीयों की नजर में वे महान देशप्रेमी थे। उनपर चल रहे मुकदमें को बन्द करने की मांग को लेकर जगह-जगह खुली जनसभा और जुलूस निकाला गया। इस वाहिनी (सेना) के महत्त्वपूर्ण सदस्य रसीद अली की मुक्ति के लिए बंगाल का छात्र समाज रास्ते पर उतरा था। जनसंघर्ष की आँच का अनुभव करते ही कांग्रेस के कई नेता बन्दियों के पक्ष लेकर अदालत में वकील के रूप में हाजिर हुए। देश में विभिन्न जगहों पर मीटिंग - जुलूस चल रहा था। बहुत से जगहों पर ये विरोध ब्रिटिश विरोधी हिंसात्मक रूप लेने लगे थे। सम्प्रदाय से ऊपर उठकर विभिन्न स्तरों के लोगों ने इसमें योग दिया था। याद रखना जरूरी है कि सुभाषचन्द्र ने अपने फौज में हिन्दू-मुसलमान-सिख-सबको एक साथ रखा था। अलग रूप से धर्म को आधार बनाकर कोई बटालियन उन्होंने नहीं बनाया था। 1946 ई० में विचाराधीन कैदियों की सजा की घोषणा हो जाने के बावजूद भी जनविरोध की आशंका के कारण ब्रिटिश सरकार पीछे हटती हुई उन्हें मुक्ति दी।

आजाद हिन्द फौज की लड़ाई का प्रभाव ब्रिटिश सैन्य वाहिनी में भारतीय सेनाओं पर पड़ा था। बहुत से सैनिकों ने आजाद हिन्द फौज के उद्धार कार्य हेतु आर्थिक सहायता भी की। 1946 ई० के फरवरी महीने में रॉयल इण्डियन नेवी या ब्रिटिश सरकार की नौवाहिनी सेना ने खुलेआम सरकार के विरुद्ध विद्रोह की घोषणा की। ब्रिटिश सरकार समझ रही थी कि भारत में उनका अब क्रमशः अन्तिम समय आ रहा है।

कुछ बातें

नौ - विद्रोह

46 ई० में 18 से 23 फरवरी तक बम्बई में नौ-विद्रोह उपनिवेशिक ब्रिटिश सरकार की नींद उड़ा दी थी। भोजन का घटिया स्तर और वर्ण-वैषम्य जैसे अपमान के विरूद्ध 18 फरवरी को 'तलवार' जहाज के सैनिकों (Rating) ने अवरोध किया।उनकी माँग थी अच्छा भोजन और समान वेतन। इसके साथ ही आजाद हिन्द फौज एवं दूसरे राज बान्दियों की मुक्ति की मांग भी कर रहे थे। सारे राजनीतिक दलों का पताका उनलोगों ने जहाज के मस्तूल पर फहरा दिया।

मगर ब्रिटिश प्रशासन ने भयंकर दमन नीति अपनाते हुए नौ-विद्रोह को रोकने की चेष्टा की। इसके फलस्वरूप हड़ताल और प्रतिवाद जल्द ही संघर्ष का रूप ले लिया। नौ-विद्रोह के समर्थन में भारत के विभिन्न हिस्सों में छात्र युवा एवं आम लोग सड़कों पर उतरे। जबकि कांग्रेस एवं मुस्लिम लीग ने नौ-विद्रोहियों से अपना समर्थन वापस ले लिया। यहाँ तक कि महात्मा गांधी ने भी इस विद्रोह का विरोध किया था। आजाद हिन्द फौज की तरह नौ-विद्रोहियों ने भी ब्रिटिश शासन के खिलाफ संगठित हुए थे। फलस्वरुप उन्हें भी एक जैसा सम्मान मिलना चाहिए था।

भारत में नौ-विद्रोह। मूल चित्र चित्तोप्रसाद भट्टाचार्य द्वारा चित्रित (1946 ई०)

सोचकर देखों
ढूंढकर देखों

1। नीचे दी गई कथनों के साथ नीचे की कौन सी व्याख्या सटीक बैठती है, खोजकर देखो:

क) कथन : गांधी पाश्चात्य आदर्श के विरोधी थे।
व्याख्या 1: गांधी पुरातन पंथी मनुष्य थे।
व्याख्या 2: गांधी का मानना था कि पाश्चात्य आदर्श भारत के सहज स्वराज अर्जन करने में बाधक था।
व्याख्या 3: गांधी चाहते थे कि भारत के सारे लोग सरल जीवन यापन करे।

ख) कथन : 1919 में रॉलेट कानून तैयार किया गया था।
व्याख्या 1: भारतीय राजनीति में गांधी का प्रभाव कम करने के लिए।
व्याख्या 2: ब्रिटिश विरोधी सोच और क्रान्तिकारी आन्दोलन को कम करने के लिए।
व्याख्या 3: भारतीयों को सांविधानिक सुविधा और अवसर प्रदान करने के लिए।

ग) कथन : गांधी ने खिलाफत आन्दोलन का समर्थन किया था।
व्याख्या 1: भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में मुसलमानों के समर्थन और सहयोगिता प्राप्त करने के लिए।
व्याख्या 2: तुरस्क के सुल्तान के प्रति सहानुभूति दर्शाने के लिए।
व्याख्या 3: मुस्लिम समाज की उन्नति की माँग जोरदार करने के लिए।

घ) कथन : भारतीयों ने साइमन कमीशन का त्याग किया था।
व्याख्या 1:भारतीय सर जॉन साइमन को पसन्द नहीं करते थे।
व्याख्या 2: सर जान साइमन भारतीयों के विरोधी थे।
व्याख्या 3: साइमन कमीशन में कोई भी भारतीय प्रतिनिधि नहीं था।

ङ) कथन : सुभाषचन्द्र बोस ने आजाद हिन्द फौज का दायित्व लिया।
व्याख्या 1: रासबिहारी बसु का अनुरोध रखने के लिए।
व्याख्या 2: आजाद हिन्द फौज की मदद से ब्रिटिश अधिकृत भारतीय भू-खण्ड पर आक्रमण चलाने के लिए।
व्याख्या 3: जापान सरकार की मदद करने के लिए।

2। क-स्तम्भ के साथ ख-स्तम्भ का मिलान करो :

क-स्तम्भ	*ख-स्तम्भ*
बिहार का चम्पारन	चित्तरंजन दास
स्वराज दल	अलिन्द युद्ध
विनय-बादल-दिनेश	लाहौर षड्यंत्र मामला
भगत सिंह	कृषक आन्दोलन
पट्टाभिसीतारमैया	हरिपुरा कांग्रेस

3। संक्षेप में उत्तर लिखो (30-40 शब्दों में)

क) दक्षिण अफ्रीका का आन्दोलन महात्मा गांधी के राजनीतिक जीवन पर कितना प्रभाव डाला था?

ख) गांधी के सत्याग्रह आदर्श की मूल भावना क्या थी?

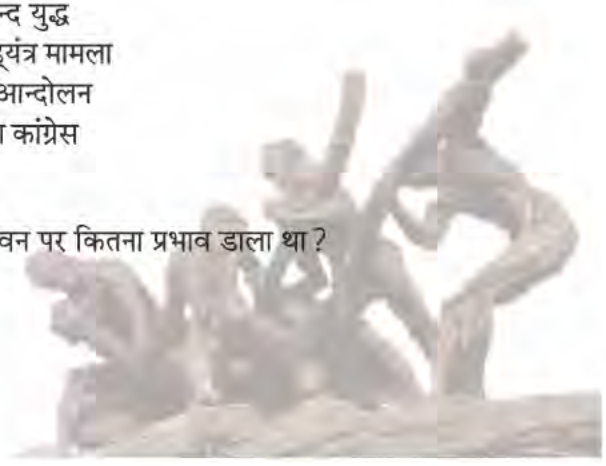

ग) स्वराज पंथियों के आन्दोलन की मुख्य माँगें क्या-क्या थी ?

घ) किसे, क्यों 'सीमान्त गांधी' कहा जाता है ?

ङ) भारत छोड़ो आन्दोलन में मातांगिनी हाजरा की भूमिका क्या थी ?

4। अपनी भाषा में लिखो (120-160 शब्दों में)

क) गांधी के सत्याग्रह के आदर्श की व्याख्या करो। इन आदर्शों के साथ कांग्रेस की शुरूआती नरम पंथियों के आदर्श की तुलनात्मक चर्चा करो।

ख) अहिंसा असहयोग आन्दोलन की क्या विशेषताएँ थी ? इस आन्दोलन को रद्द कर देने के सिद्धान्त पर गांधी के साथ क्या तुम एक मत हो ? तुम अपने विचारों के पक्ष में तर्क रखो।

ग) कानून अवज्ञा आन्दोलन में आज लोगों की हिस्सेदारी का चरित्र क्या था ? सूर्य सेन और भगत सिंह का संग्राम क्या गांधी की नीतियों का सहगामी था ?

घ) राष्ट्रीय राजनीति में सुभाषचन्द्र बोस के उत्थान की पृष्ठभूमि का विश्लेषण करो। सुभाषचन्द्र की राजनीतिक चिन्तन धारा किस-किस विषय से प्रभावित थी, अपने शब्दों में बताओ।

ङ) भारत छोड़ो आन्दोलन ने क्या गांधी के अहिंसा सत्याग्रह के आदर्श को मानकर चला था ? नौ-विद्रोह को स्वाधीनता संग्राम में योगदान को तुम किस तरह व्याख्या करोगे।

5। सोचक र लिखो (200 शब्दों में)।

क) मान को तुम असहयोग आन्दोलनकारियों का ही एक आदमी हो। इस सम्बंध में तुम्हारा अनुभव एवं इस आन्दोलन में देश के विभिन्न लोगों का योगदान और उत्साह के विषय में अपने मित्र को एक पत्र लिखो।

ख) मान लो तुम एक पत्रकार हो। सुभाषचन्द्र बोस एक दिन गहरी रात को घर से चले गये। नीचे उनकी यात्रा का मानचित्र दिया हुआ है। इस मानचित्र को देखकर उनके यात्रा पथ के विषय में तुम एक समाचार तैयार करो।

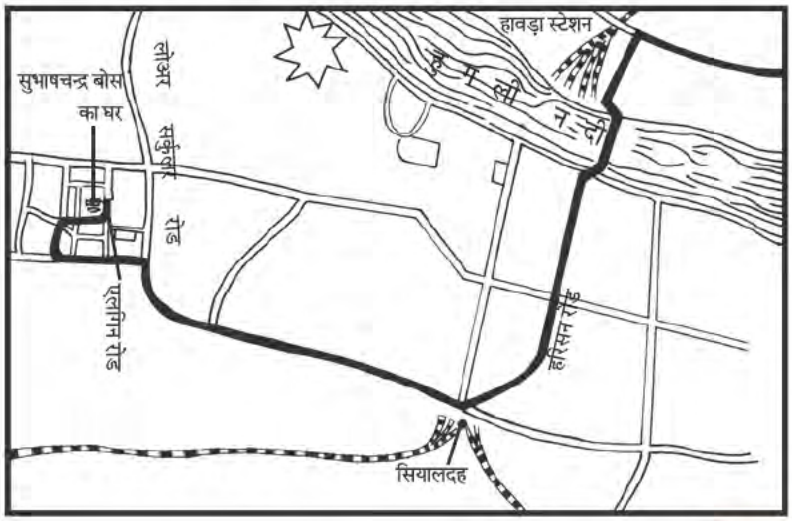

8 साम्प्रदायिकता के कारण देश का विभाजन

सन् 1857 के विद्रोह में भारतीय हिन्दुओं और मुसलमानों ने एकजूट होकर अंग्रेजी शासन का विरोध किया था। हिन्दुस्तान कहने का मतलब केवल उत्तर और मध्य भारत को ही समझा जाता था। परंतु सन् 1857 के विद्रोह के 90 वर्षो के बाद उसी हिंदुस्तान के पंजाब प्रांत के ऊपर से भारत के विभाजन की सीमा रेखा खीची गई। बंगाल भी देश के विभाजन के पीड़ा से अछूता नहीं रहा। लैकिन सुल्तान और मुगल युग में हिंदू और मुसलमान एक-दूसरे के करीब रहते थे।

औपनिवेशिक भारत में साम्प्रदायिक परिचय का विकास

19 वीं शताब्दी के अंतिम समय में भारतीय उपमहादेश में मुसलमान सम्प्रदाय कहने से किसी महत्त्वपूर्ण विषय पर चर्चा करना नहीं माना जाता था। बल्कि अलग-अलग जगहों पर मुसलमानों के बीच आर्थिक और जीवन-निर्वाह में भारी असमानता देखने को मिली। ठीक इसके साथ ही साथ भिन्न-भिन्न स्थानों पर मुसलमानों के जनसंख्या में भी समानता नहीं पायी गई। बंगाल और पंजाब के कुल जनसंख्या का लगभग आधी जनसंख्या मुसलमानों की थी। लेकिन औपनिवेशिक सरकार ने मुसलमानों के बीच जातीय भेद-भाव और असमानता को समाप्त कर दिया। वस्तुत: धीरे-धीरे भारत के सभी मुसलमानों को एक धर्मसम्प्रदाय के रूप में जाना जाने लगा, जिसके कारण मुसलमानों के लिए सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक पहचान के बदले धार्मिक पहचान ही मुसलमानों का मुख्य पहचान हो गया। इसके परिणाम स्वरूप हिन्दुओं से अलग एक संगठित सम्प्रदाय के रूप में भारत में अपने आप को स्थापित करना आरम्भ कर दिया।

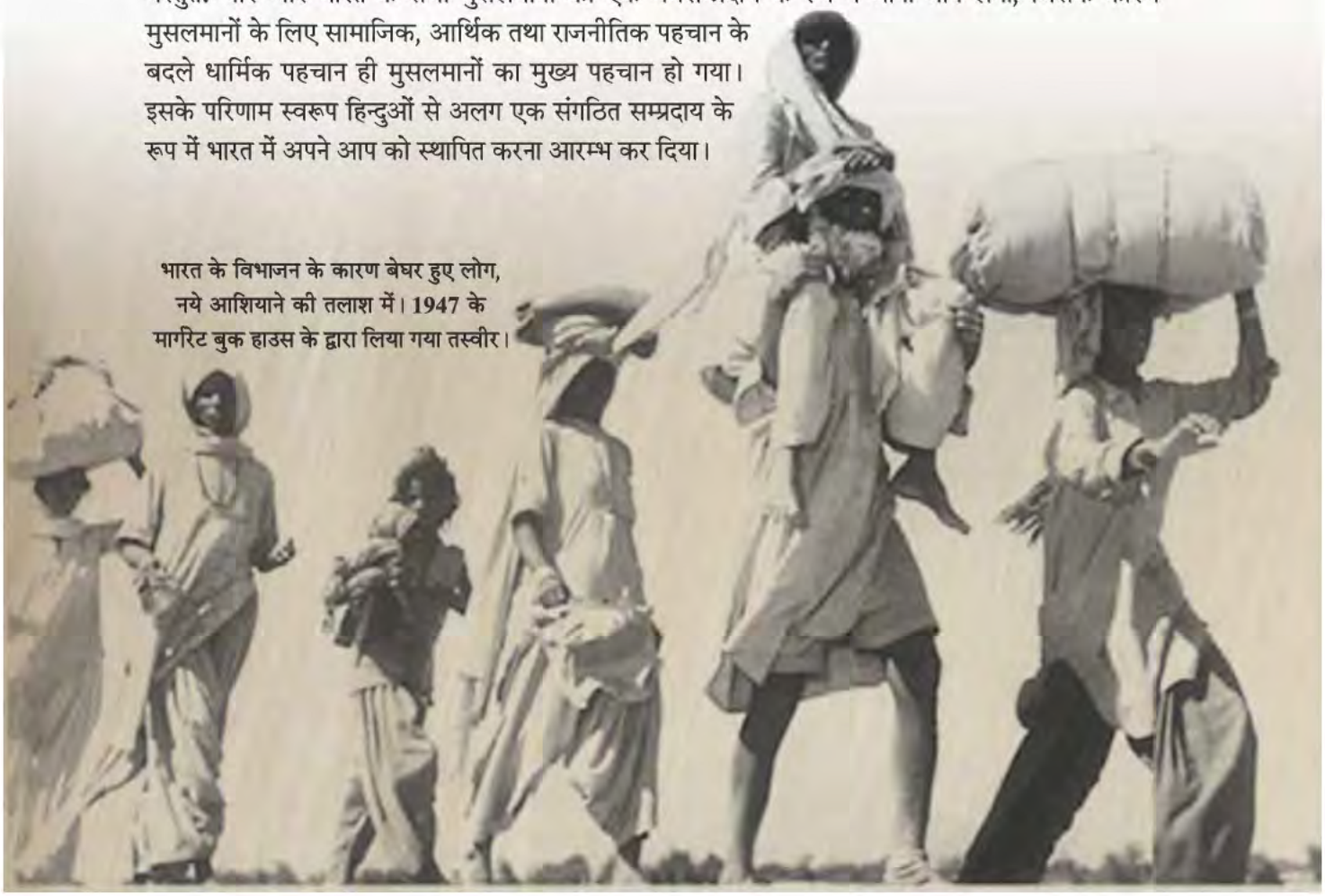

भारत के विभाजन के कारण बेघर हुए लोग, नये आशियाने की तलाश में। 1947 के मार्गरिट बुक हाउस के द्वारा लिया गया तस्वीर।

औपनिवेशिक शासन भारतीय समाज के विभिन्न भाग को अलग-अलग दृष्टिकोण से देखता था। यही सोंचकर विभिन्न समाज के विभिन्न भागों के लिए अलग-अलग प्रशासनिक कदम उठाते थे। इन्हीं नियमों में सबसे अलग लोगों का नामकरण (वाईबल अथवा कुरान) के अनुसार और जनगणना था। 1870 ई० के बाद जातीय आन्दोलन को कमजोर करने के पहले अंग्रेजी नीतियों में परिवर्तन हुआ। धर्मो के नाम पर औपनिवेशिक सरकार ने भारतीय समाज में साम्प्रदायिक भेद-भाव के द्वारा भारतीयों के धारणाओं पर कुठाराघात करने का प्रयास किया था। प्रशासन की ओर से एक नये नियम को चालू करने का प्रयास किया गया कि मुसलमान सभी एक तरह के एवं एक ही राजनैतिक धर्म के सम्प्रदाय है और तत्काल ही अंग्रेजी प्रशासन भारत में एक धर्मनिरपेक्ष शासन व्यवस्था को शुरू किया। सरकारी नौकरियों, शिक्षा के क्षेत्रों में धार्मिक पहचान को महत्त्व नहीं दिया जाना चाहिए ऐसा माना जाता था। लेकिन फिर भी कार्य करने वाली सरकार अवसर तथा सुविधा प्रदान करने के क्षेत्र में धार्मिक पहचान को ही सबसे अधिक महत्त्व देती थी। जिसके कारण हिन्दू और मुसलमान सम्प्रदाय के बीच अवसर और सुविधाओं के बँटवारे के प्रश्न पर औपनिवेशिक प्रशासन की ओर से विभाजन की नीति स्पष्ट रूप से प्रकट होती। विभाजन की यह प्रक्रिया शिक्षा को केन्द्र बनाकर स्पष्ट हो गयी थी। 1837 ई० में सरकारी भाषा के रूप में फारसी के बदले अंग्रेजी भाषा को स्वीकृति प्रदान की गई। लेकिन मुसलमानों के बीच अंग्रेजी शिक्षा की मात्रा बहुत कम थी। जिसके कारण सरकारी नौकरियों और अन्य अवसरों को प्राप्त करने में मुसलमान क्रमश: पीछे ही रहते थे। इनकी तुलना में हिन्दू सरकारी नौकरियों में आगे निकल गये। इसी कारण से, 19 वीं शताब्दी के अंत में मुसलमानों के बीच यह अवधारणा बन गई कि वे लोग हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक वंचित है। अत: सम्प्रदाय के तौर पर हिन्दू और मुसलमानों के बीच परस्पर विरोधी के भाव ने जन्म लिया। यह धारणा धीरे-धीरे मजबूत होती गई। यह भी याद रखने वाली बात थी कि जो मुसलमानों के स्वार्थ वाली बात बतलाई जाती थी वह वास्तव में शिक्षित मुसलमानों का ही स्वार्थ था। मुख्य रूप से बंगाल प्रांत की तरह, जहाँ पर विशाल संख्या में मुसलमान गरीब और निरक्षर थे, किसान लोग इस अच्छे और बूरे स्वार्थ के विषय में नहीं पड़ते थे।

मुस्लिम समाज के आधुनिकीकरण का आरम्भ सर सैयद अहमद खान तथा अलीगढ़ आंदोलन के बीच शुरु हुआ। उन्होंने इस्लामी धर्म के साथ पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान को मिलाकर मुसलमान समाज में आधुनिक उदार मनोभावना का विकास करने का प्रयास किये। सर सैयद दो सम्प्रदायों के बीच भेद-भाव या विवाद उत्पन्न करने का प्रयास कभी नहीं किये। उन्होंने अंग्रेजी शासन में हिन्दुओं के ठीक विपरित मुसलमानों के निम्न वर्ग तथा शिक्षित वर्ग को आत्म निर्भर करने का प्रयास किये थे। उनका उद्देश्य मुसलमान छात्रों के बीच एक तरह की मानसिकता को तैयार करना था। उन्होंने विशाल मुसलमान समाज में अंग्रेजी शासन के अवसरों तथा सुविधाओं को उचित तरीके से व्यवहार करने का प्रयास किये थे। यही कारण था कि अलीगढ़ मोहम्मडन ओरिएंटल कॉलेज के पाठ्यक्रम में यूरोपीय दर्शन के साथ इस्लामिक धर्मो के विषय में जानने की व्यवस्था थी।

कुछ बातें

आदमसुमारी और सम्प्रदाय की अवधारणा

भारतीय समाज में पृथककरण की धारणा बनाने में 1872 ई० के आदमसुमारी की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। इस मतगणना से भारतवर्ष की जनसंख्या के विन्यास की अवधारणा स्पष्ट हुई। पंजाब और बंगाल की आदमसुमारी के क्षेत्र में औपनिवेशिक सरकार व्यक्ति के धर्म और जातिगत परिचय को प्रमुख समझ लिया था। फलस्वरूप धर्म के आधार पर प्रत्येक सम्प्रदाय के उन्नयन से संबंधित सूचनाओं को आदमसुमारी में रखा जाता था। इसलिए औपनिवेशिक भारत के सम्प्रदायों में धीरे-धीरे धार्मिक एवं जातिगत परिचय को प्रमुख रूप में समझा गया। जिसके परिणामस्वरूप भारतीय उपमहादेश में धर्म सम्प्रदाय के महत्त्व सुविधा पाने के लिए प्रतियोगिता और संघर्ष शुरू हुआ। इस संघर्ष का प्रभाव भारतीय समाज और राजनीति में सम्प्रदायिक समस्या के महल मध्य से ही हुआ

सर सैयद अहमद जातीवादी विरोधी व्यक्ति नहीं थे। लैकिन जाति सम्बंध में उनकी भावना कांग्रेस की भावना से अलग थी। वह जातीय कांग्रेस के विरोधी थे। क्यूँ नहीं, उनकी धारणा थी कि कांग्रेस वास्तव में अधिकाधिक हिन्दुओं का प्रतिनिधि सभा थी। उन्होंने मुसलमानों से जातीय कांग्रेस को सहयोग न देने की बात कही। तब भी अन्य मुस्लिम नेता जैसे बदरूद्दिन तैयबजी कांग्रेस में योगदान किये थे। उत्तर भारतीय मुसलमान सम्प्रदायों में सभी ने सर सैयद अहमद के नेतृत्व को नहीं स्वीकार किया था। सर सैयद ने पश्चात्य करन जैसे विषय को कभी स्वीकार नहीं किया। उन्होंने अपने विशिष्टता के नष्ट होने के संदेह के कारण सार्वजनिकता तथा स्वतंत्रता की बात कही थी। इनमे जमालुद्दिन आल आफगानिस्तान जैसे उपनिवेश विरोधी व्यक्तित्व का नाम उल्लेखनीय है।

सर सैयद अहमद खान

1898 ई० में सर सैयद की मृत्यु हुई। सर सैयद अहमद की मृत्यु 1898 ई० में हुई। इसके कुछ दिनों मुसलमान राजनीति केन्द्र के रूप में अलीगढ़ का महत्त्व कम होना शुरू हो गया। उस समय जो युवा जन्म लिए थे पूरी तरह से संगठित नहीं हो पाये थे। सीया मुसलमान समाज को पीछे ढकेल कर अंग्रेजी सरकार के द्वारा अपने माँगो को पूरा करने का रास्ता दुर्गम लगने लगा। 20 वीं शताब्दी के आरम्भ में मो० अली और शौकत अली जैसे युवा नेता उलेमा से पूरी तरह प्रभावित हुए। जिसके परिणाम स्वरूप भारतीय मुसलमान राजनीति में इस्लामीकरण की प्रक्रिया तेज हो गई। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक तौर पर मुसलमान हिन्दुओं के अपेक्षा पिछड़े हुए थे यह बात स्पष्ट हो गई। अतएवं इसी सामाजिक अस्थिरता को दूर करने के लिए हिन्दू तथा अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध नए राजनैतिक संगठन को तत्काल तैयार करना जरूरी हो गया।

बदरूद्दीन तैयबजी

सैयद जमालउद्दीन-अल आफगानी

कुछ बातें

मुस्लीम लीग

बंगाल विभाजन (1905 ई०) सिद्धांत घोषणा के बाद हिन्दू-मुसलमान सम्बंध का विषय नए रूप (तौर) पर, जातीवादी नेताओं की नजरों में पड़ा। दूसरी तरफ, अंग्रेजी सरकार की ओर से पिछड़े हुए शिक्षित मुस्लिम सम्प्रदाय को कुछ अवसरों को मुहैया कराया गया। शिक्षा, नौकरी तथा राजनीति में अवसर पाने के लिए बंगाल तथा उत्तर भारत में मुसलमान एकजुट हुए थे। 1906 ई० में ढाका में मुस्लिम एडूकेशन कानफरेन्स का अधिवेशन हुआ था। उसी समय के मुसलमानों के लिए एक अलग राजनौनिक संगठन की सम्भावना तीव्र हो उठी। परिणाम स्वरूप उसी संगठन का लक्ष्य मुसलमानों के स्वार्थ तथा राजनैतिक अधिकारों के प्रति नजर रखना था। इसी के साथ-साथ लोगों का उद्देश्य अंग्रेजी सरकार के प्रति उदार बनने का हो गया।

1910 ई० तक लीग का काम-काज महम्मडन एडूकेशन कान्फरेंन्स के साथ ही चलता रहा। बाद में वास्तव में संगठन दो भागों में बँट गया था। मुसलमानों में जो कांग्रेस के समर्थक थे उन्होंने लीग के स्थापना का विरोध किया था। लेकिन इस विरोध से कोई विशेष फर्क नहीं पड़ा। बल्कि भारत के विभिन्न प्रांतो में लीग का महत्त्व कम हो गया।

पहले मुस्लिम नेतृत्ववृन्द चित्र के बॉयी ओर से है नवाब महसीन उल मूलक सर सैयद अहमद खाँ एवं सैयद महमूद। सैयद महमूद मुसलमानों के मध्य प्रथम हाईकोर्ट के न्यायधीश नियुक्त हुए थे।

इस बार मुद्रा के उल्टे ओर भी देख लिया जाय। सम्प्रदाय के तौर पर हिन्दू तथा मुसलमान के स्वार्थ के परस्पर विरोधी भावना के सूत्रपात में मध्यवर्गीय शिक्षित हिन्दुओ की प्रमुख भूमिका थी। जिस तरह बंगाल के सभ्य हिन्दू सम्प्रदाय के बीच मुसलमानों के सम्बंध में बहुत बार नीतिमूलक तथा विरोधिता की मानसिकता दिखाई पड़ती थी। इसी तरह विभिन्न ऐतिहासिक व्यक्तित्त्व वाले मुसलमान तथा इतिहासकारों के सम्बंध में बुद्धजीवियों द्वारा लिखे गये लेखपत्रो में विद्वेष की भावना देखने को मिलती थी। इन सबसे ऊपर स्वदेशी आंदोलन नेतृत्व हिन्दू धर्म को प्रतीक-केन्द्रीय राजनीतिक द्वारा हिन्दू तथा मुसलमानों के बीच सामाजिक बँटवारे को और स्पष्ट कर दिया। परिणामस्वरूप स्वदेशी आंदोलन को लेकर हिंदू-मुसलमान समस्या और जोर पकड़ लिया। बंग-भंग का विरोध करने वाले नेता इस बात को कहने लगे कि हिन्दुओं की तुलना में मुसलमानों को अधिक सुविधाए प्रदान की जा रही है। जिसके कारण बंगाली पहचान के बदले हिंदू तथा मुसलमान की पहचान बनती गयी। इसके साथ ही बंगाल के गरीब किसानों को विदेशी वस्त्रों को बहिष्कृत करने के लिए जोर दिया जाने लगा। बंग-भंग प्रतिरोध आंदोलन एक समय हिन्दू तथा मुसलमान के पारस्परिक विरोध में बदल गया।

जातीय कांग्रेस ने प्रथम चरण में यह निर्णय किया था कि वे लोग ऐसा किसी भी प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करेंगे जो मुसलमान हित-विरोधी होगा। बहुत मुसलमानों ने कांग्रेस के प्राथमिक उद्देश्यों में योगदान किया (दिया)। लैकिन इसी के साथ-साथ हिंदू सांस्कृतिक पुनरुत्थान आंदोलन राजनीतिक चरमपंथ को जन्म दिया। इसी क्रम में हिंदू धर्म के कल्पकथा एवं प्रतीक चिन्ह के माध्यम से भारतीय जाति को पहचानने का प्रयास किया गया। 19 वीं शताब्दी में हिन्दू समाज के संस्कारमुखी धारा से ही नवजागरण आंदोलन का जन्म हुआ था। इसका मूल उद्देश्य हिंदू सभ्यता के गौरमय अतीत के विषय में गर्वबोध तथा अतिरंजित कल्पना करना था। हिन्दू पुनरजागरणवादी भारत तथा हिंदू को एक समान मानकर प्रयार करते रहे। यह भी कहा जाता था कि मुस्लिम शासन के कारण ही इस सभ्यता का पतन हुआ। अंग्रेजी शासन के कारण उस सभ्यता का अस्तित्व समाप्त हो गया। पुनरजागरणवादी वास्तव में हिन्दू, पुरातन

नियमों को मानने वाले लोगों के मानसिकताओं का समर्थन नहीं किये। जिसके परिणामस्वरूप उनलोगों के समक्ष अंग्रेजी शासन तथा उदारपंथी संस्कार वाले जातीवादी हिंदू, राष्ट्र नव-निर्माण के रास्ते में रुकावट बनकर खड़े हो गए। हिंदू जातीवादी मुख्य रूप से ऊँचे कुल के संस्कार वादी ब्राह्मणों के मतानुसार चलने वाले थे। अधिकांश क्रांतिकारी जातीयवादी भारतीय संस्कृति को तथा भारतीय जाति को हिन्दू धर्म एवम् हिन्दू कदकर पुकारते थे। उदाहरण के तौर पर बाल गंगाधर तिलक के शिवाजी तथा गणपति उत्सव अरविन्द के देश की मातृ वन्दना तथा जातीवाद को धर्म के तौर पर देखा गया, गीता पर हाथ रखकर शपथ लेने की बात बतलायी गई थी। इसके परिणामस्वरूप, मुसलमान जनसमुदाय के पास चरमपंथी राजनीति की सिफारिश घट गई थी। इसका मतलब यह नहीं कि सभी हिंदू स्वाधीनता संग्रामी जान-बूझकर मुसलमानों को दूर रखना चाहते थे। बल्कि बहुत लोग यह समझते थे कि दो सम्प्रदायों के मिलने से बाधा दूर किया जा सकता है। दूसरी ओर शिक्षित मुसलमानों का एक बहुत बड़ा भाग जातीय आंदोलन में हिंदू धर्मो के ओर झुकाव के कारण आंदोलन से दूर हटना प्रारम्भ कर दिया। अपने साम्प्रदायकि अस्तित्व को बचाएँ रखने के क्रम में इन मुसलमानों ने लगातार रक्षात्मक राजनीतिक का शिकार हुए। इसके परिणाम स्वरूप, उत्कृष्ट राजनीतिक नेतृत्त्व तथा उलेमा से अत्यधिक सहयोग के कारण मुसलमानों का एक नया संगठन तैयार हुआ। इसके साथ ही साथ दो अलग-अलग मजहबो की अलगाववादी अवधारणा और भी जोर पकड़ने लगा। हिंदू तथा मुसलमानों के पारस्परिक समझ-बूझ तथा सहानुभूति के बदले विरोधिता की नींव और मजबूत होती चली गई।

साम्प्रदायिक विभाजन की राह पर

20वीं शताब्दी के युवा मुसलमान के नेतृत्व में सबसे पहले भारतीय जातीवादी आंदोलन का विरोध किया गया था, ऐसी बात नहीं थी, तो भी 20वीं शताब्दी के शुरुआत में, कुछ समस्याएँ उनलोंगो के आदोलन के स्वरूप को अलग रास्ते पर ले गयी। प्रथम विश्व युद्ध के दौरान चेक गणराज्य ब्रिटेन के विरुद्ध अस्त्र उठा लिए थे। भारतीय मुसलमानों ने विश्वयुद्ध में अंग्रेजी सरकार को समर्थन देने के बावजूद चेक गणराज्य के विषय को लेकर एक उधेड़बुन की स्थिति उत्पन्न हो गयी। चेक गणराज्य के सुल्तान को 'खलिफा' अथवा मुस्लिम समुदाय में धर्मगुरू के रूप में जाना जाता था। प्रथम विश्वयुद्ध में 'चेक गणराज्य' के हार के कारण सुल्तान का ताकत कम हो गया। तूर्की के बहुत बड़े साम्राज्य को ब्रिटिश (पराजय) ने अपने कब्जे में ले लिया। (ब्रिटिश ने तूर्की के एक बड़े साम्राज्य को अपने अधिकार में कर लिया)इस घटना से भारतीय मुसलमान बहुत असंतुष्ट थे। उनलोंगो ने ब्रिटीश नीतियों का पूरा विरोध किया। मुसलमानों के पवित्र स्थलों को 'खलिफा' को वापस देने की मांग उठी। यही मांग क्रमशः भारत में ब्रिटिश विरोधी आंदोलन का रूप लिया।

1918 ई० के दिसम्बर में मुस्लिम लीग तथा कांग्रेस के नेता दिल्ली के एक बैठक में शामिल हुए। खलिफा सहित मुस्लिम लीग के दावे को पूरा करने के लिए आवाज बुलंद की गई। इसी बीच कांग्रेस के महात्मा गांधी एवम् लीग के नेतृत्व में मुहम्मद अली जिन्ना, वहाजिर हसन सामने आए। हिन्दू-मुसलमान दोनों के विश्वसनीय गांधी,

खिलाफत आन्दोलन के समय लिया गया चित्र। चित्र के बॉयी ओर से पहले शैकत अली एवं तीसरे मुहम्मद अली है।

मुस्लिम नेताओं के साथ अच्छा सम्पर्क स्थापित कर लिया। (1919) ई० से महात्मा गांधी खिलाफत आंदोलन के समर्थन में सक्रिय हो गए। इसी वर्ष मांण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड के संशोधन नियम में हिंदू तथा मुसलमानों का समान रूप से प्रतिनिधित्व के मामले को न मानने के कारण संवैधानिक राजनीति में नेताओं का विश्वास उठ गया। जिसके परिणामस्वरूप अलग-अलग मुस्लिम संगठन इस आवाज को बुलंद करके जनसमर्थन तैयार करने का प्रयास किया कि, ''तुर्की के पराजय से इस्लाम हताश''। इन सब घटनाओं के फलस्वरूप मुस्लिम लीग के नेतृत्व में परिवर्तन हुआ। नरमपंथियों के तुलना में उलेमा तथा उनके प्रभावहीन अली भाइयों का उत्थान हुआ। महात्मा गांधी भी मुसलमान जनसंप्रदाय में कांग्रेस के आधार को मजबूत करने के लिए खिलाफत समस्या को अहिंसा असहयोग आंदोलन में प्रमुख मांग के रूप में शामिल कर लिया। 1920 ई० में केंद्रीय खिलापत समिति गांधी के प्रस्ताव का समर्थन किया। महात्मा गांधी तथा खिलाफत आंदोनलकारी एकजूट होकर ब्रिटिश सरकार के विरोध में असहयोगिता कार्य सूची का प्रयास करते रहे।

लेकिन 1922 ई० में असहयोग आंदोलन को वापस ले लिया गाय। इसके साथ ही साथ खिलाफत आंदोलन भी शिथिल पड़ गया। खिलाफत आंदोलन के नेताओं ने महात्मा गांधी के अहिंसा नीति को पूरी तरह स्वीकार नहीं किये। बल्कि महात्मा गांधी के जन लोकप्रियता का प्रयोग करके खिलाफत आंदोलनकारी जनता के करीब पँहुचने का प्रयास किये थे। उलेमाओं की उपस्थिति तथा धर्मो के प्रतीकों के प्रयोग के कारण इस्लामी आंदोलन धार्मिक भावनाओं को जागृत कर दिया था। जिसके परिणामस्वरूप खिलाफत आंदोलन हिंसा की घटनाओं को अंजाम देते रहे। 1922-23 ई० में कई जगहों पर हिंदू-मुस्लिम एक होकर दंगा को अंजाम दिये। 1924 ई० में चेक गणराज्य (तूर्की) के खलिफा का खात्मा हो गया। इसके परिणामस्वरूप खिलाफत आंदोलन का तेज प्रभाव समाप्त हो गया। लैकिन जिस धार्मिक भावना को सूत्रपात हुआ था, वह बाद के दिनों में मुस्लिम लीग के कर्मसूची का छाप छोड़ा था। इसी के साथ-साथ समान रूप से उग्र हिंदू पुनरजीवी आंदोलन भी गति पकड़ रहा था। इस समय हिंदू महासभा की तरह उग्र हिंदू जातीवादी संगठनों का वर्चस्व बढ़ते जा रहा था। कांग्रेस के साथ इन सभी संगठनों का घनिष्ठता बढ़ता जा रहा था। मदनमोहन मालवीय प्रमुख नेताओं को हिंदुत्ववादी क्रिया-कलापों से कांग्रेस को प्रमुख रूप से फायदा कराया मुस्लिम सम्प्रदाय धीरे-धीरे कांग्रेस से और दूर होता चला गया। दूसरी ओर मुसलमानों के बीच मुहम्मद अली जैसे सांम्प्रदायिक समर्थन नेतागण भी कठिन पड़ गए।

मदनमोहन मालवीय

उग्र हिंदू नेताओं के दबाव में मोतीलाल नेहरु जैसे स्वराजपंथी नेता हिंदू-मुसलमान को एक साथ लेकर चलने के लिए मजबूर हुए। मुहम्मद अली जिन्ना और स्वराज पंथियों के साथ ताल-मेल के लिए उत्साहित थे, लेकिन 1926 ई० में बंगाल और पंजाब में कांग्रेस के बीच कोई भी मुसलमान प्रार्थी नहीं था। इसके परिणामस्वरूप

शौकत अली के तरह सम्प्रतिवादी नेताओ ने भी कांग्रेस के बीच उग्र हिन्दू विचार धाराओं के प्रबलता के कारण निराश हो गए। इस बात को मुसलमानों के नीति आंदोलनों में आंशिक रूप से भागीदारी जोड़कर देखा जा सकता है। जातीय आंदोलन से मुसलमानों के अलग हो जाने का प्रलोभन (विचित्रता) को ही 'साम्प्रदायिकता' कहकर व्याख्या की गई। लेकिन अंदर की बात पता लगाने पर यह देखने को मिलता है कि जो 1930 के दशक में भी राजनीतिक में भी मुसलमानों का अलग-अलग स्थान था। जिसके परिणामस्वरूप 'मुस्लिम साम्प्रयदिकता' कहकर किसी भी निश्चित अवस्था को बतलाना ऐतिहासिक भूल माना जा सकता है।

1930 के दशक में दोहरी जाति के साम्प्रदायिक विछिन्नता का महत्त्वपूर्ण समय था। 1930 ई० में मुस्लिम लीग का सभापति मोहम्मद इकबाल एवं उसके पश्चात् कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के छात्र चौधरी रहमत अली ने पंजाब, उत्तर पश्चिम सीमांत प्रदेश, बलुचिस्तान तथा काश्मीर को लेकर अलग प्रदेश गठन करने का प्रस्ताव दिया। रहमत अली ने साफ-साफ तौर पर पाकिस्तान की बातों का उल्लेख किया था। 1932 ई० के ब्रिटिश प्रधानमंत्री रैमेस मैकडोलान्ड के घोषणा पत्र में साम्प्रदायिक बँटवारा की बात कही गयी थी। इस घोषणा में ब्रिटिश सरकार के विभाजन तथा शासन नीति प्रतिफलित हुई थी। इस घोषणा के अनुसार प्रत्येक अल्पसंख्यक सम्प्रदायों के लिए विधानमंडल में कुछ सींटे संरक्षित की गई। उसमें अलग-अलग सम्प्रदायों के आधार पर निर्वाचन कराने की बात कही गई। कांग्रेस इस तरह के अलग निर्वाचक-मंडली का विरोधी था, इसका कारण यह था कि जातीवादी एकता के बदले साम्प्रदायिक भावना के उत्साह को ही बढ़ावा दिया जाता था। भारत में थोड़े से स्वार्थ के लिए / बदले अलग समुदाय या सम्प्रदायों का स्वार्थ ही वृहत्त हो जाएगा, इस बात की आशंका को कांग्रेस ने जाहिर किया।

भारत विभाजन का निर्णय

भारतीय शासन अधिनियम (1935 ई०) के अनुसार प्रादेशिक विधान मंडलो के लिए 1937 ई० में निर्वाचन हुआ। इस निर्वाचन में कांग्रेस को सफलता मिलने के बावजूद, लीग उतना अच्छा परिणाम नहीं दे सका। मुसलमान जनसंख्या बाहुल्य प्रदेश पंजाब, बंगाल तथा असाम उत्तर-पश्चिम क्षेत्र का प्रदेश और सिंधु इत्यादि प्रदेश में भी कांग्रेस का ही मंत्री सभा बना। 1940 ई० में मुस्लिम लीग के लाहौर अधिवेशन में मुस्लमानों को एक प्रस्ताव के तहत अलग जाति के तौर पर रीतिबद्ध तरीक से घोषणा किया गया। जिन्ना भी उसी वर्ष प्रथम (पहली) बार दो विभिन्न धर्मो के समर्थन के प्रसंग में लेख लिखा। तब भी किसी अलग राष्ट्र का दावा नहीं किया गया था। यही कारण था कि उस law सभा में हिंदू मुसलमान के समानता के मांगो को महत्त्व मिला था।

कुछ बातें

मोहम्मद इकबाल

आधुनिक भारत के एक विख्यात कवि मोहम्मद इकबाल तरूण विचार के मुसलमान थे। अपने कविता के माध्यम से धार्मिक तथा दार्शनिक भावो को भरते मानवतावादी इकबाल का मानना था कि अच्छे कर्म मनुष्य को अमन और शान्ति प्रदान करती है। आचार, अनुष्ठान को लाना तथा मानना उसके पास था आने तथा अपने कार्य क्षेत्र में आने का मार्मा- 'सारे जहाँ से अच्छा हिन्दुस्तां हमारा' आदि देशभक्ति कविता और गीत इकबाल के द्वारा रचित है। तथा उन्होने पृथक मुस्लिम राष्ट्र का समर्थन किया।

पाकिस्तान का प्रस्ताव

1940 ई० मुस्लिम लीग लाहौर अधिवेशन मुहम्मद अली जिन्ना ने सभापति के रूप में अधिवेशन को सम्बोधित किया। इस अधिवेशन के द्वारा पृथक (अलग) मुस्लिम राष्ट्र के रूप में एक स्वाशसित राष्ट्र की माँग उठी। कैम्ब्रिज विश्वविधालय के छात्र चौधरी रहमत अली 1933-34 ई० पाकिस्तान नामक एक राष्ट्र की बात कहे थे। यदि इस लाहौर अधिवशन में अलग मुस्लिम राष्ट्र के लिये अलग प्रस्ताव था, लेकिन उसके लिये पाकिस्तान नाम उल्लेखनीय नहीं था। इस प्रस्ताव को बनाने के पीछे सिकन्दर हयात खान ने महत्त्वपूर्ण भूमिका का पालन किया था। फजलूल हक ने इस प्रस्ताव को प्रस्तुत किए। लाहौर अधिवेशन में मुस्लीम लीग द्वारा गृहीत मुसलमानों के लिए अलग स्वशासित राष्ट्र का प्रस्ताव था। यह प्रस्ताव 'पाकिस्तान प्रस्ताव' के रूप में प्रचलित था।

[1932 ई० में लिया गया एक तस्वीर बॉये से है चौधरी रहमत अली। दॉये खाजा अबदुल रहिम। बीच में मोहम्मद इकबाल। दॉये तरफ है ख्वाजा अब्दुल रहीम।]

स्वयं करो

अपने कक्षा में दो दल तैयार कर यह आलोचना करे कि भारत विभाजन आवश्यक था या नहीं।

सन 1940 ई० अगस्त कि घोषणा में लॉर्ड लिनलियगी प्रथम मुसलमानो को समर्थन देकर, ब्रिटिश भारत में कोई समझौता होने पर मुसलमानो को पूर्ण सूरक्षा दी जायेगी। 1942 ई० के क्रिप्श मिशन के प्रस्ताव लीग तथा कांग्रेस दोनों के लिये स्वीकार नहीं थे। इसी साल 8 अगस्त को भारत छोड़ो आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। लीग इस आन्दोलन का विरोध किया। जब देश के सभी नेता जेल में थे, तब पाकिस्तान धारणा का बड़े पैमाने पर प्रचार हुआ। इस प्रकार धार्मिक भावना का सहारा लेकर प्रचार किया गया कि लीग का समर्थन है। अधिकांश मुसलमान नियमित रूप से पाकिस्तान गठन करने का समर्थन करने लगे। 1944 ई० कांग्रेस नेता सी राजगोपालाचारी जिन्ना के पास एक समझौता प्रस्ताव रखे। 1945 ई० शिमला अधिवेशन में लीग समस्त भारतीय मुसलमानों के प्रतिनिधि के रूप में प्रस्तुत किया। कांग्रेस इस प्रस्ताव पर विरोध किया। लार्ड उथातेले (बेबेल) सभापति 1945 ई० लीग और कांग्रेस के बीच शिमला बैठक हुआ। वही पर दबाव से जिन्ना अडिग रूप से उस बैठक में भाग लिये। मुस्लिम जनगणना विभिन्न अंश मानवतावादी देश से अलग होने का विचार हो गया। विशेषण कर पेशाभोगी और व्यवसायी संगठनों के पास पाकिस्तान का अर्थ या हिन्दुओं के वह सप्रतियोगिता का अवसान था।

ए०के० फजलूल हक

विभिन्न संघ ने इस राष्ट्र को वैधयता दी।

तब यह याद रखना आवश्यक है कि मुस्लिम लीग ते सारे भारत में समस्त प्रकार के मुसलमान का प्रतिनिधित्व नहीं किया। बंगाल के ए०के० फजलूल हक– एक कृषक

प्रथा पार्टी के नीचे हिन्दू मुसलमान कृषकों के हितों के लिए कार्य करते थे।

[मुहम्मद अली जिन्ना और महात्मा गान्धी। 1944 ई० में लिया गया चित्र।]

ऐसा कि मुस्लिम वोट के लिये कृषक प्रजा पार्टी और लीग के बीच लड़ाई चलता रहा। वस्तुतः 1931 साल तक कुछ शिक्षित मुसलमानों का बाहर के अधिकांश अंचलों पर विशेष प्रभाव नहीं था। बंगाल के फजलूल रहमान एवं कृषक पार्टी साथ सिकन्दर हयात खान ईउबनिस्ट पार्टी अलग राष्ट्र के दावे पर ज्यादा जोर नहीं दिया। लेकिन क्रमशः मुसलमान समाज इन पार्टियों से दुर्बल होती गयी, इस दुर्बलता को मुस्लिम लीग ने पूरा किया। बंगाल और पंजाब दोनो प्रदेशो के कृषकों के बीच मुस्लिम लीग की विश्वसनीयता बढ़ गयी। अन्त में कांग्रेस इस सत्य को बार-बार स्वीकार करना चाहती थी। 1946 ई० में इस प्रकार का प्रचार हो सकता था, ऐसी अंदेशा लीग को थी। इस चुनाव में बंगाल, सिन्ध प्रदेश और पंजाब को हटाकर प्रत्येक प्रदेश में कांग्रेस ने वहुमत हासिल किया। इस निर्णय के बाद लीग में आंशका जन्म लिया। भारत की राजनीति में एक मात्र प्रतिनिधि कांग्रेस— इस प्रकार के प्रचार को लीग ने स्वीकार कर लिया था। फलस्वरूप लीग की माँगों में मात्र थोड़ी सी वृद्धि हुई। 1946 ई० में कैबिनेट के प्रस्ताव के अनुसार कांग्रेस अर्न्तवर्तीकालिन सरकार में योगदान किया, मुस्लिम लीग इससे सहमत नहीं हुआ। 16 अगस्त से पाकिस्तान के लिए जन आन्दोलन प्रारंभ हुआ। इस दिन कोलकाता में भयानक दंगा आरंभ हुआ। कुछ दिन के मध्य ही पूर्वी बंगाल, बिहार, उत्तर-प्रदेश एवं पंजाब जैसे इलाको में भयानक संर्घष शुरू हुआ। सितम्बर महीने में नेहरू के नेतृत्व में अर्न्तवर्तीकालिन सरकार प्रशासन की अवस्था को सुदृढ़ करने हेतु लीग सहमती जगाई एवं पाँच लोगों की प्रतिनिधियों को वहाँ भेजा गया। भारतीय गणपरिषद् दिसम्बर महीने में प्रथम सभा किया कांग्रेस परिषद् के सभी ने जो मत पेश किया, लीग उस मत को अस्वीकार किए। दूसरी ओर भारत के विभिन्न प्रांतों में दंगे जारी थे। ब्रिटिश प्रशासन इन दंगों को रोकने में व्यर्थ साबित हुई। इस कठिन समय से बाहर निकलने हेतु कांग्रेस और लीग नेतृत्व विभाजन को ही एक मात्र उपाय माने। फलस्वरूप डी० पी० मेनन और लॉर्ड माउन्टबेटन इस परिकल्पित रिपोर्ट को ब्रिटिश सरकार के पास भेज दिया। इस रिपोर्ट को

दंगा प्रभावित क्षेत्र का दौरा करते महात्मा गाँधी । 1947 ई० में लिया गया चित्र।

कांग्रेस और लीग के पास भेजा गया। दोनों राजनीतिक दलों ने इसे स्वीकार किया। ब्रिटिश सरकार इंडिया इनडिपेनडेट एक 1947 पास किया। इसके अनुसार 1947 ई० के 14 एवं 15 अगस्त को पाकिस्तान एवं भारत नामक दो राष्ट्रों का जन्म हुआ।

कुछ बातें

(रॉडक्लिफ रेखा

सन 1947 ई० जून महीने में अनेक खींचतान के बाद लार्ड माउन्ट बेटेन एवं भारत-विभाजन परिकल्पना कांग्रेस और व लीग मान लेते है। इसके आधार पर बंगाल और पंजाब को बाँटने के लिये दो अलग कमीशन बनाये गये, जहाँ लीग तथा काग्रेंस से दो-दो सदस्य होंगे। सन् 1947 ई० जून 27 की विशिष्ट ब्रिटिश कानूनी वक्ता सार सिरिल राउक्लिफ भारत विभाजन मानचित्र राउक्लिफ रेखा तैयार किये। यह मानचित्र भारतीय मनुष्य के जीवन को ध्वंस कर डाला। राउक्लिफ रेखा अत्यन्त उत्तरादायित्व पूर्ण प्रकार से प्रकट हुआ। ब्रिटिश सरकार के सबसे उत्तरदायित्व भारत, पाकिस्तान के विभाजन समानता तथा साथ-साथ देश में हो रहे दंगे इसे कलंकित कर रहे थे।

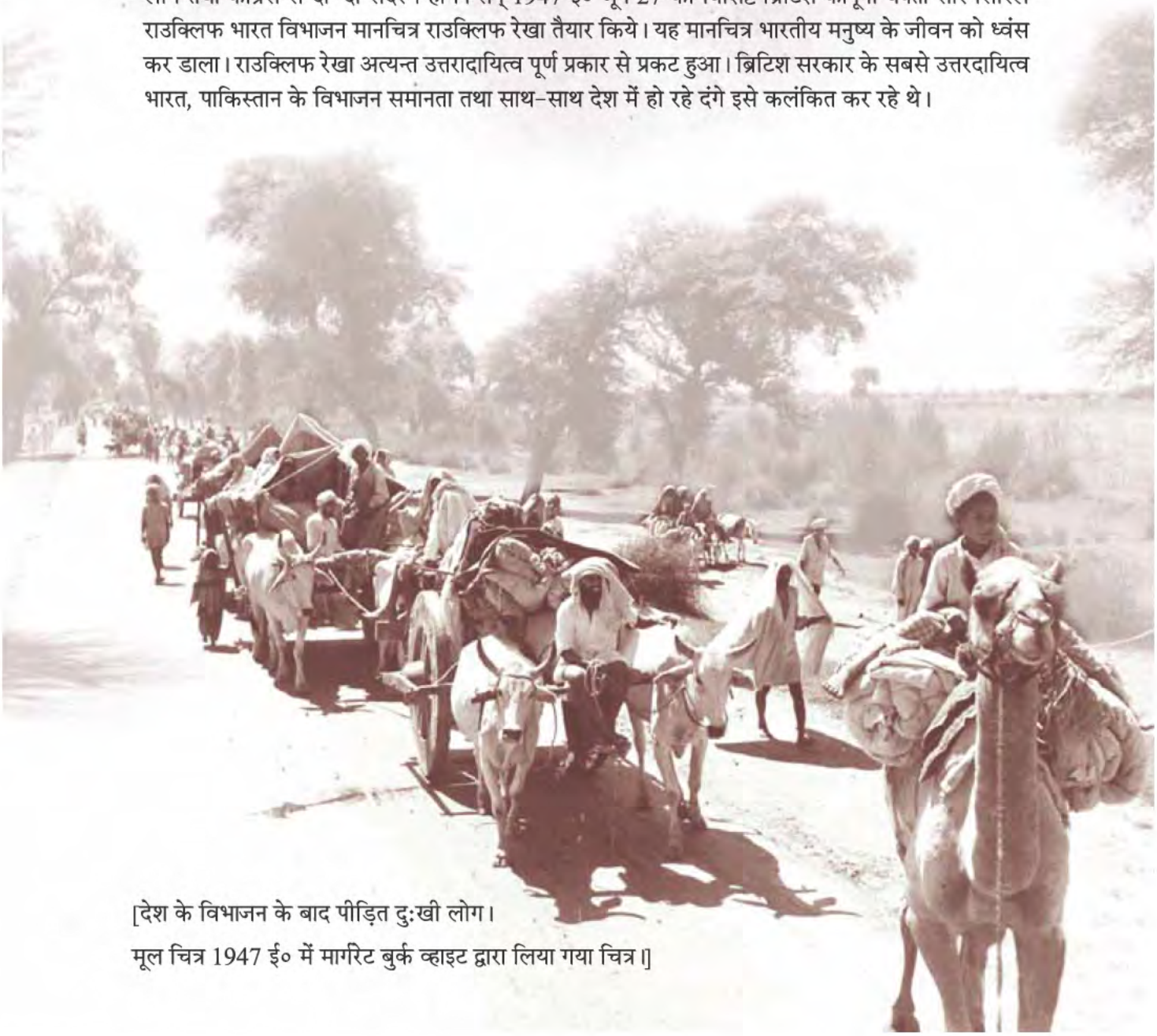

[देश के विभाजन के बाद पीड़ित दु:खी लोग।
मूल चित्र 1947 ई० में मार्गरिट बुर्क व्हाइट द्वारा लिया गया चित्र।]

14 अगस्त सन् 1947 ई में मध्यरात्रि का भारत
काश्मीर
उत्तर
पंजाब सज्य
रामपुर
राजपुताना
ग्वालियर
बनारस
पूर्वांचलीय राज्य
मणिपुर
पश्चिमांचल राज्य
दीव
दमण
बंगाल की खाड़ी
अरब सागर
हैदराबाद
कोलहापुर
गोवा
महीशुर
त्रिवांकुर
हिन्द महासागर
श्रीलंका
ब्रिटिश अधिकृत अंचल
देशी रियासत
क्षेत्रीय स्वशासन
मानचित्र स्केल के अनुसार नहीं है।

सोचकर देखों
ढूंढकर देखों

1। उचित शब्द चुनकर खाली स्थान भरो।

क) औपनिवेशिक भारत सरकार भाषा के आधार पर फारसी के स्थान पर अंग्रेजी को स्वीकृति दिया गया ..... (1847 ई०/1837 ई०/1850 ई०)

ख) भारतीय मुस्लिम समाज आधुनिक करने का अभियान प्रथम किसने चलाया .....(मुहम्मद अली जिन्ना/ मौलाना अब्दुल कलाम आजाद / सर सईयद अहमद खाँ)

ग) कृषक प्रजा पार्टी के नेता थे ..... (ए०के० फजलूल हक / मुहम्मद अली जिन्ना / जवाहरलाल नेहरू)

घ) स्वाधीन पाकिस्तान राष्ट्र का जन्म हुआ ..... (1947 ई० 15 अगस्त /1947 ई० 14 अगस्त/ 1947 ई० 26 जनवरी)

2। नीचे दिये गये तथ्यों में कौन गलत कौन सही चुनो।

क) 19 वीं सदी हिन्दुओं की तुलना में मुसलमान शिक्षा एवं नौकरी के क्षेत्र में पिछड़ापन था।

ख) हिन्दू पुनरुत्थानवादी आन्दोलन हिन्दू मुस्लिम एकता प्रभावित कर रहा था।

ग) महात्मा गाँधी खिलाफत आन्दोलन के समर्थन किये थे।

घ) पाकिस्तान प्रस्ताव को खारिज करने के लिये 1940 में लाहौर अधिनवेशन हुआ।

3। अति संक्षिप्त में उत्तर दो। (30-40 शब्द)

क) अलीगढ़ आन्दोलन का मूल उद्देश्य क्या था?

ख) स्वदेशी आन्दोलन बंगाल हिन्दू-मुसलमान समर्थक किस प्रकार प्रभावित हुआ?

ग) भारत में मुसलमान खिलाफत आन्दोलन प्रारम्भ क्यो किये?

घ) सन् 1930 ई० भारत में हिन्दू मुसलमान सम्पर्क क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण क्यो था?

4। अपने शब्दों में उत्तर दो। (120-150 शब्दों में)

क) सर सईयद अहमद खाँ किस प्रकार मुस्लिम समाज को आधुनिकिकरण पथ पर आगे ले गये।

ख) 19वीं सदी में हिन्दू पुनरूत्थानवादी आन्दोलन का जन्म हुया? साम्प्रदायिक भावों के पनपने में इन सभी आन्दोलन का क्या योगदान है?

ग) आहिंसा, असहयोग आन्दोलनों में किस प्रकार मुसलमान नेता दूरी बनाये।

घ) सन् 1940-1947 ई० तक किस प्रकार भारत-भाग्य स्पष्ट हुआ? भारत विभाजन कहाँ तक आवश्यक और उचित था। अपने उत्तर को योग्य तर्क के साथ प्रस्तुत करो।

5। सोचकर लिखो। (200 शब्दों में)

मान लो कि सन् 1947 ई० 1431 अगस्त को भारत विभाजन की खबर तुम्हें मिली। तुमको तुम्हारा घर-दुयार सब कुछ छोड़कर जगह जाना होगा। इसके प्रति तुम्हारी प्रतिक्रिया क्या होगी, अपनी भाषा में लिखों।

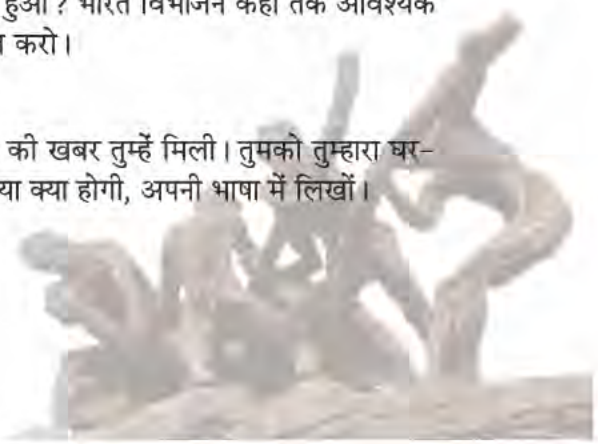

9 भारत का संविधान : गणतंत्र की रूपरेखा और नागरिकों के अधिकार

15 अगस्त सन् 1947। अनेक क्षतियों नुकसानो और देश के बटँवारे के अन्त में स्वाधीन भारत का जन्म हुआ। प्लासी के युद्ध को आधार माना जाय तो 190 वर्षों के औपनिवेशिक शासन से भारत को मुक्ति मिली। फलत: एक ओर मुक्ति की प्रसन्नता थी लेकिन दूसरी ओर देश के बँटवारे की त्रासद यन्त्रणा। एक नये राष्ट्र के रुप में भारत के समक्ष अनेक समस्यायें थी। ऐसी ही परिस्थिति में संविधान-सभा ने अपना काम प्रारम्भ किया था। स्वाधीन भारत का संविधान तैयार किया जा रहा था। लम्बें तर्क-वितर्क और विचार-विमर्श के बाद भारत का संविधान तैयार हो गया। 26 नवम्बर 1949 ई0 को गण परिषद् द्वारा संविधान को ग्रहण किया गया। अगले वर्ष की 26 जनवरी से स्वाधीन भारत के लिये संविधान लागू कर दिया गया।

संविधान का अर्थ है कई नियमों का समूह। इन्हीं नियमों के अनुसार कोई संस्था या प्रतिष्ठान परिचालित होता है। चूंकि राष्ट्र भी एक प्रकार का प्रतिष्ठान ही है। अत: राष्ट्र के परिचालन हेतु एक संविधान की आवश्यकता होती है। राष्ट्र के संदर्भ में संविधान का अर्थ वे सारे नियम-कानून है जिनके द्वारा सरकारों की क्षमता, नागरिकों के अधिकार एवं सरकार तथा नागरिकों के बीच सम्पर्क परिचालित होते है। संविधान किसी राष्ट्र की सार्वभौमिकता का प्रतीक है।

भारतवर्ष जब ब्रिटिश के अधीन था तब ब्रिटिश सरकार के नियमों के अनुसार भारत शासन किया जाता था। उसमें भारतीयों की चाह प्राप्ति का कोई प्रतिफल नहीं होता था। इसीलिए राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के बाद से ही राष्ट्रीय नेताओं ने भारतीय जनों के लिये एक संविधान बनाने की माँग करना शुरु कर दिया था। लेकिन ब्रिटिश सरकार ने अलग-अलग समयों में अपनी ही शासन व्यवस्था में थोड़ी हेर-फेर, सुधार करके भारतवासियों की कुछ माँगे मानते हुए भी मूल नियन्त्रण अपने ही हाथों में रखा था।

लेकिन आन्दोलन के क्रमश: बढ़ते जा रहे दबाव के आगे भारतवासियों की स्वन्त्रता और संविधान की माँग को दूर रख पाना संभव नहीं हो पाया। इसीलिए सन् 1946 में ब्रिटिश सरकार ने एक संविधान निर्माण सभा के गठन का प्रस्ताव मान लिया। इस सभा का काम भारत के लिये एक नये संविधान की रचना करना था।

स्वतंत्र भारत का संसद भवन, नयी दिल्ली

सन् 1946 ई० के जुलाई महिने में गण-परिषद् (जन प्रतिनिधि सभा) का गठन हुआ। डॉ० राजेन्द्र प्रसाद इस जन-प्रतिनिधि सभा के स्थायी सभापति निर्वाचित हुये। स्वतन्त्र भारत को संविधान की रचना के लिये एक संविधान निर्माण समिति की गयी। बी आर अम्बेडकर की अहयक्षता में इस निर्माण सभा ने संविधान रचना का कार्य किया था।

कुछ बातें

गणतन्त्र दिवस

26 जनवरी 1950 ई० में भारत को गणतन्त्र राज्य घोषित किया गया। इसीलिये इस दिन को गणतन्त्र दिवस के रुप में मनाया जाता है। भारतवर्ष का संविधान विश्व का सबसे बड़ा संविधान है। विभिन्न देशो के संविधानो में शामिल किये गये है। जैसे संयुक्त राष्ट्र आमेरिका से युक्तराष्ट्रीय व्यवस्था , इंग्लैण्ड से मंत्री-सभा द्वारा परिचालित शासन व्यवस्था, आयरलैण्ड से निर्देश मूलक नियम आदि।

भारत के संविधान की प्रस्तवाना

भारतीय संविधान की एक प्रस्तावना है। संविधान के आदर्श और उद्देश्य की घोषणा इस प्रस्तावना में है। प्रस्तावना को ''संविधान का विवेक'' अथवा संविधान की आत्मा ''कहा जाता है''। संविधान की पूर्व प्रस्तावना में भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व गणतान्त्रिक प्रजातन्त्र बताया गया है। 1976 में 42 वें , शोधन द्वारा इसमे ''समाजतान्त्रिक और धर्मनिरपेक्ष'' दो आदर्श और जोड़कर भारत को संपूर्ण, प्रभुत्वसंपन्न, धर्मनिरपेक्ष, समाजवादी लोकतंत्रात्मक गणराज्य '' कहा गया। इन सभी शब्दों का गंभीर निहितार्थ है।

संपूर्ण प्रभुत्व का आशय है कि भारत अपने अन्दर के और विदेश नीति को निर्धारण करने का पूर्ण अधिकार रखता है। किसी भी विदेशी राष्ट्र या संस्था का आदेश, निर्देश या अनुरोध मानने को भारत बाध्य नहीं हैं।

भारत के संविधान के प्रस्तावना का मूल्य पृष्ठ-सज्जा की थी नन्दलाल बसु ने।

''समाजवादी'' का अर्थ है कि उत्पादन के सभी स्रोतों पर राष्ट्र तथा समाज का मालिकाना तथा उत्पादित सम्पत्ति-सम्पदा पर समान अधिकार है। लेकिन भारतीय संविधान में समाजवादी शब्द को जोड़ने के पीछे अन्य उद्देश्य था। वहाँ मिश्रित अर्थनीति अर्थात् राष्ट्रीय और व्यक्तिगत मालिकाना पर निर्भर अर्थनीति के द्वारा सामाजिक गठन में समाज-व्यवस्था के निर्माण करने की बात है। धर्मनिरपेक्ष कहने का तात्पर्य यह कि भारत का राष्ट्र के रुप में अपना कोई धर्म नहीं है। किसी धर्म विशेष का होकर बोलना या उसका विरोध करना इनमें से कुछ भी राष्ट्र नहीं करेगा। प्रत्येक नागरिक अपने विश्वास के अनुकूल धर्माचरण कर सकता है।

व्यापक अर्थ में लोकतंत्र कहने का अर्थ सामजिक-अर्थनैतिक, राजनैतिक आदि क्षेत्रों में समानता का भावना है। लेकिन भारतीय संविधान से गणतन्त्र का अर्थ- मौलिक रुप से व्यष्कता प्राप्त लोगों के लिये मताधिकार बताया गया है। मत का प्रयोग करके केन्द्र और प्रदेशो की सरकारों एवं विभिन्न स्वायत्तशासी प्रतिष्ठानों के प्रतिनिधियों के निर्वाचन करने की बात कही गयी है।

गणतन्त्र कहने का अभिप्राय है कि भारत की शासन व्यवस्था में वंशगत किसी राजा या रानी का कोई स्थान नहीं है। भारत की शासन व्यवस्था के शीर्ष पर राष्ट्रपति है। वे (राष्ट्रपति) भी भारत के लोगों (गणों) द्वारा अपरोक्ष रुप से चुने जाते हैं। संविधान के अनुसार भारत के शासन तन्त्र का श्रोत एवं रक्षक भारतीय जन-गण है। अर्थात् भारत के साधारण नागरिक हैं। इसलिये संविधान में गणतन्त्र शब्द का प्रयोग है।

केन्द्रीय-शासन विभाग

भारत के संसदीय गणतांत्रिक व्यवस्था में राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति एवं मंत्री परिषद् द्वारा केन्द्रीय शासन विभाग का गठन होता है। कानून और गुणात्मक दृष्टि से राष्ट्रपति केन्द्रीय शासन विभाग के प्रमुख (अधिकारी) है। यद्यपि वास्तव में प्रधानमंत्री के नेतृत्व में केन्द्रीय मंत्री परिषद् ही राष्ट्रपति के नाम से शासकीय कार्य की परिचालना करती है।

राष्ट्रपति

भारत के राष्ट्रपति राष्ट्र के प्रधान है। राष्टपति राष्ट्र के प्रतिनिधित्व करते हैं। एक विशेष पद्धति द्वारा भारत के राष्ट्रपति को पाँच वर्षों के लिये चुना जाता है। एक ही व्यक्ति राष्ट्रपति के रुप में एकाधिक बार चुने जा सकते हैं। राष्ट्रपति पद का प्रार्थी होने के लिये किसी व्यक्ति को 35 वर्ष का व्यस्क भारतीय नागरिक तथा लोकसभा में चुने जाने योग्य होना चाहिये। उन्हें किसी भी सरकारी लाभजनक पद पर नहीं रहना होगा।

स्वाधीन भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद।

उपराष्ट्रपति

पद की गरिमा की दृष्टि से उपराष्ट्रपति का स्थान राष्ट्रपति के बाद ही है। उपराष्ट्रपति पद का प्रार्थी होने के लिये 35 वर्ष का व्यस्क भारतीय नागरिक एवं राज्यसभा में चुने जाने के योग्य होना चाहिये। उपराष्ट्रपति भी राष्ट्रपति के समान ही एक विशेष पद्धति द्वारा चुने जाते हैं। अपने पद के अधिकार द्वारा उपराष्ट्रपति राज्यसभा की अध्यक्षता करते हैं। उपराष्ट्रपति का कार्यकाल सामान्यत: पाँच वर्ष का है।

केन्द्रीय विधि-सभा / संसद (पार्लियामेण्ट)

राष्ट्रपति एवं कानून निर्माता दोनों सभाओं से मिलकर भारत को केन्द्रीय कानून सभा अर्थात् संसद का गठन होता है। यह सभा कानून निर्माण, संविधान में संशोधन विभिन्न करों का निर्धारण आदि कार्य करती है।

केन्द्रीय कानून निर्माता सभा (संसद) के उच्च कक्ष (सभा) को राज्यसभा कहा जाता है। भारतीय संविधान के अनुसार अधिक से अधिक 250 सदस्यों में राज्य सभा का गठन होता है। राष्ट्रपति विज्ञान, कला, समाज सेवा आदि क्षेत्रों में ख्यातिलब्ध 12 जन भारतीय नागरिकों को नामांकित करते हैं। राज्य सभा का सदस्य होने के लिये किसी व्यक्ति को 30 वर्ष का व्यस्क भारतीय नागरिक होना चाहिये। राज्य सभा के सदस्यों को छ: वर्ष के लिये चुना जाता है।

याद रखो

इंग्लैण्ड की रानी के समान ही भारत के राष्ट्रपति केन्द्रीय शासन विभाग के नाम मात्र के लिये प्रधान होते है। संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के राष्ट्रपति के साथ दूसरे देश के राष्ट्रपति की क्षमता एवं भूमिका में कोई समानता नहीं। भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्र प्रसाद थे।

स्वाधीन भारत के प्रथम
उपराष्ट्रपति
डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन

भारतीय संसद की निचली सभा का नाम लोकसभा है। लोक सभा के प्राय: सभी सदस्य ही पूर्णरूप से व्यस्कता प्राप्त वोटाधिकार प्राप्त लोगों के द्वारा प्रत्यक्ष रूप से चुने जाते हैं। राष्ट्रपति केवल दो सदस्यों को मनोनीत करते है या कर सकते है। वर्तमान समय में लोकसभा की सदस्य संख्या 552 की गयी है।

लोकसभा के सदस्य पद के प्रार्थी होने के लिये 25 वर्ष का व्यस्क भारतीय नागरिक होना अनिवार्य है। ऐसे व्यक्ति केन्द्र या राज्य सरकार के अधीन किसी नौकरी में नहीं रह सकते। साधारणत: लोकसभा के सदस्य पाँच वर्षो के लिये चुने जाते है। लोकसभा का सभापतित्व अध्यक्ष या स्पीकर करते है। अध्यक्ष की अनुपस्थिति में डेपूटी स्पीकर या उपाध्यक्ष सभा के कार्य का संचालन करते है। अध्यक्ष और उपाध्यक्ष लोकसभा के सदस्यो में से एवं शेष सदस्यों द्वारा चुने जाते है।

प्रधानमंत्री

भारत की संसदीय शासन व्यवस्था में प्रधानमंत्री सर्वाधिक महत्वपूर्ण पद के अधिकारी होते हैं। वे केन्द्रीय सरकार के प्रधान होते है। देश के संवैधानिक प्रमुख व्यक्ति राष्ट्रपति के होने के बावजूद प्रधानमंत्री ही राष्ट्र के वास्तविक परिचालक है।

स्वाधीन भारत के प्रथम
प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू।

लोकसभा निर्वाचन के बाद आवश्यक सदस्य संख्या प्राप्त दल या संयुक्त दल के नेता या नेत्री को राष्ट्रपति प्रधानमंत्री पद पर नियुक्त करते है। यदि कोई दल या संयुक्त दल आवश्यक सदस्य संख्या नहीं जुटा पाता तब राष्ट्रपति विचार विमर्श करके लोक सभा के सदस्यों में किसी को प्रधानमंत्री के पद पर नियुक्त कर सकते हैं। इस देश में प्रधानमंत्री हुये सदस्य को कुछ दिनों के बाद ही सदस्यों का आवश्यक या ज्यादा-से-ज्यादा समर्थन प्राप्त करके दिखाना होता है।

प्रधानमंत्री अपने तहत एकाधिक विभाग रख सकते हैं। राष्ट्रपति प्रधानमंत्री की राय परामर्श से दूसरे केन्द्रीय मंत्रियों को नियुक्त करते है। प्रधानमंत्री राष्ट्रपति और अन्य केन्द्रीय मंत्रियों के बीच योगायोग के माध्यम होते है।

राज्यों की सभा (विधान सभा)

भारत के संविधान के अनुसार भारत के प्रत्येक प्रदेश में एक-एक विधान सभा है। किसी राज्य/प्रदेश में यह विधान सभा एक कक्षीय है। फिर किसी-किसी प्रदेश में यह द्विकक्षीय है। जहाँ यह द्विकक्षीय हैं वहाँ उच्च कक्ष का नाम विधान परिषद् है तथा निम्न कक्ष का नाम विधान सभा है। पश्चिम बंगाल की यह सभा एक कक्षीय है, सिर्फ विधान सभा है। राज्यपाल, विधान सभा और विधान परिषद् या राज्यपाल और विधान सभा से कानून निर्माता सभा का निर्माण होता है।

राज्यपाल

राज्य की शासन व्यवस्था में सर्वोपरि स्थान राज्यपाल का है। यद्यपि कि वे नाम मात्र को ही प्रधान होते हैं। राज्यपाल केन्द्रीय सरकार की सिफारिश पर राष्ट्रपति द्वारा पाँच वर्षों के लिये नियुक्त किये जाते हैं। वे राज्य के नागरिकों द्वारा सीधे नहीं चुने जाते।

संविधान के अनुसार राज्यपाल के पद पर नियुक्त होने के लिए व्यक्ति को भारतीय नागरिक एवं 35 वर्ष या उससे अधिक की उम्र का होना अनिवार्य है। उसे केन्द्र अथवा राज्य सरकार में सेवारत नहीं होना चाहिए। उसे किसी भी केन्द्रीय या राजकीय संस्था से स्वयं के लाभ के लिये जुड़ा नहीं होना चाहिए।

किसी भी राज्य का राज्यपाल ही मुख्यमंत्री की नियुक्ति करता है। मुख्यमंत्री की सहायता से वह मंत्रिमण्डल के अन्य सदस्यों का चुनाव करता है। इसके अलावा राज्यपाल राज्य के विभिन्न उच्च तथा सम्मानित पद पर सुयोग्य व्यक्तियों की नियुक्ति करता है। यदि राज्य में विधान परिषद् है तो राज्यपाल कुछ विशिष्ट् व्यक्तियों को वहां भी नियुक्त करता है।

विधान सभा

1969 वर्ष से पश्चिम बंगाल राज्य में विधान परिषद् को विलुप्त करने का निर्णय लिया गया। तत्पश्चात् परिषद बंगाल में केवल विधान सभा ही मौजूद है। विधानसभा के सभी विधायक जनता के वोट द्वारा निर्वाचित किए जाते हैं। केवल एक दो अंग्रेज–भारतीय सदस्य राज्यपाल की इच्छानुसार विधान सभा में मनोनित होते हैं। विधान सभा की सदस्यता साधारणता: 5 वर्ष के लिए होती है।

मुख्यमंत्री

केन्द्र के समान भारतीय मुख्य प्रान्तों में भी अपनी संसदीय सरकार है। इस सरकार का प्रमुख है मुख्यमंत्री। भारतीय संविधान के अनुसार राज्य को सुचारू रूप से चलाने में मुख्यमंत्री राज्यपाल की सहायता करता है। परामर्श देने के लिए एक मंत्रीसभा होती है। इस मंत्रीसभा का प्रधान मुख्यमंत्री होता है।

राज्य में विधानसभा के चुनाव के पश्चात् जिस दल के सबसे अधिक प्रत्याशी चुनाव जीते हैं, उस दल के नेता या नेत्री को राज्यपाल मुख्यमंत्री बनाता है। मुख्यमंत्री के परामर्श से राज्यपाल दूसरे मंत्रियों को नियुक्त करता है। मुख्यमंत्री और उसकी मंत्री सभा के सदस्यगण विधान सभा का कार्यकाल पूरा करने के लिए प्रतिबद्ध होते हैं। श्री प्रफुल्लचन्द्र घोष पश्चिम बंगाल के प्रथम मुख्यमंत्री थे।

आंचलिक (प्रादेशिक) स्वायत्तशासन

स्थानीय अथवा आंचलिक स्तर पर स्वायत्तशासन व्यवस्था भारतीय गणतांत्रिक शासन व्यवस्था की अन्यतम विशिष्ट्ता है। साधारण जन मनुष्य अपने स्थानीय अंचल की शासन व्यवस्था में हिस्सा ले सकता है। अपने गाँव या जिले के शासन प्रतिष्ठान की परिचालना कर सकते हैं। अपनी स्थानीय स्वायत्तशासन व्यवस्था सम्भालने के कारण लोगों में नागरिक चेतना और प्रशासनिक अभिज्ञता का प्रसार होता है। इससे गंणतात्रिक शासन व्यवस्था सफल होती है।

परिषद बंगाल की स्थानीय स्वायत्तशासन व्यवस्था ग्राम तथा नगर दो भागों में विभक्त है। ग्राम स्वायत्तशासन व्यवस्था पंचायत व्यवस्था के नाम से जानी जाती है।

पंचायत व्यवस्था के तीन स्तर हैं। सबसे नीचे है ग्राम पंचायत। उसके ऊपर हैं पंचायत समिति। सबसे ऊपर जिला परिषद् का स्थान आता है।

ग्राम पंचायत

पश्चिम बंगाल की पंचायत व्यवस्था का स्वंनिम्न लेकिन अति महत्वपूर्ण स्तर है ग्राम पंचायत। पंचायत कानून के अनुसार कई परस्पर संलग्न ग्रामों को लेकर ग्राम पंचायत का इलाका निर्धारित किया जाता है। ग्राम पंचायत में चुनाव लड़ने के लिए किसी भी व्यक्ति का उस ग्राम पंचायत के अधिनस्त वोटर होना आवश्यक है। केन्द्र या सरकारी नौकरी करने वाला ग्राम पंचायत का चुनाव नहीं लड़ सकता। पंचायत के सदस्य वोटिंग के द्वारा पाँच वर्षो के लिए निर्वाचित होते है।

ग्राम पंचायत के लिए निर्वाचित व्यक्तियों में से एक पंचायत प्रधान तथा एक उपप्रधान चुन लिया जाता है। वर्तमान शासन व्यवस्था में प्रधान एवं उपप्रधान पदों का एक तिहाई भाग महिलाओं तथा अनुसूचित जातियों के लिए सुरक्षित रखा गया है।

ग्राम पंचायत का कार्यकाल साधारणत: 5 साल का होता है। जिसे विशेष परिस्थितियों में छ: महीनों के लिए बढ़ाया जा सकता है।

पंचायत समिति

पश्चिम बंगाल की पंचायत व्यवस्था का द्वितीय स्तर पंचायत समिति है। कई ग्रामों को लेकर एक ब्लॉक बनता है। उस ब्लॉक के नाम के अनुसार पंचायत समिति का नामकरण किया जाता है। ब्लॉक की उन्नति का सम्पूर्ण भार पंचायत समिति को दिया गया जाता है। पंचायत समिति में अनुसूचित जाति या महिला सदस्य न होने पर सरकार अधिक से अधिक दो जनों को मनोनीत कर सकती है।

पंचायत समिति के लिए चुनाव लड़ने के लिए ग्राम पंचायत प्रार्थी के समान ही योग्यता की आवश्यता पड़ती है। पंचायत समिति का कार्यकाल पाँच वर्ष का है। लेकिन ग्राम

पश्चिम बंगाल विधानसभा भवन, कोलकाता,

पंचायत की भाँति पंचायत समिति का कार्यकाल विशेष परिस्थिति में छः माहिना बढ़ाया जा सकता है। पंचायत के कानून के अनुसार प्रति तीन महीनों में समिति की सभा बुलायी जानी चाहिए।

पंचायत समिति के निर्वाचित सदस्य अपने मध्य से एक सभापति और एक उप-सभापति का चुनाव कर लेते हैं। समिति की बैठक में सभापति की उपस्थिति आवश्यक है। सभापति के अनुपस्थित रहने पर उपसभापति सभापतित्व ग्रहण करता है। ग्राम पंचायत के समान ग्राम समिति में भी एक तिहाई भाग महिला एवं अनुसूचित जनजाति के लिए सुरक्षित है।

जिला परिषद्

2013 ई० की गणना के अनुसार पश्चिम बंगाल के 19 जिलों में कोलकाता तथा दार्जिलिंग को छोड़कर सभी जिलों में जिला परिषद् है। जिला परिषद् की सदस्यता के लिए चुनाव लड़ने वाले व्यक्ति की योग्यता ग्राम पंचायत तथा पंचायत समिति का चुनाव लड़ने वाले प्रार्थी के समान ही होनी चाहिए।

जिला परिषद् का कार्यकाल पाँच वर्ष का है। विशेष परिस्थितियों में इसका कार्यकाल कुछ समय के लिए बढ़ाया जा सकता है। तीन महीनों में एक बार जिला परिषद् का अधिवेशन बुलाना आवश्यक है। जिला परिषद् की सभा का सभापतित्व जिला सभापति करता है। सभापति की अनुपस्थिति में उपसभापति सभा तथा अन्य कार्यों की परिचालना करता है।

जिला परिषद् के निर्वाचित सदस्य अपने मध्य से एक सभापति एंव एक उपसभापति का चुनाव करते है। सभापति तथा उपसभापति की नियुक्ति पूरे समय के लिए होती है। अपने पद पर रहते हुए वे किसी व्यवसाय, नौकरी या ऐसी संस्था जिससे कुछ लाभ हो, नहीं जुड़ सकते हैं।

पौरसभा

पौरसभा पश्चिम बंगाल की स्थानीय स्वायत्तशासन व्यवस्था का अभिन्न अंग है। राज्य सरकार प्रत्येक पौरअंचल को कई वॉर्ड में विभाजित कर सकती है। पौरसभा के सदस्यों को पार्षद (काउन्सिलर) कहा जाता है। कोई भी व्यक्ति जिस इलाके का वोट दाता होता है, वहाँ का काउन्सिलर बन सकता है। काउन्सिलर पद के लिए चुनाव लड़ने की बाकी योग्यता ग्राम पंचायत के सदस्य के समान है। पौर इलाकों से निर्वाचित काउन्सिलरों को लेकर बनी काउन्सिलर परिषद् को ही पौरसभा कहा जाता है। इस परिषद् का कार्यकाल पाँच वर्ष का है। काउन्सिलर अपने मध्य सें ही एक चेयरमैन और एक वाइसचेयरमैन चुन लेते है।

स्वयं करो

अपने स्थानीय अंचल की स्वायत्तशासन व्यवस्था का एक चार्ट बनाओ। साथ ही स्थानीय अंचल की समीक्षा करो कि किस प्रकार अंचल की और उन्नति हो सकती है।

कुछ बातें

पश्चिम बंगाल के पौरसभा

1882 ई० में लार्ड रिपन के प्रयास से भारत में पौरशासन व्यवस्था तैयार हुई। 1932 ई० में बंगीय पौर कानून तैयार हुआ। 1987 ई० के पश्चात् उसी कानून के मुताबिक पश्चिम बंगाल में पौरसभा परिचालित होती थी। 1997 ई० में पौरशासन को और भी गणतांत्रिक बनाने के लिए पश्चिम बंगाल पौरबिल तैयार किया गया अगले वर्ष से वह बिल कानून के हिसाब से कार्यकर हो गया।

सामाजिक उन्नति में संविधान की भूमिका

भारत के संविधान में नारी तथा पुरूष को समान अधिकार प्राप्त है। तब भी समाज में नारी और पुरुष को समान भाव से नहीं देखा जाता। रोजमर्रा के जीवन में लड़कियाँ परिवार तथा समाज में अवहेलना की शिकार होती है। विवाद के समय लेन-देन की प्रथा चलती है। इसके साथ ही नारी भ्रूण हत्या भी समाज में जारी है।

स्त्री के प्रति घट रही इन अमानविक घटनाओं की रोकथाम के लिए अनेक परिकल्पनाएँ बनाई गई है नारी के अधिकार की सुरक्षा के लिए अनेक कानून बनाए गए हैं। ये सब कानून भारत के संविधान के अंतर्गत है।

साथ ही नारी की शिक्षा उन्नयन पर भी जोर दिया जा रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में स्त्री को भी पुरुषों के समान सुविधा देने की बात की जा रही है। इन सबसे समाज में नारी का स्थान वृद्धि की जमीन तैयार हुई है। 2005 ई० में संविधान के अंतर्गत जमीन, जायदाद, तथा सम्पत्ति पर नारी के समानधिकार की बात कही गई है।

कुछ बातें

घरेलू हिंसा कानून- 2005

परिवार तथा समाज में नारी को विभिन्न प्रकार के अत्याचार का सामना करना पड़ता है। इन सबके प्रतिकार का विधान भारतीय संविधान में है। ऐसा ही एक कानून है घरेलू हिंसा कानून-2005। परिवार में यदि कोई स्त्री उत्पीड़न का शिकार हो तो वह इस कानून का सहारा ले सकती है।

इस कानून के अंतर्गत लड़कियाँ अत्याचार होने पर न्यायालय के न्यायधीश को आवेदन दे सकती है। इसके अलावा जिला सुरक्षा अधिकारी (Protection Officer) के पास भी आवेदन दर्ज किया जा सकता है। यहाँ पर बिना मूल्य न्यायिक सहायता प्राप्त की जा सकती है। घरेलू हिंसा कानून के अन्तर्गत मानसिक उत्पीड़न तथा अर्थनितिक उत्पीड़न भी सम्मिलित है। लेकिन केवल मात्र कानून बनाने से इस समस्या का समाधान नहीं हो सकता है। इसके लिए समाज में शिक्षा का विकास तथा नारी का अधिक उन्नयन आवश्यक है।

याद रखो

प्रत्येक बालक, लड़का या लड़की समाज में जीने का हक लेकर ही जन्म लेते हैं। लेकिन विभिन्न कारणों से लड़कियों को समाज में विभिन्न यातनाओं का सामना करना पड़ता है। शिशु के अधिकार की रक्षा की बात भी संविधान में है।

पिछड़ी जनजाति की अधिकार रक्षा में संविधान की भूमिका

भारतीय समाज का एक बड़ा अंश औपनिवेषिक शासनकाल में 'पिछड़ी श्रेणी' में आता था। उन्हें समाज में 'अस्पृश्य' माना जाता था। इसके अलावा इन्हें 'हरिजन', 'दलित', अनुसूचित जनजाति' आदि भी कहा जाता था। वास्तव में इन सब शब्दों से इनकी सामाजिक स्थिति अवगत होती थी। 1930 के दशक से भारत के दलित-समाज में स्वयं के प्रति सचेतना का विस्तार आरम्भ हुआ।

सामाजिक अस्पृश्यता को राजनीति का हिस्सा सर्वप्रथम गाँधी ने बनाया। 1920 ई० में असहयोग आंदोलन के प्रस्ताव के साथ ही अस्पृश्यता दूरीकरण का उल्लेख उन्होनें स्वराज्य प्राप्ति के लिए किया। यधपि असहयोग आंदोलन के असफल हो जाने पर लोगों में छूआछूत (अस्पृश्यता) दूर करने के विषय में विशेष जागरूकता नहीं दिखाई दी, परन्तु गाँधी ने हरिजनों को हिन्दू मन्दिरों में प्रवेश का अधिकार दिलाने के लिए आन्दोलन जारी रखा। इसके फलस्वरूप धार्मिक अधिकार प्राप्त करने पर भी राजनीतिक एवं आर्थिक अधिकारों से ये वंचिन थे। इसलिये हरिजनों की सामाजिक रुप में विशेष उन्नति नहीं हुई।

स्वाधीन भारत के संविधान के मुख्य निर्माता बी. आर. अम्बेडकर

अस्पृश्यता दूर करने के सम्बन्ध में गाँधी और बी. आर. अम्बेडकर में मतभेद था। अम्बेडकर इनके लिए शिक्षा, नौकरी तथा राजनैतिक अधिकारों की सुरक्षा चाहते थे। दलित तथा हरिजन को अलग राजनीतिक समूह में देखने के कारण ही मतभेद शुरू हुआ।

असहयोग अंदोलन के समय अम्बेडकर नें दलित समाज के राजनीतिक अधिकार की रक्षा के लिए अलग चुनाव अधिकार की माँग की। लेकिन महात्मा गाँधी ने इस प्रस्ताव का विरोध किया। 1932 ई० में दलितों की अनुसूचित जाति के तहत अलग निर्वाचन अधिकार दिये गए। इसके प्रतिरोध में गांधी ने आमरण अनशन किया। गाँधी और अम्बेडकर के मध्य एक संधि (पुना संधि) हुई जिसमें दलितों को अलग चुनावाधिकार के बदले मुख्य निर्वाचन की व्यवस्था की गई।

परन्तु जल्दी ही देखा गया कि गाँधी के नेतृत्व वाली कांग्रेस में हरिजनों के विषय में विशेष उत्साह नहीं हैं। अनेक कांग्रेसी नेता जात-पात के विषयों को महत्त्व देने पर नाराज थे। जिसके फलस्वरूप दलित समाज का अपने अधिकारों की स्थापना के लिए आन्दोलन चलता रहा। लेकिन अनुसूचित समाज स्वयं को शक्तिशाली बनाने में विशेष सफल नहीं हो पाया। 1947 ई० में सत्ता हस्तांतरण के कारण अनुसूचित जन जातियों का आन्दोलन आगे नहीं बढ़ सका।

दूसरी ओर कांग्रेस भी अनुसूचित जातियों के दावों पर विचार-विमर्श कर रही थी। संविधान के निर्माण के लिये गठित खसड़ा कमेटी के चेयरमैन के पद पर अम्बेडकर का चयन इसका ही प्रमाण था। अम्बेडकर के प्रयास से स्वाधीन भारत के संविधान में अस्पृश्यता को अस्वीकारा गया। साथ ही अनुसूचित जाति तथा जन जातियों के उन्नयन के लिये नीतियाँ बनायी गई।

भारत के संविधान में अनुसूचित जन-जातियों की कोई संख्या निर्धारित नहीं है परन्तु राष्ट्रपति विभिन्न राज्यों के साथ आलोचना करके अनुसूचित जन जाति एवं उपजाति की तालिका तैयार कर सकते हैं। ये तालिका या सूची केन्द्रीय न्यायपालिका द्वारा संशोधित करवाई जा सकती है। इस प्रकार राष्ट्रपति द्वारा प्रत्येक राज्य के साथ

आलोचना करके अनुसुचित जाति एवं जनजाति की एक तालिका तैयार करके जारी की गई हैं। इस तालिका में दलित, हरिजन आदि के अलावा अन्य पिछड़ी जातियों को भी रखा गया है। इनके लिए समय-समय पर कानून भी पारित किए गये हैं। एग्लो-इंडियन को भी इस श्रेणी में रखा गया है। लेकिन पिछड़ी जाति तथा उपजाति द्वारा किन जातियों का बोध होता है, यह संविधान में स्पष्ट संख्या में उल्लेखित नहीं है। बाद में पिछड़ी जातियों के अनेक मापदंड सरकार द्वारा निर्धारित कर दिए गए हैं। जैसे—

- ❒ हिन्दू समाज के विधानानुसार जो समाज के निचले तबके में आते है।
- ❒ जिनके बीच में शिक्षा का प्रचलन कम है।
- ❒ जिनके मध्य में बहुत कम लोगों को सरकारी नौकरी मिली है।
- ❒ जिनमे शिल्प तथा वाणिज्य का विकास कम है—

  वे ही पिछड़ी जाति तथा उपजाति है।

भारतीय संविधान में अल्पसंख्यक बताए गए हैं। अल्पसंख्य को गणना के आधार पर निश्चित किया गया है साम्प्रदायिकता के आधार पर नहीं। संविधान के अनुसार सरकार अल्पसंख्यकों के व्यक्तिगत और समष्टिगत अधिकारों की सुरक्षा के लिए प्रतिबद्ध है। भारतीय संविधान में अल्पसंख्यक नागरिकों को धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार दिया है। साथ ही साथ सब धर्मालम्बियों को धर्मनिरपेक्षता तथा धार्मिक प्रीति पालन का निर्देश भी दिया है।

समस्त भारतीयों को उनकी भाषा, वर्णमाला तथा संस्कृति सुरक्षित रखने का अधिकार प्राप्त है। राष्ट्र अथवा सरकार किसी भी अल्पसंख्यक के ऊपर बहुसंख्यक की या आंचलिक संस्कृति थोपी नहीं जा सकती। इस विषय पर सरकार किसी कानून का सहारा नहीं ले सकती। साथ ही भारतीय संविधान में अल्पसंख्ययको का भाषागत अधिकार भी सुरक्षित रखा गया है। जैसे संथालों की संथाली लिपि को भारतीय संविधान में यथा योग्य मर्यादा प्राप्त है।

संविधान में अल्पसंख्यकों की संतान के लिए उनकी मातृभाषा में प्राथमिक शिक्षा का भी प्रावधान है। सरकारी तथा सरकारी सहायता प्राप्त शिक्षण संस्थानों में प्रत्येक जाति, धर्म, सपम्प्रदाय के नागरिक को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है। अनुसूचित जनजातियों, उपजातियों तथा पिछड़ी जातियों के संर्वांगीण विकास के लिए अनेक उपाय किए गए हैं। स्वाधीन राष्ट्र के सभी नागरिकों को समान मर्यादा प्रदान करना ही भारतीय संविधान का उद्देश्य है। सब नागरिकों को अन्न, वस्त्र तथा घर प्रदान करने के लिए भी भारतीय संविधान प्रतिबद्ध है। साथ ही जीवन, जीविका और शिक्षा का अधिकार स्वीकार, करके भारतीय संविधान ने भारतीय दायित्व पर नजर रखी है।

संविधान में उल्लेखित नागरिकों के मौलिक अधिकार और कर्त्तव्य

संविधान में उल्लेखित नागरिकों के मौलिक अधिकार एवं कर्तव्य भारतीय संविधान में नागरिकों के 6 मौलिक अधिकार बताए गए है। ये अधिकार है— समानता का अधिकार, स्वाधीनता का अधिकार, शोषण के विरूद्ध अधिकार, धार्मिक स्वतंत्रता का अधिकार, शिक्षा तथा संस्कृति का अधिकार, संविधानिक प्रतिवेदन का अधिकार। ये सभी अधिकार शासन और कानून विभाग की कार्यकारणी से बाहर है। इसलिए ये संविधान के द्वारा सुरक्षित है और मौलिक अधिकार कहलाते है। इन अधिकारों का हनन होने पर कोई भी भारतीय नागरिक अदालत में आवेदन दे सकता है। अधिकार के साथ ही समाज तथा राष्ट्र के प्रति नागरिकों के कुछ कर्तव्य भी है। 1976 ई० में संविधान में संशोधन के पश्चात् नागरिकों के दश मौलिक कर्त्तव्य बताए गए है।

भारत के संविधान में लिपिबद्ध नागरिकों के मौलिक कर्त्तव्य

- संविधान सहित भारत के राष्ट्रीय प्रतीकों का सम्मान करे।
- भारतीय स्वाधीनता संग्राम के आदर्शों का सरक्षण एवं पालन करे।
- भारत की एकता एवं अखंडता की रक्षा करे और उसे अक्षुण्ण रखे।
- देश की रक्षा करे और आह्वान किए जाने पर राष्ट्र की सेवा करे।
- भारत के सभी लोगों में समरसता और समान भ्रातृत्व की भावना का निर्माण करे जो धर्म, भाषा, और प्रदेश पर आधरित सभी भेदभावों से परे हो, ऐसी प्रथाओं का त्याग करे जो नारी के सम्मान के विरुद्ध है।
- हमारी सामाजिक संस्कृति की गौरवशाली परंपरा का महत्व समझे और उसका परीक्षण करे।
- प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अंतर्गत वन, झील, नदी और वन्य जीव है, रक्षा करे और उसका संवर्धन करे तथा प्राणी मात्र के लिए दया भाव रखे।
- वैज्ञानिक दृष्टिकोण, मानववाद और ज्ञानार्जन तथा सुधार की भावना का विकास करे।
- सार्वजनिक संपत्ति को सुरक्षित रखे और हिंसा से दूर रहे।
- व्यक्तिगत और सामूहिक गतिविधियों के सभी क्षेत्रों में उत्कर्ष की ओर बढ़ने का सतत् प्रयास करे जिससे राष्ट्र निरंतर बढ़ते हुए उपलब्धि की नई ऊँचाइयों को छू ले।
- यदि माता-पिता या संरक्षक है। छह वर्ष से चौदह वर्ष तक की आयु वाले अपने यथास्थिति, बालक या प्रतिपाल्य के लिए शिक्षा का अवसर प्रदान करे। (यह 2002 ई० में 86 वें संशोधन में जोड़ा गया है।)

'अन्न चाहिए, प्राण चाहिए, प्रकाश चाहिए, चाहिए मुक्त वायु, चाहिए बल, चाहिए स्वास्थ्य, आनन्द-उज्जवल परमाणु, साहस विस्तृत वक्षपट'

सभी के लिए अन्न-वस्त्र-निवास स्थान और शिक्षा चाहिए। मूल चित्र विश्वशांति शीर्षक से चित्तो प्रसाद भट्टाचार्य द्वारा चित्रित।

सोचकर देखों
ढूंढकर देखों

1। बेमेल शब्दों को ढूंढकर निकालो :

क) धर्मनिरपेक्ष, सार्वभौम, धनतांत्रिक, गणतांत्रिक

ख) राष्ट्रपति, उपराष्ट्रपति, प्रधानमंत्री, राज्यपाल

ग) पौरसभा, लोकसभा, राज्यसभा, विधानसभा

घ) डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, डॉ. सर्वपल्लि राधाकृष्णन, जवाहरलाल नेहरु, वी. आर. अम्बेडकर

ङ) 15 अगस्त, 26 जनवरी, 26 नवम्बर, 20 मार्च।

2। नीचे लिखे गये व्याख्यान में कौन सटीक एवं कौन गलत है उसे चिह्नित करे।

क) संविधान विचार विभाग द्वारा कानून का संकलन है।

ख) भारतीय संविधान के प्रमुख रूपकार बी. आर. अम्बेडकर है।

ग) भारत में राष्ट्रपति ही वास्तविक तौर पर शासक है।

घ) राज्यसभा का सभापतित्व मुख्यमंत्री करते है।

ङ) पश्चिम बंगाल में त्रिस्तरीय पंचायत व्यवस्था है।

3। संक्षेप में उत्तर दो। (30-40 शब्द)

क) स्वाधीनता प्राप्ति के समय संविधान रचना की आवश्यकता क्यों पड़ी?

ख) भारतीय संविधान में गणतांन्त्रिक राष्ट्र का अर्थ क्या है?

ग) भारत को धर्मनिरपेक्ष राज्य क्यों कहा जाता है?

घ) महात्मा गाँधी ने दलितों को अधिकार दिलाने के लिए क्या-क्या प्रयत्न किये थे।

ङ) भारत के संविधान में नागरिकों के कौन से मौलिक अधिकार का जिक्र है?

4. अपनी भाषा में लिखो। (120-160 शब्द)

क) भारतीय संविधान की प्रस्तावना की व्याख्या करो।
प्रस्तावना में गणतांत्रिक किस प्रकार व्यवहार हुआ है— अपनी भाषा में लिखो।

ख) भारत के प्रधानमंत्री एवं राज्यों के मुख्यमंत्री के कार्यों के विषय में आलोचना करो। राष्ट्र तथा राज्यों की परिचालना में उनकी क्या भूमिका है?

ग) पश्चिम बंगाल की स्वायत्तशासन व्यवस्था में गणतंत्र की धारणा किस प्रकार विस्तृत होती है? तुम्हारे स्थानीय अंचल के परिप्रेक्ष्य में आलोचना करो।

घ) भारत के संविधान ने नारी के अधिकारों को किस प्रकार से सुरक्षित किया है? नारी की सामाजिक प्रतिष्ठा के लिए आर्थिक स्वाधीनता कितनी आवश्यक है? उदाहरण के साथ लिखो।

ङ) अनुसूचित जाति, उपजाति तथा पिछड़ी जातियों के उन्नयन में संविधान की क्या भूमिका है?

5। सोचकर लिखो। (200 शब्दों में)

क) तुम्हारे स्थानीय अंचल के लोगों ने तुम्हें ग्राम पंचायत या पौरसभा के लिए निर्वाचित किया है। अपने इलाके की उन्नति के लिए तुम क्या-क्या कदम उठाओगे?

ख) सोचो तुम एक शिक्षक/शिक्षिका हो। अपने विद्यालय में छात्रों के साथ मिलकर संविधान में दिए गए किन-किन मौलिक कर्तव्यों का पालन करोगे? एक तालिका तैयार करो।

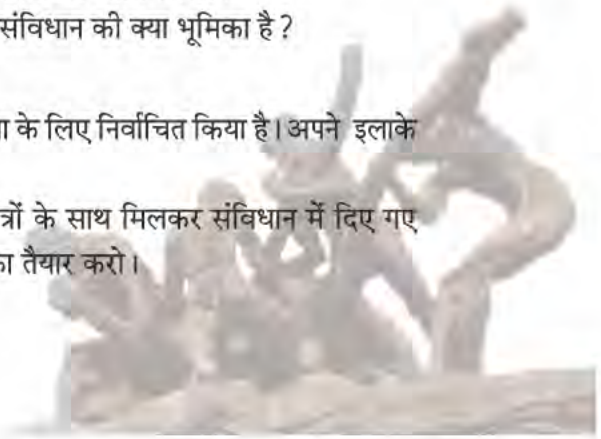

भारतीय इतिहास काल-क्रम के अनुसार सूची
अठारहवीं शती से बीसवीं शती के प्रथम भाग तक

1707	मुगल सम्राट औरंगजेब की मृत्यु।
1717	मुगल सम्राट फारुखशियर द्वारा ब्रिटिश कम्पनी (ईस्ट इंडिया कम्पनी) को बिना सूद के व्यापार करने का अधिकार।
1744-48	प्रथम अंग्रेज-फ्रांसीसी युद्ध।
1750-54	द्वितीय अंग्रेज -फ्रांसीसी युद्ध।
1756-63	यूरोप में सप्तवर्षीय युद्ध भारत में तृतीय अंग्रेज - फ्रांसीसी युद्ध
1760	बंदीगृह का युद्ध-फ्रांस की प्रतिद्वन्द्विता समाप्त।
1756	बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला द्वारा अंग्रेजों के पास से कलकत्ता पर अधिकार।
1757	प्लासी का युद्ध।
1764	बक्सर का युद्ध।
1765	मुगल सम्राट शाहआलम द्वितीय द्वारा ब्रिटिश कम्पनी को बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा की दिवानी दी गई।
1767-69	प्रथम अंग्रेज-महिशूर (मैसूर) युद्ध।
1772	वारेन हेस्टिंग्स गवर्नर बने।
1773	रेगुलेटिंग एक्ट।
1774	वारेन हेस्टिंग्स बगांल के गवर्नर जनरल बने। कलकत्ता में सुप्रिम कोर्ट (इम्पिरियल कोर्ट) की स्थापना।
1775-82	प्रथम अग्रेंज-मराठा युद्ध।
1780	हिक्की नामक बंगाल गजट प्रकाशित।
1780-84	द्वितीय अंग्रेज-महिशूर (मैसूर) युद्ध।
1784	पिट इंडिया एक्ट।
1786	लार्ड कार्नवालिस नए गवर्नर जनरल बने।
1790-92	तृतीय अंग्रेज -महिशूर (मैसूर) युद्ध।
1793	बंगाल में राजस्व की अदायगी बन्दोबस्ती का प्रवर्तन।
1798	लार्ड वेलेसली नए गवर्नर जेनरल बने।
1799	चतुर्थ अंग्रेज - महिशूर (मैसूर) युद्ध।
1803-05	द्वितीय अंग्रेज - मराठा युद्ध।
1817	कोलकाता हिन्दू कॉलेज की स्थापना।
1817-19	तृतीय अंग्रेज - मराठा युद्ध।
1818	बंगला में 'दर्पण' तथा 'दिग् दर्शन' नामक समाचार पत्रों का आरंभ।
1828	लार्ड विलियम बेंटिक गवर्नर जनरल बने।
1829	सती प्रथा निषेध की गई।
1833	ईस्ट इंडिया कम्पनी के भारत में बाणिज्य का एकाधिकार समाप्त। इस सनद के अनुसार बंगाल के गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बेन्टिक भारत के गवर्नर जनरल बने।
1835	लार्ड मैकाले का शिक्षा संबंधी दास्तावेज
1845-46	प्रथम अंग्रेज -सिख युद्ध।
1853	बम्बई से थाने तक रेल-सेवा-चालू।
1856	कंपनी का अयोध्या अधिग्रहण।
	विधवा-विवाह का कानून प्रस्तावित।
1857-58	सैनिक विद्रोह तथा जन-क्रांति।
1858	भारत पर ब्रिटेन की रानी विक्टोरिया के शासन की सूचना।
1859-60	नील विद्रोह।
1876	भारत सभा की स्थापना
1876-77	दिल्ली दरबार महारानी विक्टोरिया भारत की साम्राज्ञी घोषित।
1878	देशी संवादपत्र 'राजद्रोही' को नियंत्रित करने के लिए देशी संवादपत्र का कानून।
1883	एलबर्ट बिल।
1885	भारतीय कांग्रेस की स्थापना।
1899	लार्ड कर्जन गवर्नर जनरल बने।
1905	बंगाल के बंटबारे की घोषणा तथा विरोधी आन्दोलन।

1906	मुस्लिम लीग की स्थापना।
1907	कांग्रेस का सूरत अधिवेशन तथा नरमपंथी और चरमपंथी विच्छेद।
1909	मार्ले-मिन्टो संस्कार विधि।
1911	बंग-विभाजन रद्द।
1912	अंग्रेजी राज्य की राजधानी कलकत्ता से दिल्ली स्थान्तरित।
1914	प्रथम विश्व युद्ध आरंभ।
1915	गांधीजी का भारत आगमन।
1916	भारतीय कांग्रेस और मुस्लिम लीग में लखनऊ में संधी होमरुल लीग का गठन।
1919	मन्टेगुचेम्सफोर्ड संसोधन विधि। गांधी के नेतृत्व में रोलेक्ट एक्ट विरोधी आंदोलन। जालियावाला बाग हत्याकांड।
1921	गांधी के नेतृत्व में खिलाफत और असहयोग आंदोलन।
1922	चौरीचोरा में हिंसात्मक घटनाओं के पश्चात् असहयोग आंदोलन स्थगित।
1923	स्वराज्य दल प्रार्थियों का कानूनी सभा में आगमन।
1927	साइमन कमीशन का भारत आगमन। सर्वदलीय सम्मेलन। भारतवर्ष के भविष्य के संविधान के विषय में मोतीलाल नेहरु का प्रतिवेदन।
1929	कांग्रेस के लाहौर अधिवेशन में पूर्ण स्वराज का प्रस्ताव।
1930	गाँधी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन। लंदन में प्रथम गोल मेज बैठक भारत के भविष्य के संविधान की आलोचना के लिए।
1931	गाँधी-इरविन संधि। असहयोग आंदोलन स्थगित। द्वितीय गोल मेज बैठक में गांधी का अंशग्रहण तथा बैठक व्यर्थ। भगत सिंह, सुखदेव तथा राजगुरु को फांसी।
1932	कांग्रेस पर प्रतिबंध। द्वितीय बार असहयोग आंदोलन। पूना समझौता। तृतीय गोल मेज बैठक व्यर्थ।
1934	असहयोग आंदोलन स्थगित। मास्टर सूर्यसेन को फाँसी।
1935	भारत स्वराज कानून
1937	आठ प्रदेशों में कांग्रेस की मंत्री सभा।
1939	द्वितीय विश्वयुद्ध आरंभ। कांग्रेस का त्रिपुरा अधिवेशन।
1940	लार्ड लिनलिथगोर का डोमिनियन स्टेट्स का अगस्त प्रस्ताव। मुस्लिम लीग द्वारा लाहौर प्रस्ताव स्वीकृत।
1942	क्रिप्स मिशन व्यर्थ। भारत छोड़ो आंदोलन।
1944	गांधी जिन्ना मेल तथा आलोचना।
1945	आजाद हिंद फौज के बंदियों पर विचार -व्यापक विरोध।
1946	रायल इंडियन नेबी के अधिकारियों के विरुद्ध विद्रोह। भारत मंत्री मिशन। जवाहरलाल नेहरु के नेतृत्व में अन्तरिम सरकार।
1947	1948 जून मास तक सत्ता हस्तांतरण की क्लिमेंट एट्लिर द्वारा घोषणा। माउंटबेटन की परिकल्पना। भारतीय स्वाधीनता कानून। भारत तथा पाकिस्तान को सत्ता हस्तांतरण। सम्प्रदायिक हिंसा तथा नरसंहार।
1949	स्वाधीन भारत का नवीन संविधान गृहित एवं प्रमाणित (26 नवम्बर)।
1950	नया संविधान लागू। भारत प्रजातांत्रिक राज्य के रूप में उभरा (26 जनवरी)।

[यह तथ्य पूर्ण नहीं है। केवल इस पुस्तक में आलोच्य प्रसंग समूह के साथ संपर्क करने हेतु ही यहाँ पर वर्ष और दिनांक दिया गया है।]

****

शिक्षण परामर्श

- पश्चिम बंगाल मध्य शिक्षा पर्षद अनुमोदित विद्यालयों में अष्टम कक्षा के लिए इतिहास की पुस्तक **'इतिहास और परंपरा'** छात्र-छात्रों तथा शिक्षक-शिक्षिकाओं के समक्ष प्रस्तुत की गई है। इस पुस्तक में नौ अध्याय हैं। विद्यार्थी प्रथम से नवें अध्याय तक रोचक कथा के रूप में पढ़ते हुए जा सकेंगे।

- 2005 में प्रस्तावित राष्ट्रीय पाठ्यक्रम की रूपरेखा (नेशनल करिक्युलम फ्रेमवर्क 2005) के निर्देशानुसार इस पुस्तक की रूपरेखा प्रस्तुत की गई हैं। यथासम्भव सहज भाषा, चित्र तथा मानचित्रों की सहायता से भारतीय उपमहाद्वीप के आधुनिक युग का इतिहास (अठारहवी शती से बीसवीं शती के प्रथम भाग तक) इस पुस्तक में वर्णित हुआ है।

- इस पुस्तक में मूल धारणा के साथ-साथ 'कुछ बातें' शीर्षक के माध्यम से विभिन्न विषयों का सूचना विद्यार्थियों की सहायता के लिए दी गई हैं। शिक्षक-शिक्षिकाएँ इनकी मदद से कक्षा में शिक्षार्थियों में उत्सुकता तथा उत्साह उत्पन्न कर सकते हैं। विद्यार्थियों की कल्पनाशक्ति को बढ़ावा दे सकते हैं। 'कुछ बातें' से कक्षा में प्रश्न पूछे जा सकते हैं परन्तु प्रश्न-पत्र नहीं बनाया जा सकता है। कक्षा-कक्ष में कल्पनात्मक और तुलनात्मक आलोचना को कार्यों में लगाया जा सकता है। इनमें से 17, 19, 22, 23, 25, 26, 36, 45, 46, 49, 55 (सूर्यास्त कानून), 58, 63, 81, 82, 86, 91, 98, 99, 102, 106, 111, 113, 116, 118, 119, 120, 121, 123, 125, 128, 132, 137, 142, और 148, पृष्ठ में जो **'कुछ बातें'** अंश हैं, उसे अपवाद के रूप में ग्रहण करना होगा। इनमें से मूल्यांकन हेतु प्रश्न किये जा सकते हैं।

- इस पुस्तक के सभी चित्र मूल पाठ के विषयानुसार हैं और उनके अभिन्न अंग हैं। इसमें व्यवहार किए गए मानचित्र छात्र-छात्राओं को उस समय की राजनीतिक, अर्थनीतिक और सांस्कृतिक परिस्थितियों से अवगत होने में सहायक सिद्ध होंगे।

- इतिहास में साल एवं तारीख का अपना महत्त्व है। परंतु इस पुस्तक में नीरस तारीख का वर्णन मात्र नहीं है। इसमें विद्यार्थियों में इतिहास के प्रति रुचि जागृत करने का प्रयास किया गया है। केवल मात्र तारीख याद करवाना इस पुस्तक का ध्येय नहीं है।

- अनेक पन्नों के एक तरफ शिक्षार्थियों के लिए जगह छोड़ी गई हैं जहाँ वे अपना नोट लिख सकते हैं।

- जरुरत के मुताबिक किसी भी पाठ को पढ़ाने के लिए शिक्षक विभिन्न सूत्रों से सामग्री एकत्रित कर सकते है एवं छात्र-छात्राओं के लिए पाठ सुगम बना सकते हैं। विद्यार्थियों को भी सूचना, चित्र आदि इकट्ठा करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। वार्ता, आलोचना आदि का प्रबंधन भी किया जा सकता है।

- पठन-पाठन का गुरुत्वपूर्ण अंश है सतत् एवं व्यापक मूल्यांकन (CCE)। यह वर्ष भर चलने वाला मूल्यांकन है जिसमें शिक्षकगण विभिन्न क्रिया कलापों जैसे अभिनय, तर्क-वितर्क भाषण एवं दूसरे विधियों द्वारा विद्यार्थियों को मूल्याकित करते है। पुस्तक में याद रखो तथा अंत में सोचो, विचारो और खोजो आदि के द्वारा कागज-कलम (Pen and paper) की क्रियाएँ की जा सकती हैं। रचनात्मक मूल्यांकन में शिक्षक/शिक्षिकाएं इन सबका समावेश अपने तरीके से कर सकते हैं। ये सब अनुशीलनी अध्यापको की सहायता मात्र के लिए है।

- पाठ के पीछे मूल्यांकन के नमूनों के तौर पर 'सोचो, विचारो और खोजो' सूची दी गई है। शिक्षक इसे कुछ परिवर्तित करके काम में ले सकते हैं। प्रथम मूल्यांकन प्रथम, द्वितीय तथा तृतीय अध्याय / द्वितीय मूल्यांकन : चतुर्थ, पंचम, षष्ठ तथा सप्तम अध्याय / तृतीय मूल्यांकन : अष्टम तथा नवम अध्याय। इस क्षेत्र में पहले के पयार्यक्रमिक सीखन सामर्थ्य के परवर्ती पयार्य के मूल्यांकन के लिए विचार करना होगा। वि.सू. : 1. प्रथम अध्याय से पयार्यक्रमिक के मूल्यांकन का कोई भी प्रश्न नहीं किया जा सकता है। 2. सप्तम अध्याय में सीखन शिक्षण द्वितीय पयार्यक्रमिक मूल्यांकन के मध्य किया जा सकता है, लेकिन इस अध्याय से प्रश्न तृतीय पयार्यक्रमिक मूल्यांकन में करना होगा।